आदित्यपुराणान्तर्गत

श्रीवेङ्कटेश माहात्म्य

ॐ

श्री श्रीनिवासो विजयते

आदित्यपुराणान्तर्गत

श्रीवेङ्कटेश माहात्म्य

(हिन्दी अनुवाद सहित विशेषार्थ)

तेलुगु व्याख्याकार :
श्री आर. राममूर्तिशर्मा,
भूतपूर्व व्याकरण प्रधानाध्यापक
श्रीवेङ्कटेश्वर प्राच्य महा विद्यालय, तिरुपति
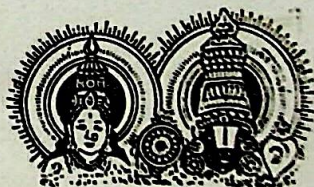
हिन्दी भाषान्तरकार :
बी. जी. सुन्दरमूर्ति, एम. ए.
प्राध्यापक, हिन्दी विद्यालय, चित्तूर – 517001
(आन्ध्र प्रदेश)

1992

प्रथम संस्करण
सन् अगस्त 1992
1000 प्रतियाँ

मूल्य 25/-

मुद्रक :
पी. यस. विजयकुमार,
श्री विजयलक्ष्मी प्रेस, चित्तूर
(आन्ध्र प्रदेश)

Publishers :
B. G. Sundaramurthy
Hindi Vidyalaya,
8-183, Jandaman Street,
Chittoor - 517 001,
Andhra Pradesh.
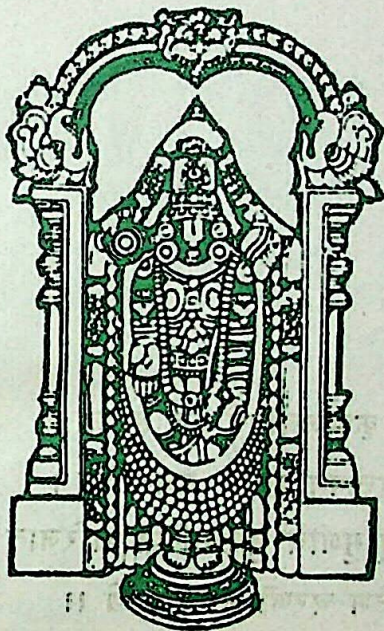
THIS BOOK IS
PUBLISHED WITH THE
FINANCIAL ASSISTANCE OF
TIRUMALA TIRUPATHI DEVASTHANAMS
UNDER THEIR SCHEME
"AID TO PUBLISH RELIGIOUS BOOKS"
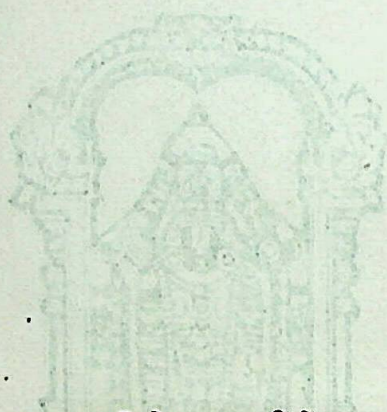
श्रीमान् कृपाजलनिधे कृत सर्वंलोक
सर्वज्ञ भक्तनत वत्सल सर्वंशेषिन् ।
स्वामिन् सुशील सुलभाश्रित पारिजात
श्रीवेङ्कटेश चरणौ शरणं प्रपद्ये ।।

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष धर्म-दर्शन है। यदि उसे इसमें से निकाल दिया जाय तो सम्भवतः संस्कृति अस्तित्वहीन हो जायेगी। धर्म-दर्शन का आधार अनादिकाल से चली आ रही नैतिक मूल्यों की मान्यता है। इसी मान्यता को सनातन धर्म का पर्याय कहा जा सकता है। हम यह आज भी मानते हैं कि लाखों वर्षों पुरानी भारतीय सभ्यता, जिसे शाश्वत वेदवाणी प्रमाणित करती है, जिन मूल्यों पर टिकी तथा सदा अद्यतन या नवीन लगती है, वे निश्चय ही अमूल्य और अभ्यास के विषय हैं। सभी के लिये सर्वत्र तथा हर समय इन सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, तप, यज्ञ, दान, दया, ज्ञान, प्रेम आदि का महत्त्व भारत, अमेरिका, अथवा विश्व के अन्य किसी राष्ट्र, धरती, आकाश या भूमिगत रहनेवाले गतकाल, आज या आगामी काल के लिये तनिक भी भिन्न नहीं माना जा सकता। ये सभी मूल्य शाश्वत हैं। जिसने इन मूल्यों को जितना स्वीकार किया वह उतना महान और लम्बे समय तक के लिये प्रशंस्य वन गया। किन्तु जिस किसी ने भी इन मूल्यों की अनदेखी की, वह तुरन्त पहाड़ से नीचे उल्टे मुँह गिर पड़ा। यही वताते हैं वेद, पुराण, कुरान, बाइबिल या जेन्दावेस्ता आदि धार्मिक और ऐतिहासिक ग्रन्थ।

भारतीय मनीषियों ने बहुत पहले इन मूल्यों को निर्धारित कर इनको स्वीकारकर जीवन चलानेवालों को पहचानकर, सुनिश्चित करके महिमागीत गाना प्रारम्भ कर दिया था। ऋग्वेद से लेकर आज तक के

साहित्य में महनीय मूल्यों को स्वीकार करनेवालों की गाथाएँ वाङ्मय को समृद्ध करने में महत्त्वपूर्ण योगदान करती दिखायी पड़ती हैं। मूल्यों से भरित व्यक्तियों को अमर्त्य, देव, देवता, भगवान्, अग्नि, सविता, इन्द्र आदित्य, यम, रुद्र और न जाने कितने-कितने नाम दिये गये। इन शक्तियों ने जो परोपकार के उदाहरणीय कार्य किये उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा भरी पड़ी है विश्व साहित्य में तप और ज्ञान के धनी ऋषियों, मुनियों, विद्वानों, सन्तों आदि ने उन शक्तियों के क्रियाकलापों का साक्षात् करके उनका मूल्याङ्कन किया तथा स्थान निर्धारित किया। ऋग्वेदमें इन्द्र की महिमा बहुतायत है क्योंकि वह समाजकी असमाजिक तत्त्वों से रक्षा करता था और इस प्रकार परोपकार का विग्रह तक स्वीकार किया गया। किन्तु पुराणों तक आते आते उसका परोपकारी पक्ष कमज़ोर पड़ता गया और नैतिकमूल्यों की उसके व्यक्तियों में कमी आती गयी। अन्य शक्तियों या देवताओं के अतिरिक्त एक नाम 'विष्णु' का भी है जिसने प्राणधारियों की अपने व्यक्तित्व या चारित्रिक बलपर रक्षा तो की किन्तु बदले न तो समाज से कुछ चाहा न ही नैतिकमूल्यों को अपने व्यक्तित्व में से हीन होने दिया। बल्कि उन्हें बढ़ाता ही गया। उस देवता या शक्ति की प्रशंसा वेदों से लेकर पुराणों तक और यहाँ तक कि आजके भी साहित्य में एक जैसी गायी जाती है। ऋग्वेद में 'विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं'—'हम विष्णु के वीरतापूर्ण कर्मों की महिमा बताते हैं। 'तद्विष्णो परमं पदे सदा पश्यन्ति सूरयः, दिवीव चक्षुराततम्' 'उस विष्णु ने अपने कर्मों और चरित्र से सभी देवों में परम पद प्राप्त कर लिया है और बड़े बड़े बुद्धिजीवी मुक्तकण्ठ उसकी प्रशंसा करते नहीं थकते। आँखे फाड़कर उसके व्यक्तित्व में महनीय समस्त नैतिक गुणों को देखलेना चाहते। पर अब वैसा करने में न सिर्फ उनकी इन्द्रियाँ बल्कि मन-मति सब असमर्थ हैं। विष्णु के उस गरिमामय व्यक्तित्व से कथाकारों ने तो यह सार तक ले लिया कि वह ऐसा आदर्श गृहस्थ है जो विरक्तों को भी मात देता है। सुत, वित्त, मान-बड़ाई आदि उसने अपने लिये कुछ चाहा ही नहीं अनिकेत विष्णु वह तो सबको अपने पुत्र की तरह मानकर उसके भरण-पोषण और रक्षा में सदा तत्पर हैं।

इसीलिये पुराणों में तो उसे परमेश्वर, परम स्वतन्त्र, असंख्य सद्गुण सम्पन्न तथा दर्शनों ने सच्चिदानन्द या चरमसत्ता ही स्वीकार कर लिया। जगत् का आदि स्रष्टा, उसका रक्षक और अन्त उस जगत् अपना बनाकर अपनेमें अपने हृदय से लगाकर रखलेनेवाला मान लिया।

इस प्रकार विष्णु की प्रशंसा अथवा महिमागान इतना लोकप्रिय हुआ कि कोई भी ऐसा भारतीय धर्मग्रन्थ शायद ही हो जहाँ उसे अति आदर से न लिया गया हो। वह अनादिकाल से लोगों की प्रशंसा, प्रार्थना, श्रद्धा, विश्वास एवं भक्ति का विषय बन गया। उसके अनुकूल दैवीशक्तियाँ उसका अङ्ग बनी और प्रतिकूल को मुँह की खानी पड़ी तथा समाज ने खुले आम दुत्कारा आलोचना की।

प्रस्तुत रचना श्रीवेङ्कटेश माहात्म्य भी विष्णु के एक नाम-रूप की महिमा का गान ही है। इसमें देवशर्मा को निमित्त बनाकर सबके लिये यह उपदेश है कि प्राणी का कल्याण ऐसे दिव्य व्यक्ति की गुण-कीर्तन में ही है जो न केवल स्वयं अपने परिवार (पत्नी लक्ष्मी) सहित परोपकार करने में ही लगा है। उसे बदले में कभी कुछ नहीं चाहिये। वह तो एक नमस्कार से प्रसन्न है और गाली देने पर गाली देनेवाले को ऐसे क्षमा कर देता है जैसे माता अपने बच्चे का असंख्य अपराध हँसकर भुला देती है और स्तन को दांत से काट देनेवाले शिशु को स्तनपान कराना बन्द नहीं कर देती।

अदित्य पुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटेश माहात्म्य के पांच अध्यायों का विषय अति सरस और भक्ति भावना से सरोबार है। इस पञ्चाध्याय की महत्ता मानस-पाठ, दुर्गापाठ, रुद्रीपाठ, भागवतपुराण, गीतापाठादि से भी अधिक है। इसको तेलुगु भाषा में अनुवाद सहित व्याख्या (विशेषार्थ) श्रद्धेय आर. राममूर्तिशर्मा, भूतपूर्व प्रधान व्याकरणाचार्य, तिरुपति ने की है। किन्तु तेलुगु हिन्दी एवं संस्कृत में लगभग समान अधिकार रखनेवाले विद्वान श्री बी. जी. सुन्दरमूर्ति, एम. ए. हिन्दी प्राध्यापक चित्तूर ने भी भाषा में अनुवाद करने में कोर कसर नह

छोड़ीं। मुझे संशोधन का तो श्री बी. जी. सुन्दरमूर्ति ने अवसर देकर अनुग्रहीत किया कि मैं भी इस भगवत्कार्य में यत्किञ्चित जुड़ जाऊँ। मुझे संशोधन के दौरान कहीं ऐसा नहीं लगा कि किसी अहिन्दी भाषी ने हिन्दी अनुवाद कोई किसी (भाषा या भाव के) रूप में मूल ग्रन्थ के साथ अन्याय किया हो।

मैं यह बात दावे के साथ कह सकता हूँ कि यह ग्रन्थ साधारण और विद्वान दोनों के लिये समान रूप से लाभकारी सिद्ध होगा क्योंकि श्रुति-स्मृति तथा अन्य शास्त्रों के प्रसंगानुसार अलभ्य प्रमाण विद्वान व्याख्याकारों ने प्रस्तुत करके सबकुछ सन्देह रहित बनाया दिया है। ग्रन्थ को एक बार पढ़ने के बाद इसको बार बार पढ़ने की सहज इच्छा होगी। इसमें दो मत नहीं। मैं भगवान श्रीनिवास सहित सभी व्याख्याकारों, पाठकों, वाचकों, श्रोताओं, प्रकाशकों आदि की हार्दिक प्रशंसा कर रहा हूँ और यह भी दावे से कह रहा हूँ कि इससे सम्बद्ध होनेवाला कभी भी किसी तरह की हानि में नहीं रहेगा। प्रत्युत सब प्रकार की भुक्ति (धन) और मुक्ति की प्राप्ति तत्काल इसी लोक में होगी।

।। श्रीवेङ्कटेशाय मङ्गलम् ।।

आचार्य रामसजीव त्रिपाठी,

13–8–1992 — वरिष्ठ व्याख्याता एवं अध्यक्ष
श्रावण पूर्णिमा — विशिष्टाद्वैत वेदान्त विभाग
तिरुपति — राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, (मानित विश्वविद्यालय)

श्रीगणेशाय नमः

निवेदन

अदुःखमितरत्सर्वं जीवा एव तु दुःखिनः ।
तेषां दुःखप्रहाणाय श्रुतिरेषा प्रवर्तते ।।

नित्य अनन्त सुखस्वरूपी भगवान को कभी दुःख नहीं है। जड़ पदार्थों के लिये ज्ञान नहीं है। इसलिये उनका भी कोई दुःख नहीं होता। जीव में ज्ञान है, वह उस ज्ञान के द्वारा सुख और दुःख को जान सकता है। परन्तु अविद्या से ढ़का हुआ मनुष्य को अपना स्वरूप-सुख का अनुभव नहीं होता। अतः उसे निरन्तर अपने चारों ओर दुःख और अशान्ति का अनुभव करना पड़ता है।

जीवों के दुःख की निवृत्ति हेतु वेद प्रवृत्त हुए हैं। वेद ईश्वरीय हैं। 'वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्' इस कथन के अनुसार वेद ही सारे संसार के उद्धार करनेवाले हैं। वस्तुतः भारतीय संस्कृति और साधना के क्षेत्र में धर्म, न्याय और नीति का मूल स्रोत वेद या श्रुति को ही माना गया है। वेद प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा सर्वथा न जान सकने के अलौकिक शब्दमयी मूर्ति हैं। स्वरूपतः वे भगवान के साथ अभिन्न हैं। इन वेदों को 'आगम', 'आम्नाय' और 'श्रुति' भी कहते हैं। ये वेद कृतयुग में मन्त्रों की राशि में होने के कारण 'मूलवेद' नाम से प्रसिद्ध थे। त्रेतायुग में ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद – इस प्रकार वे तीनों भागों में विभक्त हो गये। द्वापरयुग में —

'ऋचः स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् प्रभुः ।
यजूंषि निगदाच्चैव तथा सामानि सामतः ।।

साक्षात् नारायण के अवतार स्वरूप भगवान वेदव्यास ने वेदों को चार भागों में विभाजित किया। कालक्रम में अर्थ की दृष्टि से वेद अत्यन्त दुरूह बन गये। जिनका ग्रहण तपस्या के बिना नहीं किया जा सका।

मामूली तौर पर शब्द-शब्दार्थ जाननेवाला व्यक्ति वेदों का अर्थ नहीं जान पाया। तब ब्रह्मादिकों के प्रार्थना पर भगवान श्रीहरि ने महर्षि वेदव्यास के रूप में अवतार ग्रहण किया। इसका स्पष्ट उल्लेख कूर्म पुराण में इस प्रकार मिलता है।

'तृतीये सप्तमे चैव षोडशे पञ्चविंशके।
अष्टाविंशे युगे कृष्णः सत्यवत्यां पराशरात् ।।

उक्त कथन के अनुसार वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में जो 71-वें महायुग है, उसमें तीसरे, सातवें सोलहवें और पच्चीसवें युग में श्रीनारायण ने वेदव्यास के रूप में अवतार लिया। फिर भगवान ने 28-वें द्वापरयुग में साधु-संतों के उद्धार निमित्त वेदव्यास के रूप में प्रकट होकर वेदों का पुनः विभाजन किया। अर्थात् ऋग्वेद जिसमें प्रचुर ऋचाएँ है, जिनमें ज्ञान का भण्डार भरा है, वे 24 भागों में हैं। यजुर्वेद – जिसमें मन्त्र हैं, जिनसे विभिन्न यज्ञों का सम्पादन किया गया है, वे 101 भागों में हैं। सामवेद – जिसमें गेय मन्त्र हैं, जिन्हें सस्वर गा-गाकर ईश्वर की उपासना की जाती है, वे 1000 भागों में हैं। अथर्ववेद – जो 12 भागों में है, इसमें विविध मन्त्रों के द्वारा सांसारिक विषयों (पदार्थों) का वर्णन संक्षेप में किया गया है।

इन समस्त वेद-वेदाङ्गों के अर्थ निर्णय के लिये भगवान वेदव्यास ने 'ब्रह्मसूत्र' की रचना की। उन्होंने यह भी जाना था कि जगत् के कल्याण के लिये उन वेदों और ब्रह्मसूत्रों में संग्रह किये गये या गूढरूप से बताये गये भगवत्-तत्त्वों को सरस एवं सरल भाषा में महाभारत, श्रीमद्भागवत और अठारह पुराणों द्वारा प्रकट किया जाय। इसलिए वेदों के बाद हमारे यहाँ पुराणों का ही सबसे अधिक महत्त्व है। पद्मपुराण में लिखा गया है –

"यदि विद्याच्चतुर्वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणां च विजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः ।।

जो ब्राह्मण अङ्गो एवं उपनिषदों सहित चारों वेदों का ज्ञान रखता है, उससे भी बढ़कर विद्वान वह है, जो पुराणों का विशेषज्ञ है।

इसीसे शास्त्रों में कहा है कि पुराणों की सहायता से वेदों का अर्थ समझना चाहिए। वस्तुतः पुराण अनादि और नित्य है।

आजकल वैज्ञानिक युग में परिस्थिति ऐसी बदल गयीं कि लोगों को पुराण-श्रवण और पठन दोनों में श्रद्धा नहीं है। कुछ लोग सनातन भारतीय संस्कृति का विरोध करते हुए भौतिकता की ओर आकर्षित ही रहे हैं। किन्तु हम आस्तिकों के आत्मकल्याण के लिए उन पुराणों की बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि वैज्ञानिक आविष्कारों से मानव जीवन की चाहे भौतिक आवश्यकताएँ तो पूर्ण की जा सकती हैं, पर मूलभूत आत्मिक समस्याओं का समाधान करने में वे सक्षम नहीं हैं। भोग-संग्रह से इन्द्रियों की लालसा कभी तृप्त नहीं होती और शान्ति का अभाव ही रहता है। पुराणों के पठन-पाठन से जीवन की दौड़-धूप से संतप्त मानव-हृदय को परम शान्ति मिलती है। क्योंकि, पुराण वेदों के मंथन से निकला साररूप नवनीत है। उनमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का बहुत सुन्दर विवेचन तथा सत्-चित्-आनन्दस्वरूप परमात्मा के परम तत्त्व निरूपित किये गये हैं, जिन्हें प्राप्त करना मानव जीवन का परम एवं चरम लक्ष्य है।

ऐसा पुराण प्रसिद्ध सनातन संस्कृति का मूर्तरूप ही वर्तमान में श्री वेङ्कटाचल (तिरुमल-तिरुपति) है, जो कलियुग वैकुण्ठ नाम से प्रख्यात है। इस क्षेत्र में श्रीकृष्णाभिन्न भगवान श्रीनिवास (बालाजी) अखण्ड वैभव से विराजित हैं। उनकी अनन्त महिमाओं का वर्णन अनेक पुराणों में मिलता है। श्रीआदित्य पुराण में श्रीवेङ्कटेश माहात्म्य का जितना विशद वर्णन मिलता है, प्रायः किसी भगवान की महिमा किसी भी पुराण में उतना नहीं मिलता। अतः यह पुरान सभी पुराणों का सारसर्वस्व माना जाता है। इसमें भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के सर्वदेवमय तथा सर्वव्यापकता की महिमा विशेषरूप से निरूपित की गयी है, जो कलिमल-ग्रस्त जीव के लिए परम मङ्गलप्रद है।

"यस्य चेतसि गोविन्दो हृदये यस्य नाच्युत।
कलिः कृतयुगं तस्य कृतं कलियुगायते ।।

हरिनाम संकीर्तन करनेंवालों के लिए कलियुग कृतयुग बनता है, जो नहीं करता है उसके लिए भला, कृतयुग भी कलियुग के समान है।

सत्ययुग में विष्णु के ध्यान से, त्रेतायुग में यज्ञानुष्ठान से और द्वापरयुग में भगवदर्चन से जो सफलता मिलती है, वही इस कलियुग में हरिकीर्तन से ही होती है। अतः विष्णु पुराणमें 'कलिस्साधुः कलिस्साधुः कहा गया है।

नारायणेति यस्यास्ते वदने नाम मङ्गलम्।
नारायण स्तमन्वेति वत्सं गौरिव वत्सलाः॥

जिस तरह बछडे की पुकार सुनते ही गाय अपने बछडे के पास दौड़ आती है और दूध पिलाकर तृप्त करातीं है, उसी तरह भक्त के स्मरण करने मात्र से भगवान श्रीहरि उस भक्त के पास आ पहुँचते हैं और उसका उद्धार कर देते हैं।

इसलिये इस विकराल कलिकाल में भगवान श्रीहरि का एक-एक नाम भी सम्पूर्ण वेदों से अधिक माहात्म्यशाली माना गया है। अतः प्राणियों के कल्याण के लिये भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर का स्तोत्र-सङ्कीर्तन परम उपादेय एवं सरल साधन है। 'नारायण परावेदाः, सर्वेवेदा यत्पद-मामनन्ति' – इस प्रकार सम्पूर्ण वेद, स्मृति, पुराण, इतिहास आदि में भगवान विष्णु ही सर्वगुण सम्पन्न, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वान्तिर्यामी एवं सर्वोत्तम के रूप में प्रतिपादित हैं। उपर्युक्त श्रुति के अनुसार भगवान विष्णु ही श्रीनिवास के रूप में भक्तों को अनुग्रह करने निमित्त अवतार ग्रहण किया। 'भक्तौघानुग्रहार्थाय त्यक्त्वावैकुण्ठमुत्तमम्।'

महर्षि वेदव्यास के प्रणीत आदित्य पुराण में श्रीवेङ्कटेश माहात्म्य समस्त वेद-शास्त्र और पुराण-इतिहास वाङमयरूपी क्षीर सागर से आविर्भूत पूर्ण अमृत-कलश है। संसार सर्पदष्ट मानव इस अमृत-कलश को अपने स्वबुद्धि कोश में धारणकर प्रतिदिन उसका पान करता रहता तो उसे अवश्य अमरता प्राप्त होगी।

'श्रीवेङ्कटेश माहात्म्य' — एक परिचय

भगवान् वेदव्यास के अठारह महापुराणों की शृंखला में आदित्य पुराण के अन्तर्गत वेङ्कटेश माहात्म्य एक महत्त्वपूर्ण सात्त्विक आख्यान है। इसमें इतने महत्त्व के विषय हैं, जिन्हें पढ़-सुनकर देव-ऋषि-गन्धर्व आदि को चमत्कृत होना पड़ता है। यह भगवान वेङ्कटेश के महिमा-वर्णनों से ओतप्रोत स्तुति ग्रन्थ है। नित्य पठनीय है। लोक-परलोक के सभी सुख-साधनों का भण्डार है।

श्रीवेङ्कटाचलाधीष्ट भगवान श्रीनिवास का अनुग्रह कैसे प्राप्त किया जाय ?— इस प्रकार शौनकादि मुनियों की प्रार्थनापूर्वक जिज्ञासा करने पर पुराण प्रवक्ता श्रीसूतजी ने जिन सर्वोत्कृष्ट स्तोत्रों को प्रस्तुत किया, वे पहले शेषनाग ने कपिलमुनि को सुनाया। उस समय कपिल के शिष्य सूतजी ने श्रवण किया। लोक कल्याणार्थ सूतजी ने शौनकादि मुनिजनों को सुनाया। इस तरह भगवत्-तत्त्वों का प्रतिपादन करने वाला यह वेङ्कटेश माहात्म्य आदित्य पुराण में प्रचुरमात्रा में वर्णित है।

श्रीश्रीनिवास के गुण-माहात्म्य को श्रद्धालु भक्तजनों के मन में सुदृढ़ करने के लिये देवशर्मा के रोचक वृत्तांत को दृष्टांत दिया गया है। देवशर्मा बड़े गरीब एवं वायुदेवता के परम भक्त थे। वायुदेवता की सत्प्रेरणा पाकर उन्होंने वेङ्कटाचल की यात्रा की। भगवान श्रीलक्ष्मी-वेङ्कटेश्वर के बड़ी तन्मयता से दर्शन किये और भाव-विभोर होकर प्रभु के नाम, गुण, प्रभाव, स्वरूप और लीला आदि की स्तुति की। भगवान के चरण की शरण पायी। उन्हें सर्वाभीष्ट सिद्धि प्राप्त हुई। यही इस ग्रन्थ की मुख्य कथा-वस्तु है।

पांच अध्यायों से युक्त इस वेङ्कटेश माहात्म्य ग्रन्थ में इस तरह बन्धन चतुष्टय होता है – (1) श्रीनिवास 'विषय' है, (2) हरि, वायुदेव गुरुजनों के प्रति श्रद्धासक्त मनुष्यश्रेष्ठ, शमदमादि से युक्त ऋषि-गन्धर्व तथा देवगण 'अधिकारी' हैं, (3) इन स्तोत्रों का पाठ करना 'सम्बन्ध' है तथा उन सेवाओं से प्राप्त श्रीहरि के प्रसाद एवं तज्जन्य संसार बन्धन से छूटकार, तदनन्तर मोक्ष-प्राप्ति 'प्रयोजन' है।

पहला अध्याय

पुराणों की मङ्गलमयता तथा गुरु की श्रेष्ठता का उल्लेख करते हुए भगवान श्रीनिवास के गुण-माहात्म्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है — इस संसार में श्री वेङ्कटेश्वर के समान देवता न भूत में हुए, न ही वर्तमान में हैं और न ही भविष्य में होंगे। वैसे ही श्रीवेङ्कटाचल के समान स्थान इस ब्रह्माण्ड में कहीं भी नहीं है। यहाँ अशुशि दोष नहीं है। इस कारण वेङ्कटाद्रि भूतल वैकुण्ठ कहा गया है। श्रीश्रीनिवास की कृपा से सर्वारिष्ट नष्ट हो जाते हैं और लोक तथा परलोक के सभी प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, शेष, गरुड, लक्ष्मी आदि देवताओं द्वारा एकमात्र वे ध्येय और उपास्य हैं तथा वेदों द्वारा ज्ञेय परब्रह्म परमात्मा हैं। ब्रह्मादि देवताओं को लोकाधिपत्य प्रदान करने वाले हैं। सर्व नियामक एवं सर्वाधार हैं।

"कर्ताहि सृष्टिस्थितिसंयमादेः......"(श्लो. 13) यहाँ श्रीहरि को जगत्स्रष्टा, जगत्पालक एवं जगत्संहारक पूर्णब्रह्म परमात्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। ".........वचसा निरुक्तो" इस श्लोक में "अदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तो"इस श्रुति का अर्थ प्रतिपादित है।

श्रीमन्नारायण के अनुग्रह प्राप्त करनेवाले इच्छुक मनुष्य को वायुदेव के शिष्यत्व, जितेन्द्रिय, भगवन्माहात्म्य प्रतिपादक वेद-शास्त्रार्थ मननरूप तपश्चरण और अहंकार-ममकार रहित होकर शुद्धतापूर्वक इस संसार में रहना चाहिए। इस के लिये देवशर्मा का उदाहरण दिया गया है।

दूसरा अध्याय

देवशर्मा भगवान श्रीनिवास के पद-नखाग्र की महिमा का वर्णन चरण-सौन्दर्य, चरण-रेखाओं की महिमा तथा दिव्य मङ्गल देह-सौन्दर्य आदि के स्तवन करते हैं। भगवान के हृदय-प्रदेश में निवास करनेवाली भगवती लक्ष्मीजी जो स्वयं अत्यन्त सुन्दरी हैं, वे भी अपने प्रभु के सर्वोत्कृष्ट चरण-कमल के अद्भुत सौन्दर्य-माधुर्य से मोहित हो जाती है और उनके अपने दो नेत्र भगवान के चरण-सौन्दर्य को देखने में असमर्थ समझ कर वे श्रीदेवी, भूदेवी तथा दुर्गा — इन तीनों रूपों में विवर्तित

होकर दर्शन करती हैं। वैकुण्ठादि लोकों में, ब्रह्माण्ड के भीतर और बाहर तथा सभी जीवों और पदार्थों में लक्ष्मी जी अपने प्रभु के साथ रहकर उनका पूजन श्रद्धा-भक्ति से करती हैं।

तीसरा अध्याय

भगवान विष्णु के दस अवतारों की अद्भुत लीलाओं के वर्णन में गुण-रूप-क्रियाओं की महिमा उपलब्ध है। इसमें श्रुतिवाक्य से मिलते-जुलते कुछ श्लोक प्राप्त होते हैं। उदाहरण के लिये –

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। वेदा हि एव एनं वेदयन्ति।
सहस्रशीर्षमहं भजे। सहस्रशीर्षा पुरुषः।
न तत्र चक्षु र्गच्छति न वाग्गच्छति न मनः।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
एष उ एव परो वरीयान् उद्गीथः स एष आत्मा।

चौथा अध्याय

इस अध्याय में भगवान वेङ्कटेश के जो स्तोत्र किये गये हैं, वे पुरुषसूक्त के अनुसार है। ब्रह्माण्ड एवं पिण्डाण्ड में व्यूहा रूप में समस्त व्यापारों को करनेवाले 'वासुदेव-सङ्कर्षण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध' आदि चार प्रकार के व्यूहों का विशद वर्णन करते हुए देवशर्मा सर्वात्मभाव से श्री श्रीनिवास की शरण में जाते हैं। श्रीनिवास के नाम-सङ्कीर्तन के महत्व को पुष्ट करनेवाले अजामील, गजेन्द्र, प्रह्लाद आदि भागवत-पुरुषों के प्रसंग प्राप्त होते हैं।

पांचवाँ अध्याय

इस अध्याय में सर्वगुण सम्पूर्ण, सर्व दोष रहित, सर्वत्र व्याप्त एवं सर्वलोक जननी भगवती लक्ष्मी ही श्रीवेङ्कटेश्वर की स्तुति पूर्णरूप से नहीं कर पाती तो साधारण देवशर्मा को कैसे सम्भव है – इसी भाव को प्रकट करते हुए देवशर्मा श्रीलक्ष्मी को सावित्री, सरस्वती, भारती इत्यादि 'गायत्री' के नामों से दीन-भाव से स्तोत्र करते हैं।

भगवान वेङ्कटेश्वर साक्षात् होकर देवशर्मा को इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट का नाश होने का वर प्रदान करते हैं। यही फलश्रुति है।

द्वापरयुग में जैसे सुदामा ने अपने बाल्य-मित्र भगवान श्रीकृष्ण के यहाँ पधारकर उनका अनुग्रह प्राप्त किया तो जहाँ उनकी झोंपडी थी वहाँ सूर्य और चन्द्रमा के समान तेजयुक्त बड़े ऊँचे-ऊँचे महल बने हैं। राजराजेश्वर भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने अतुल राजसम्पत्ति को अपने प्रिय भक्त (मित्र) पर प्रसन्न होकर प्रदान किया; वैसे ही कलियुग में भी देवशर्मा नामक विप्रवर ने निरन्तर सत्-शास्त्राध्यन के द्वारा अपने मन को निर्मल, प्रसन्न और आनन्द युक्त बना लिया। वे घर की कोई चिन्ता नहीं करते। निर्धनता के कारण उनके बच्चे दाने-दाने के लिए तरस रहे हैं। उनकी पतिव्रता पत्नी के कई बार विनती करने पर भी वे बच्चों की दीन-दशा पर नज़र नहीं डालते। उन्हें किसी भी अवस्था में मन विचलित नहीं, कहीं पर भी असंतोष नहीं, प्रत्येक विधान पर पूरा संतोष एवं भगवान का ही विश्वास — यही तो निर्भरता है। देवशर्मा को तो किसी की इच्छा नहीं, वे पूर्णरूप से निःसंग होते रहे। परन्तु उनकी स्त्री और बच्चे भूखे मरते हैं, इस बात को अब भगवान कैसे सह सकते हैं। ऐसे भक्त के घर-बार की देखभाल भगवान अपने ऊपर स्वयं लेते हैं — यही तो भक्तवत्सलता है। देवशर्मा के परम गुरु एवं अराध्य वायुदेव साक्षात् हुए और बोले, "हे प्रिय शिष्य! अतिशीघ्र ही श्रीवेङ्कटाचल की पद-यात्रा करके साक्षात् विभूतिस्वरूप श्री श्रीनिवास के दर्शन करने से सर्वाभीष्ट-लाभ होता है।" — गुरु के आज्ञानुसार देवशर्मा ने श्रीवेङ्कटाचल की पद-यात्रा की और भगवान श्रीवेङ्कटेश के चरणारविन्दों में बड़ी तन्मयता से स्तोत्र किये। सर्वलोक सर्वेश्वर लक्ष्मीपति ने उनकी मनःकामनाओं को पूर्ण कर दिया।

भारतीय धर्मों का साक्षात् ज्ञान संस्कृतभाषा के कोषागार में बंद है। बहुत कम संख्यावाले संस्कृत के विद्वान उस आध्यात्मिक ज्ञानराशि से लाभ उठा सकते हैं। इसलिये उन अमोघ आगम पुराणों को अपनी-अपनी भाषाओं में रूपांतरित किया जाय, तभी हम अपनी संस्कृति की धरोहर बनेंगे। इस मङ्गलमय उद्देश की पूर्ति के लिये महर्षि वेदव्यास के विरचित आदित्य पुराण के अन्तर्गत श्रीवेङ्कटेश माहात्म्य को श्रीमान आर. राममूर्तिशर्मा, तिरुपति ने पहले कन्नडभाषा में मूलसहित व्याख्या

की। उसका बड़ा समादरण हुआ। तदनन्तर उन्होंने तेलुगु भाषा में अनुवाद किया, जिसका प्रकाशन तिरुमल-तिरुपति के कार्यनिर्वाहण अधिकारी के द्वारा किया गया। दैवयोग से तेलुगु ग्रन्थ को पढ़ने का सौभाग्य मुझे मिला। श्रीवेङ्कटनाथ के गुण-माहात्म्य की ज्ञान-गंगा में गोता लगाया। भक्ति-भावना में शरीर पुलकित हो उठा और मन आनन्दित हो गया।

आनन्दज्ञानदं विष्णुं आनन्दमयनामकम्।
आनन्देन ददर्शाथ आनन्दनिलयालये ॥ (1-42)

आनन्द निलय के निवासी तथा आनन्दबोध्य भगवान का दिव्य मङ्गल माहात्म्य पढ़कर भला, कौन आनन्दित नहीं होता। वह आनन्द न तेलुगु भाषा-भाषी तक ही सीमित होवें, अपितु समूचे भारतवासी अर्थात् हिन्दी जाननेवाले भी लाभान्वित हो जावें। अतः राष्ट्रवणी हिन्दी में अनुवाद करने की आकांक्षा मन में हुई। पर, मैं रहा हूँ हिन्दी का थोड़ा-कुछ ज्ञानवाला और संस्कृत का अनभिज्ञ, तो यह मेरा सङ्कल्प कैसा पूर्ण हो सकता है।

जडं मूकं च वाचालं करोष्यध्ययनान्वितम्।
मन्दबुद्धिं प्राज्ञतमं साङ्ख्ययोगसमाधिगम् ॥ (2-92)

'प्रभु अपनी कृपा से मूर्ख को विद्या-बुद्धि प्रदानकर वक्तृत्व में समर्थ एवं प्रज्ञाशाली बनाकर उसे सांख्य-योग आदि शास्त्रों में निष्णात बनाते हैं।' – इस श्लोक ने मुझे बड़ा सम्बल दिया। हिन्दी में लिखने की जिज्ञासा हुई।

आभारोक्ति

यह भगवान की मङ्गलमयी कृपा का शुभ परिणाम ही है, मेरा परिचय तेलुगु व्याख्याकार परम श्रद्धाभाजन आर. राममूर्तिशर्मा तथा उनके सुपुत्र श्रीश्रीनिवासमूर्ति से हुआ। हिन्दी में अनुवाद करने के मेरे अभिप्राय को जानकर हर्ष केसाथ आशीर्वाद दिया। मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

पूज्यचरण स्वामी श्रीरामकृष्णानन्दजी सम्पादक, गीतावाणी एवं शुकवाणी, गंडीक्षेत्र, आंध्र तथा पूज्यश्री स्वामी असंगानन्दजी, हृषीकेश जिनकी सूझ-बूझ से मैंने लेखन में बराबर फायदा उठाया, उन दोनों परिव्राजकों को मैं प्रणवपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

श्रद्धेय श्री डी. श्रीनिवास अय्यंगार, स्वतंत्रता के समर सेनानी, भूतपूर्व कार्याध्यक्ष, द. भा. हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास ने चित्तूर में हिन्दी प्रेमी मंडली की स्थापना करके हिन्दी पढ़ने का सुअवसर प्रदान किया। प्रधानाचार्य पं० बी. वी. काशीरामशास्त्री, मैसूर ने पुत्र-स्नेह से हिन्दी सिखाकर मुझे अध्ययन और लेखन की हर संभव सुविधा कर दी। उन दोनों महानुभावों को मैं श्रद्धा सहित नमस्कार करता हूँ।

डा० रामसजीवन त्रिपाठी, व्याख्याता एवं अध्यक्ष, विशिष्टाद्वैत वेदान्त विभाग, राष्ट्रीय संस्कृत मानित विश्वविद्यालय, तिरुपति ने इस पुस्तक के लेखन के दौरान मेरी क्लिष्टाता को ही दूर नहीं किया, अपितु पाण्डुलिपि को सुधारकर अंतिम रूप देने में भी मेरी विशेष सहायता की और इस ग्रन्थ के लिये प्राक्कथन लिखकर इसका गौरव बढ़ाया है। उनके प्रति मैं विशेषरूप से कृतज्ञ हूँ।

तिरुपति-तिरुमला देवस्थान ने लोगों में सदाचार एवं सद्धर्म प्रेरक सद्ज्ञान उत्पन्न होने के लिये नित्य पठनीय, मननीय, विशिष्ट एवं दुर्लभ धार्मिक ग्रन्थों के मुद्रण के लिये आर्थिक सहायता देने की महत्त्वपूर्ण योजना बनायी है। उन्हींकी आर्थिक सहायता से यह पुस्तक पाठकों के हाथ में आ सकी है। तिरुपति-तिरुमला देवस्थान के कार्य-निर्वाहण अधिकारी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मेरा कर्तव्य है।

प्रस्तुत पुस्तक के मुद्रण की विशेषता यह है कि एक-एक अक्षर का कम्पोजिंग प्रेस में मैंने स्वयं अपने हाथों से किया। मेरा साला चि० विजयकुमार ने अपने प्रेस में बड़ी लगन से छपाई की। तो पुस्तक ने अपना यह सुन्दररूप पाया। भगवान बालाजी उसे समस्त मङ्गल दे दें।

अंतमें, मैं उन पाठकों का भी कृतज्ञ होऊँगा जो पुस्तक की कमियों तथा त्रुटियों की तरफ मेरा ध्यान आकर्षित कराने की कृपा करेंगे। ताकि आगामी संस्करण के समय उनके सुझावों का ध्यान रखा जायगा।

बी. जी. सुन्दरमूर्ति, एम. ए.
चित्तूर – 517001

31–8–92
गणेश चतुर्थी
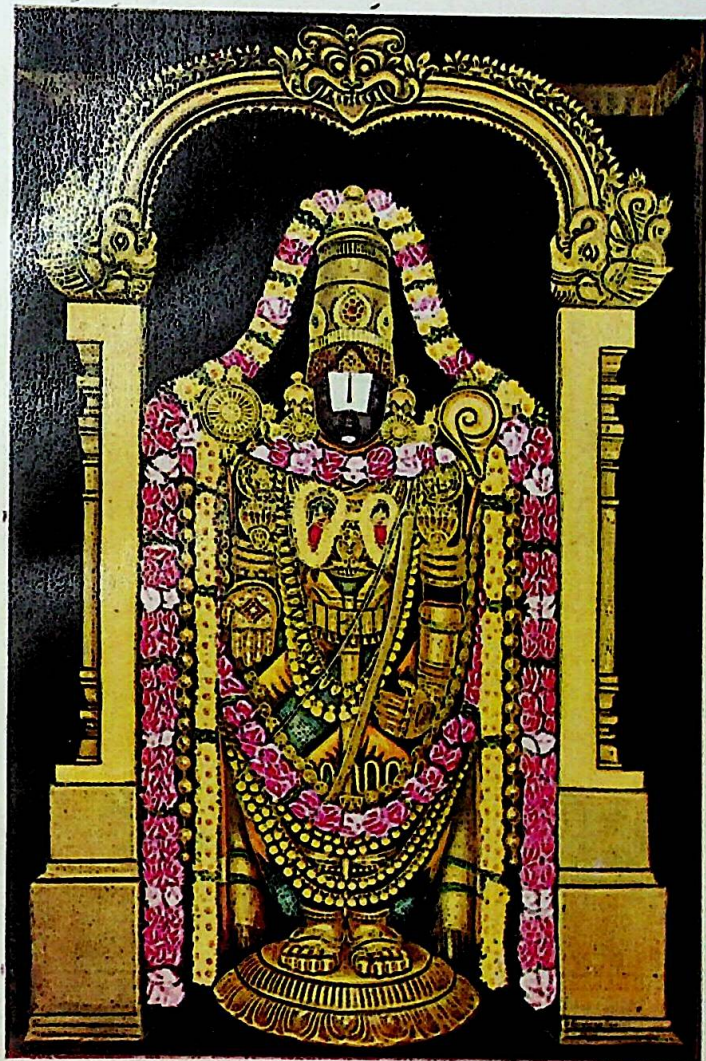
SRI VENKATESWARA SWAMIVARU

Price: 0-25 Ps.
T. T. D. Press, Tirupati

॥ श्रीः ॥

आदित्यपुराणान्तर्गत

श्रीवेङ्कटेश माहात्म्यम्

श्रीश्रीनिवास परब्रह्मणेनमः। श्रियै पद्मावत्यै नमः।
श्रीमते वायुदेवाय नमः।

श्रीवेङ्कटलसच्छैलवासी दासीकृतामरः।
छायया पातु मां नित्यं श्रीनिवास सुरद्रुमः ॥

कल्याणाद्भुतगात्राय कामितार्थप्रदायिने।
श्रीमद्वेङ्कटनाथाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥

समस्तगुणपूर्णाय दोषदूराय विष्णवे।
नमस्ते प्राणनाथाय भक्ताभीष्ट प्रदायिने ॥

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम्।
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥

जो लक्ष्मीजी के प्रिय हैं, समस्त कल्याणों के विशाल आकार हैं, भक्तजनों के लिए अभीष्ट-सिद्धियों को पूर्ण करने वाले हैं और श्री वेङ्कटगिरि पर विराजमान हैं, उन भगवान श्री श्रीनिवास की जय हो।

विशेषार्थं —

(1) कान्ताय – कस्य अन्तः, यस्मात् – ब्राह्मादिकों को सुख पहुंचानेवाले हें, (2) दैत्यादिकों के सुख का अन्तः – नाश करनेवाले हैं; (3) के अन्ततीति कान्तः – समुद्र में सेतु बाँधनेवाले हैं; (4) निधीयते हृदि सज्जनैरिति निधिः-सज्जनोंद्वारा हृदयमें धारण किये जाने योग्य हैं।

श्रीवेङ्कटाचलाधीशं श्रियाऽध्यासितवक्षसम् ।
श्रितचेतनमन्दारं श्रीनिवासमहं भजे ।।

जो श्री वेङ्कटगिरि के प्रभु हैं, जिन्होंने श्रीदेवी को अपने वक्षःस्थल पर धारण किया है और जो शरणागतों के कल्पतरु हैं, उन श्री श्रीनिवास जी का मैं भजन करता हूँ।

विशेषार्थ —

(1) ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति तथा प्रसिद्धि के लिए आरंभ में इष्ट देवता का नमस्काररूप मंगलाचरण अवश्य करना चाहिए। साक्षात् नारायण के अवतार त्रिकालदर्शी एवं पुराणों के कर्ता महर्षि वेदव्यास जिन्हें लेशमात्र भी विघ्न की सम्भावना नहीं है, वे लोक में परम श्रेयस्कर मंगलाचरण की परम्परा को स्थापित करने हेतु ग्रंथ के आरंभ में नमस्कारपूर्वक मंगलाचरण करते हैं।

(2) वाणी और मन की पूर्ण अधिष्ठात्री श्री लक्ष्मी जी का भी नमस्कार करना परमावश्यक है। अतः 'श्रियःकान्ताय' अर्थात् नारायण के साथ लक्ष्मी जी को नमन करते हैं, जिससे भुक्ति-मुक्ति दोनों की प्राप्ति होती है।

(3) 'यं यं यथोपासते तत्तथैव भवति' इस कथन के द्वारा कहा गया है कि मंगलाचरण करने से सभी प्रकार के अनिष्ट निवृत्त हो जाते हैं और इष्ट की प्राप्ति होती है।

प्रथम अध्यायः

।। अथ शौनकादीन् प्रति सूतप्रोक्त श्री श्रीनिवास वैभवः ।।

शौनकादि ऋषियों के प्रति सूत जी द्वारा वर्णित
श्री श्रीनिवास वैभव ।

यदि विद्याच्चतुर्वेदान् साङ्गोपनिषदान् द्विजः।
नचेत्पुराणं संविद्यानैव न स्याद्विचक्षणः ।।

ऋग् आदि समस्त वेदों, षडङ्ग सहित उपनिषदों एवं समस्त शास्त्रों का ज्ञान भले ही प्राप्त किया हो, पर पुराणों की जानकारी यदि भली-भाँति न हो तो वह पण्डित नहीं कहा जाता। अतः पुराणों का अवश्य अध्ययन करना चाहिए।

हरिः ॐ। श्री शौनकादय ऊचुः।

श्रीवेङ्कटेशमाहात्म्यं श्रीनिवासप्रसादतः ।
श्रीप्रदं सर्वदा सूत दयया प्रोक्तवानसि ।। 1

परमात्म-तत्व विषयक ज्ञानार्जन में निरन्तर लगे हुए श्री शौनकादि मुनिजनों ने एक समय नैमिषारण्य में महायज्ञ का अनुष्ठान किया —

मन्त्रमध्ये क्रियामध्ये विष्णोः स्मरणपूर्वकम् ।
मन्त्रतस्तन्त्रतः छिद्रं देशकालार्हवस्तुनः ।।
सर्वं करोतु निच्छिद्रमनुसङ्कीर्तनं तव ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ।।

"मन्त्र-तन्त्रादि के अनुष्ठान के समय जो तृटियाँ रह जाती हैं, उन्हें बीच-बीच में हरि नाम-स्मरण द्वारा (उन मन्त्र-क्रियाओं को)

पूर्ण किया जा सकता है" — इस प्रमाण के अनुसार सभी इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले, सभी पापों को नष्ट करनेवाले और सब प्रकार के पुण्यों को प्रदान करनेवाले श्री वेङ्कटेश माहात्म्य का श्रवण करने के लिए साक्षात् नारायण के अवतारस्वरूप श्री वेदव्यास का परम अनुग्रह प्राप्त, उनके प्रधान शिष्य श्री सूत जी से अपने ज्ञान की वृद्धि तथा लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर इस प्रकार विनय भाव से पूछते हैं —

पुराण शिरोमणि सूत जी ! श्री श्रीनिवास के अनुग्रह से हम लोगों पर बड़ी दया करके आपने जो वेङ्कटेश माहात्म्य बतलाया है, वह हमारे लिये परम कल्याणकारी है, विशेषकर वेदाध्ययन एवं मन्त्रानुष्ठान करनेवाले उत्तम अधिकारियों के लिए मोक्षप्रद तथा समस्त विद्यारूप सम्पत्ति को प्रदान करने वाला है । आश्रित भक्तों के लिए आयु, आरोग्य, पुत्र-मित्र इत्यादि सब प्रकार की सुख-समृद्धि एवं सिद्धियों का कारण है ।

विशेषार्थ —

(1) 'सूतः — सूञ् प्राणि प्रसवे' इस धातु से यह शब्द निष्पन्न होता है । 'पुन्नाम्नो नरकात् त्राता पुत्र इत्यभिधीयते' इस व्युत्पत्ति के अनुसार "पुत्" नामक नरक से रक्षाकरनेवाले ज्ञान-भक्ति-वैराग्य रूप पुत्रों को पुराण-श्रवणरूप गर्भ से उत्पन्न करने के कारण 'सूत' कहा गया है ।

(2) 'ऋचः समानि यजूंषि सा हि श्रीरमृतासतां' इस प्रमाण के अनुसार ऋगादि वेद 'श्रीः' कहे जाते हैं ।

(3) मध्य-वर्ग के लोगों को आयु, आरोग्य, कलत्र, पुत्र-वित्त, साम्राज्यादि समस्त वस्तुओं को प्रदान करनेवाली 'श्रीः' कही जाती है ।

इतः परं श्रीनिवासः श्रीपतिः सर्वशो हि नः ।
कथं प्रीतो भवेत् सद्यो ह्यभीष्टानि प्रवर्षयन् ।। 2

श्री लक्ष्मी जी के ही नहीं, अपितु ब्रह्मा, रुद्र, आदि देवताओं के तथा हमारे भी जो आश्रयभूत प्रभु श्री श्रीनिवास हैं वे किस तरह जल्दी प्रसन्न होकर हमें अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करेंगे, यह बताने की कृपा करें।

तद्वदस्व कृपापूर्ण वेङ्कटेशकथामृतम् ।
भगवन् सर्वतत्त्वज्ञ दयापात्रं वयं तव ।। 3

समस्त तत्त्वों के ज्ञानी, दयालु, महाभाग एवं परम पूज्य हे महामुनि सूत जी ! हम आपकी दया के पात्र हैं। भगवान श्री श्रीनिवास की कथा-महिमाओं का हम श्रवन करना चाहते हैं। अतएव पुनः एक बार सुनाने की कृपा कीजिए । शौनकादि ऋषियों के विनय-वचन से प्रसन्न होकर सूतजी ने इस प्रकार कहा ।

विशेषार्थं —

(1) आप तो सब प्रकार के तत्त्वों को जानते हैं। अतः जिस उपाय से भगवान श्री हरि संतुष्ट होकर हमें सर्वाभीष्टों को प्रदान करेंगे, उसे बताने में आप सक्षम हैं।

(2) हम आपके कृपा-पात्र होने के कारण आपकी अत्यन्त दया हम पर होगी और आप भगवत्-चरित्र अवश्य सुनायेंगे।

(3) अमृतं — कहने का तात्पर्य है कि अमृत-पान से मृत्यु आदि से रहित होकर जैसे मुक्ति मिल जाती है, उसी तरह भगवान वेङ्कटेश के दिव्य चरित्र के श्रवण करनेवालों को मृत्यु आदि से छुटकारा होकर अभयप्रद मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

(4) 'पूज्ये तत्रभवा नत्रभवान् भवाश्च भगवान् इति' — इस प्रमाण से भगवच्छब्द पूज्य वाचक है ।

सूत उवाच —

शृणुध्वं मुनयो दिव्यं सावधानतया त्विदम् ।
यथा पृष्टं तथैवाहं वक्ष्यामि वचनं शुभम् ।। 4

सूतजी बोले – हे मुनियो! आपलोग अत्यंत श्रद्धा-भक्ति से जिनके दिव्य चरित्र को सुनने की जिज्ञासा करते हैं, तथा जिनकी कृपा के पात्र बनने की इच्छा प्रकट करते हैं, उन भगवान परब्रह्म श्री वेङ्कटेश के कल्याणकारी चरित्र को आपके अनुरोध पर बतलाता हूं। ध्यान से सुनें ।

अवतरणिका — "किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने" — भगवान की प्रसन्नता प्राप्त करने पर सब कुछ मिल जाते हैं। सम्पूर्ण विभूति, शक्ति, श्री, धी, विद्या — इन्हीं से अधिष्ठित हैं। श्रीहरि के माहात्म्य-ज्ञान से ही ये लाभ सम्भव हैं। भगवान श्रीहरि अनन्त दिव्य सच्चिदानन्द सौन्दर्य-माधुर्य-ऐश्वर्यमय साक्षात् परात्पर पूर्णब्रह्म, सबके परमाश्रय ब्रह्मा के भी परमाश्रय, सर्वरूप, सर्वमय, सर्वातीत, अप्रमेय, दिव्यानन्दमय, प्रकृति नियामक, मुक्त व्यापक, मुक्त नियामक, निर्दोष नित्य कल्याण-गुण-समूह-समुद्र हैं — इन तत्त्वों को जानकर उनका अनुष्ठान करनेवाले मनुष्य ही उनके सर्वोत्तम फलों को प्राप्त करते हैं, अन्यथा नहीं। इस तरह श्रीहरि की अचिन्त्यशक्तिमत्ता तथा व्यापकता का निरूपण करते हुये श्री वेङ्कटाचलाधीश्वर का वर्णन करते हैं।

वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन ।
वेङ्कटेशसमो देवो न भूतो न भविष्यति ।। 5

हे शौनकादि मुनिगण! इस ब्रह्माण्ड में श्री वेङ्कटाचल के समान कोई स्थान नहीं। वैसे ही जिनके स्मरणमात्र से समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं, उन श्री वेङ्कटाचलाधिष्टित श्रीनिवास के समान कोई देवता न वर्तमान में है, न पहले हुआ और न ही आगे होगा।

अद्भुतं चास्य चरितं वर्णितुं केन शक्यते ।
तथाऽपि तारकं सर्वपापघ्नं पुण्यवर्धनम् ।। 6

भगवान श्रीनिवास का दिव्य चरित्र अत्यंत आश्चर्यजनक है। उसका वर्णन भला कौन कर सकता है? चतुर्मुख ब्रह्मा भी अपनी वाणी से उसका वर्णन पूर्णरूप से करें, तो भी वह अपूर्ण ही होता है। अतएव उनके मंगलमय चरित्र का श्रवण करने से जन्म-मरणरूपी प्रपञ्च (संसार) से मुक्ति मिल जाती है और पाप का नाश होकर पुण्य-संग्रह बढ़ता है।

सुविचित्रमपूर्वार्थं देवर्ष्यादिभिरादृतम् ।
लोकोत्तरं महाश्चर्यं वक्ष्ये सर्वार्थसिद्धिदम् ।। 7

वह चरित्र सबसे विलक्षण है, अत्यधिक विशेषार्थ संपन्न है तथा ब्रह्मादि देवों और नारदादि महर्षियों द्वारा सम्मानित लोकोत्तर चरित्र है। इसके श्रवण मात्र से ज्ञान के विाकस से अभीष्टलाभ होता है। ब्रह्मादिकों को भी आश्चर्य चकितकरने वाला यह चरित्र विश्वमें अत्यंत श्रेष्ठ है। अश्वमेध, ज्योतिष्टोमादि यज्ञों का फल, स्वर्ग के सुख-भोग तथा धर्म-अर्थ-काम आदि सिद्धियाँ देनेवाला है। इस तरह तारकत्वादि महिमाओं से परिपूर्ण होने के कारण यह अवश्य जानने योग्य है। अतः मैं आपको इस माहात्म्य का यथाशक्ति वर्णन करूँगा।

शेषाचले यन्माहात्म्यं अन्यक्षेत्रे न तत् क्वचित् ।
तद्गत श्रीनिवासस्य महिमाऽनन्यगः शुभः ।। 8

द्वापरयुग में शेषाचल नाम से विख्यात इस पर्वत का जो माहात्म्य है, वह इस अखिल ब्रह्माण्ड में कहीं भी नहीं है।

सभी क्षेत्रों की सारी महिमायें इसी में इकट्ठी हुई हैं। इस क्षेत्र पर विराजे हुए भगवान श्री श्रीनिवास का जो अनुपम और मंगलमय माहात्म्य है, वह अन्य क्षेत्रों में, अर्चारूपों में नहीं देखा जाता है।

विशेषार्थ —

(1) सभी भगवद्रूप यद्यपि सर्वगुण सम्पूर्ण होने के कारण समान ही हैं। फिर भी धरती पर वैकुण्ठ के रूप में विख्यात श्री वेङ्कटाचल स्थित भगवान श्रीश्रीनिवास अपने भक्तों को सर्वाभीष्ट प्रदान करते हैं। अन्य क्षेत्रों में स्थित भगवद्रूप सर्वगुण परिपूर्णता एव सर्वशक्ति संपन्नता में समान होने पर भी उनमें इतनी महिमा नहीं दीखती है। 'महिमा नान्यग:' कहने का यही तात्पर्य है।

(2) श्री वेङ्कटाचल की जो महिमा और प्रतिष्ठा है, वह अन्यत्र इसलिये दुर्लभ है कि — श्रीमद्वादिराज श्रीमच्चरणों द्वारा समर्पित सालग्राम की मालिकाओं से तथा 'आपादलम्बिनी माला वनमालेति चोच्यते' नवरत्न खचित माला नित्य नियमितरूप से चरणों तक लटकती है। प्रत्येक गुरुवार के दिन पुष्प-कवच का अलंकार होता है। हर शुक्रवार को हजारों रुपयों की कीमत के सुगन्ध-द्रव्यों से अभिषेक किया जाता है तथा हर शनिवार को अनेक भक्त उपवास-व्रत करते हैं।

आपत्काले जपेद्यस्तु शान्ति मायान्त्युपद्रवा: ।
रोगा: प्रशमनं यान्ति त्रिजपाद्भानुवासरे ।।

इस वाक्य के अनुसार रविवार के दिन अनेक लोग अपने रोगों के निवारणार्थ श्री वेङ्कटेश के मन्त्र-जप करते हैं और भगवान को समर्पित नैवेद्य को स्वीकार करते हैं। निराहार होकर साष्टांग नमस्कार करते हुये श्री वेङ्कटाद्रि की यात्रा करते हैं और श्रीनिवास के चरण कमलों पर सैकडों–हजरों–लाखों द्रव्यों को अर्पित करते हैं। बारहों महीनों में लोग यात्रा करते हैं और अकाल में भी यहाँ विवाह-उपनयन आदि शुभकार्य करते हैं। अन्य क्षेत्रों में तो कभी किन्हीं विशेष पर्व दिनों में

ही उत्सव मनाते हैं। किन्तु यहाँ साल-भर उत्सव होते रहते हैं। इतना ही नहीं, दूर-सुदूर प्रांतों से हजारों की संख्या में श्रद्धालु भगवान श्रीनिवास के दर्शनार्थ आते हैं। उन भक्तों के मनोरथ पूर्ण होना ही इस क्षेत्र की सबसे बड़ी विशेषता है। इस प्रकार अन्य तीर्थ-क्षेत्रों में जो महिमाएँ नहीं दीखतीं हैं, वे सब यहाँ समुपस्थित हैं। भला, यहाँ के माहात्म्य का वर्णन कैसे किया जा सकता है?

वेदेषु च पुराणेषु वेङ्कटेशकथामृतम् ।
वर्णितं चेतिहासेषु भारताद्यागमेषु च ।। 9

अतएव ऋगादि सभी वेदों, अट्ठारह पुराणों, महाभारत रामायण आदि इतिहास-ग्रन्थों तथा आगमशास्त्रों में जरा-मृत्यु का नाश करनेवाले अमृत-तुल्य श्री श्रीनिवास का दिव्य चरित्र वर्णित है।

विशेषार्थ —

(1) 'वेदाश्च नित्यविन्नत्वात्' इत्यादि में कहे गये प्रवचनों के अनुसार ऋग्–यजुः–साम–अथर्ववेद अनादि और नित्य हैं।

(2) ऋग्यजुस्सामाथर्वाश्चेतिहासपुराणकाः ।
स्वागमा इति सम्प्रोक्ताः मीमांसा धर्म एव च ।

पद्मपुराण में ऋगादि वेद, इतिहास-पुराण, उत्तर मीमांस-धर्मशास्त्र सदागमम् (सत्+आगमम्) कहे गये हैं।

(3) पाञ्चरात्रं भारतं च मूलरामायणं तथा ।
इतिहास इति प्रोक्तः ब्राह्माद्यं च पुराणकम् ।
इस प्रकार प्रकाश संहिता में है।

(4) वेदाश्चेतिहासाश्च पुराणं भागवतं तथा ।
मूलप्रमाणमुद्दिष्टं मीमांसा च तथोत्तरा ।।
एतेषामविरोधे तु मानमन्यदुदीरितम् ।
एतेषां तु विरुद्धं यदप्रमाणं विदो विदुः ।।
इस प्रकार व्यास स्मृति में है।

तथा

(5) विष्णोः सर्वोत्तमत्वं च तद्भक्त्या मोक्ष एव च ।
शास्त्रार्थ इति निर्दिष्टः सर्वशास्त्रार्थनिर्णयात् ।।

विष्णु ही सर्वोत्तम हैं, विष्णु की भक्ति से ही मोक्ष मिलता है। यह सर्वशास्त्रार्थ और सर्वशास्त्रों का निर्णय है । — ऐसा पद्मपुराण का मत है ।

(6) 'भारतः पञ्चमः वेदानां वेदः' — इस प्रमाण के अनुसार महाभारत पांचवां वेद माना जाता है ।

महत्त्वाद्भारवत्वाच्च महाभारतमुच्यते ।
भरतं सर्वशास्त्रेषु भारते गीतिका वरा ।।
विणोः सहस्रनामापि ज्ञेयं पाठ्यं च तद्वयम् ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्राचित् ।।

जो प्रमेय महाभारत में होते हैं, वे ही अन्य शास्त्रों में निहित हैं। महाभारत में जो नहीं हैं, वे और कहीं भी नहीं । अतः महाभारत सर्वशास्त्रों में श्रेष्ठ है ।

(7) पद्मपुराण में अट्ठारह पुराणों का उल्लेक मिलता है ।

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा ।
तथान्यन्नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तममं ।।
आग्नेयमष्टमं प्रोक्तं भविष्यं नवमं तथा ।
दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं तथा ।।
वाराहं द्वादशं प्रोक्तं स्कान्दंवात्र त्रयोदशम् ।
चतुर्दशं वामनं तु कौर्मं पञ्चदशं तथा ।।
मात्स्यं च गारुडं चैव ब्रह्माण्डं च ततः परम् ।।
अष्टादशपुराणानां कर्ता सत्यवती सुतः ।।

(8) इन अट्ठारह पुराणों में —

वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं परम् ।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शोभनं स्मृतम् ।।

ये छः सात्त्विक पुराण हैं ।

(9) ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च।
भविष्यद्वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोध मे।।
ये छः राजस पुराण हैं।

(10) शैवमाग्नेयकं चैव लैङ्गं स्कान्दं तथैव च।
कौर्मं चैव तथा मात्स्यं तामसानि प्रचक्षते।।
ये छः तामस पुराण हैं।

(11) उनमें 'षट्कंतु विष्णुविषयं सात्त्विकं मोक्षदं किल' इस सूक्ति के अनुसार ये छः सात्त्विक पुराण विष्णु की सर्वश्रेष्ठता के प्रतिपादक हैं जो चिर-सुखशान्तिमय परमपद मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं,

ये निम्न अठारह उपपुराण हैं।

विष्णुधर्मोत्तरं चैव तन्त्र भागवतं तथा।
तत्त्वसारं नारसिंहं वायुप्रोक्तं तथैव च।।
तथा हंसपुराणं च षडैतानि मुनीश्वराः।
सात्त्विकान्येन जानीध्वं।। गारुड अ. 1 श्लो 57, 58

भविष्योत्तर पुराणं च बृहन्नारदमेव च।
यमनारदसंवादं लघुनारदमेव च।।
विनायकपुराणं च बृहद्ब्रह्माण्डमेव च।
एतानि राजसान्याहुः।। गारुड 1, 51, 60

पुराणं भगवती शैवं नन्दिप्रोक्तं तथैव च।
पाशुपतं रेणुकां च भैरवीं च तथैव च।
एतानि तामसान्याहुः।। गारुड 1, 61, 62

सर्वेष्वपि पुराणेषु श्रेष्ठं भागवतं स्मृतम्।
वेदतुल्यसमंपाठे — गारुड अ. १, श्लो 64

(12) 'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' इस प्रमाण के अनुसार इतिहास और पुराणों द्वारा ही वेदार्थ निर्णय किया जाता है।

(13) वेदे रामायणेच्चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च विष्णुः सर्वत्र गीयते।।

वेद, पुराण, इतिहास आदि में विष्णु ही प्रतिपाद्य हैं। अतः भक्तिपूर्वक श्रीहरि की सर्वोत्तमता के ज्ञान के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

—

मनोहरं तु संश्राव्यं इहाऽमुत्रेष्टदायकम् ।
ज्ञानप्रदं विशेषेण महदैश्वर्यकारणम् ।। 10

वैराग्यभक्तिसत्वादिप्रदेन्द्रियवशप्रदम् ।
वेङ्कटाद्रौ शुचिक्षेत्रेऽशुचिदोषो न विद्यते । 11

जो इह-लोक और पर-लोक में अभीष्ट सुख-समृद्धियों को देनेवाला है, विशेषकर सद्योमुक्ति के लिये वेदान्तादि का शास्त्रज्ञान प्रदान करनेवाला है, भक्तों को सर्वैश्वर्य तथा मन को अधिक आंनन्द और आह्लाद का कारण है, वैराग्य-भक्ति-सत्त्वादि सर्व सद्‌गुणों को देनेवाला है तथा चित्तादि इन्द्रियों को संयमित करनेवाला है, उन श्रीश्रीनिवास का कल्याणकारी दिव्य चरित्र बतलाऊँगा ।

सज्जनों के उद्धार के लिये श्रीहरि वैकुण्ठ छोड़कर भूलोक में यहाँ निवास करते हैं । इस कारण यह वेङ्कटाचल स्पर्श आदि दोषों से रहित होकर अत्यन्त शुचि क्षेत्र बन गया है । आसन-शय्या आदि के द्वारा नित्य-निरंतर श्रीश्रीनिवास के सम्पर्क के कारण देवश्रेष्ठ शेषनाग का शरीर परम शुद्ध है। शेषनाग ही इस पर्वत का अभिमानी (प्रेमी) हैं तो इस क्षेत्र में अशुचि-दोष कैसे हो सकता है ।

विशेषार्थ —

जीवन के कष्ट-क्लेषों से, साधु-संतों के संगति से तथा ऐहिक-आमुष्मिक फलों के अनुभव से वैराग्य पैदा होता है। अर्थात् सुख-भोगों के प्रति इच्छा पूर्णतया नष्ट हो जाती है । 'परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमाप्नुयात्' इस प्रकार श्रुति है । मोक्ष-प्राप्ति में वैराग्य सहायक होने के कारण वह परोक्षज्ञान का साधन है ।

आरागात् दैहिकात्त्यागात् इत्येतैरेव संयुतैः ।
अपरोक्षदर्शनं विष्णोर्जायते नान्यथा क्वचित् ।।

गीता तात्पर्य में वैराग्य ही मोक्ष-प्राप्ति का साधन कहा गया है ।

यावद्रागविनाशः स्याद्विरक्तो भक्तिसंयुतः ।
सर्वदैवाप्रमत्तश्च पश्येदेव हरिं परम् ।।

इस प्रकार छान्दोग्य भाष्य है । भोग-साधनों से मन विरक्त होकर जब मनुष्य भगवन्मुखी हो जाता है, तभी वह परमात्मा का साक्षात्कार कर पाता है । ऐसे वैराग्य के द्वारा ही भक्ति दृढ़ होती है, जैसे — 'वैराग्यतो भक्तिदार्ढ्यं'

सर्वस्मादुत्तम इति सम्यक् स्नेहयुता मतिः ।
सुस्थिरा भक्तिरुद्दिष्टा तया मोक्षो न चान्यतः ।।
माहात्म्य ज्ञान पूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकः ।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तः ।

अर्थात् निरवधिक-अनन्त-कल्याणगुण सम्पन्न भगवान को अपने पुत्र-मित्र-कलत्रादि से भी बढ़कर गुण सम्पन्नवाले समझकर, बड़ी-सी-बड़ी विपत्ति पड़ने पर भी भगवान के प्रति तनिक भी मन न हटना, यानी प्रतिकूलभाव कभी न होना तथा अनन्यता से अतिशय श्रद्धा, भक्ति और विश्वासपूर्वक निरन्तर भगवान का चिन्तन करते रहना 'परम भक्ति' है । इस तरह अविचलित मन से केवल भक्तिरस में अपने हृदक को आप्लुत करना चाहिये ।

'विषयद्रवणात्तेषामिन्द्रियत्वमुदाहृतमू । इदमुद्दिश्यद्रुतेः' — अपते-अपने विषयों कीं ओर दौड़ने की शक्ति इन्द्रियों को है ।

तस्माद्वेङ्कटनाथस्य नैवेद्यं ग्राह्यमुत्तमम् ।
तेन क्षेमं प्रजानां हि विपरीते विपर्ययः ।। 12

इसलिये श्री श्रीनिवास के परमोत्तम तीर्थ-प्रसादों को अवश्य ग्रहण करना चाहिये । क्योंकि उन्हें प्राप्त करनेवालों को परम गति प्राप्त होती है । ऐसा न करके इसके विपरीत

जो तिरस्कार करता है, उसका तो अमंल-ही-अमंल होता है और वह अनेक संकटों में पड़ जाता है ।

विशेषार्थ —

'अप्राप्तप्राप्तिर्योगः । स्थितस्य परिपालनं क्षेमः' — अब तक जो नहीं मिला है, उसके मिलने को योग कहते हैं और उस प्राप्त वस्तु की रक्षा कर लेने को क्षेम कहते हैं ।

कर्ता हि सृष्टिस्थितिसंयमादेः
धर्ता राजस्सत्वतमांस्यनर्हः ।
अनाद्यनन्तो वचसाऽनिरुक्तः
सदाश्रयो देववरो वरेण्यः ॥ 13

भगवान श्री वेङ्कटेश्वर सबसे सर्वश्रेष्ठहैं कि — वे चेतन और अचेतनरूप इस जगत की सृष्टि, स्थिति, संहार, प्रेरणा, ज्ञान, अज्ञान, बन्धन तथा मोक्ष के प्रदाता हैं, उन-उन योग्यताओं के अनुसार उन गुणों को प्रवर्तित करने के लिए सत्व, रज और तम — इन गुणों को धारण करनेवाले हैं, परन्तु सत्वादि गुणों का आश्रय होने पर भी गुणातीत हैं, जन्मादि से रहित हैं अर्थात् अनादिकाल से अविनाशी होने के कारण संसार के बन्धन से मुक्त हैं, अनन्त वेदों द्वारा पूर्णरूप से न जाने जा सकने योग्य हैं, प्रणतजनों के लिये एकमात्र परमाश्रय तथा सव का आधार हैं, ब्रह्मादि देवताओं में श्रेष्ठ हैं, अर्थात् उनके सत्यलोकाधिपत्य का नियमन करनेवाले हैं, अतः वे श्रीवेङ्कटेश्वर देवों के भी देव हैं ।

विशेषार्थ —

"दिवु" धातु से देव शव्द उत्पन्न है। "दिवु" धातु के लिये "दिवु क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहारा, द्युति, स्मृति, मोद, मद, स्वप्न,

कान्तिगतिषु" इस प्रकार धातु-विवरण के अनुसार अनेक अर्थ होते हैं। जैसे – द्युति = प्रकाशस्वरूप, मोद = आनन्दस्वरूप, कान्ति = कान्ति स्वरूप, गति = ज्ञानस्वरूप — होने के कारण 'देव' कहलाते हैं। सर्वोत्तम होने के कारण 'देवर' कहलाते हैं। ऐसे देवर श्री श्रीनिवास विशेषरूप से पूजनीय हैं। उनके अनन्त गुणों का वर्णन वेद भी नहीं कर सकते हैं।

श्रीहरि से हीचराचर जगत उत्पन्न होता है, यह श्रुति ने स्पष्टरूप में निर्देश किया है — 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति, तद्विजिज्ञासस्व, तद्ब्रह्मेति।

सृष्टिरक्षाहृतिर्ज्ञानं नियत्यज्ञानबन्धनान्।
मोक्षं च विष्णुतस्त्वेव ज्ञात्वा मुक्तिर्नचान्यथा॥

इस श्लोक में विष्णु ही 'सृष्टचाद्यष्टकर्ता' कहा गया है। 'चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिः' इससे नियम बताया गया है। 'त्वं मुक्तिदो बन्धदोऽतो मतो नः। त्वं ज्ञानदोऽज्ञानदश्चापि विष्णो' इस श्रुति वचनमें ज्ञान, अज्ञान, बन्धन, मोक्ष देनेवाला विष्णु ही कहा गया है। य़ोगुणैः सर्वतो हीनः। शुद्धः केवलो निर्गुणश्च। साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च। इत्यादि श्रुतियों ने श्रीहरि को सत्त्वादि प्राकृत गुणों से रहित कहा है। 'अदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्ते' इत्यादि श्रुतियों के अनुसार विष्णु पूर्णरूप से न आँखों से देखे जा सकते हैं; न वाणी से वर्णन किये जा सकते हैं।

नित्यं ब्रह्मा शिवः शेषगरुडेन्द्रादयोऽमराः।
पूजयन्ति महाभक्त्या वेङ्कटेशं श्रिया सह॥ 14

ब्रह्मा, रुद्र, शेष, गरुड, इन्द्रादि श्रेष्ठ देवगण श्रीरमा सहित भगवान श्री श्रीनिवास को नित्य-निरन्तर श्रद्ध-भक्ति से पूजते हैं। उन्हीं की तरह भगवती लक्ष्मी जी भी श्रीहरि का पूजन बड़ी निष्ठा से करती हैं। अतः भगवान श्रीहरि समस्त देवताओं में श्रेष्ठ एवं पूज्य हैं।

सम्बन्ध — श्रीहरि की पूजा मात्र ही नहीं, अपितु अनेक प्रकार से स्तुति भी करनी चाहिये। इस जिज्ञासा के संदर्भ में कहते हैं।

चराचरगुरुर्देवः सर्वसाक्षी महेश्वरः ।
जप्यस्तप्योऽर्चनीयश्च स्मर्यो ध्येयोऽखिलैरपि ।। 15

चेतनाशील मनुष्यादि जीवों के ज्ञानोपदेशक, जडरूप वृक्षादि के कर्ता, सर्व जगत के साक्षीभूत (सभी पदार्थों को प्रत्यक्ष देखनेवाले), सभी देवताओं में सर्वोपरि तथा रमा, ब्रह्मादि देवेश्वरों के स्वामी श्री श्रीनिवास सनातनकाल से सब के द्वारा पूज्य, स्मरणीय एवं ध्येय हैं तथा आज और आगे भी पूजनीय हैं।

विशेषार्थ —

'जप्यते इति जपः। जपमानसे' अथवा 'जप अव्यक्ते शब्द' इस प्रकार जप का अर्थ है। 'सदैवाखण्डितं ध्यानं तप इत्युच्येते बुधैः' इस तरह तपः का अर्थ है। सर्वकाल सर्वावस्था में अखण्ड संलग्नता से एकमात्र सच्चिदानन्दघन परमात्मा का चिन्तन करना ही ध्यान है।

सम्बन्ध — उपर्युक्त ध्यान आदि के द्वारा भगवान के दिव्य मङ्गल स्वरूप का दर्शन किया जा सकता है। परन्तु जो व्यक्ति ध्यान आदि साधन नियमपूर्वक करने में असमर्थ है, वह मात्र भगवन्नाम का स्मरण करें। यही उसके लिये सुलभ मार्ग है। अब उस भगवन्नाम के माहात्म्य का फल स्पष्ट करते हैं।

तन्मनास्तद्गतप्राणो भक्त्या तन्नाम संस्मरेत् ।
गोदानान्यश्वमेधाद्याः कन्यादानान्यसङ्ख्यया ।। 16

असङ्ख्यमेरुसौवर्णदानान्यन्यान्यनेकशः ।
तन्नामस्मृत्यतुल्यानि माहात्म्यं किमुताद्भुतम् ।। 17

परमात्मा में दृढ़तापूर्वक मन लगाकर अनन्य श्रद्धा-भक्ति द्वारा अपने-आपको अर्पितकर सदा-सर्वथा उनके माहात्म्य-ज्ञान अर्थात् उनके नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूप का चिन्तन, भजन और स्मरण करें। असंख्य गोदान, अश्वमेध आदि यज्ञ तथा असंख्य कन्यादान और असंख्य मेरुपर्वत-सदृश सुवर्णदान – इस प्रकार के अनेकानेक महान दान भी श्रीनिवास के नाम-स्मरण के समान नहीं है। कितना अद्भुत है, श्रीनिवास का माहात्म्य !

इति शेषेण कथितं कपिलाय महात्मने ।
कपिलाख्यमहायोगिसकाशात्तु मया श्रुतम् ।। 18

ऐसे माहात्म्य को श्री शेषनाग ने मेरे गुरु और महानुभाव कपिल से कहा। मैंने उन महायोगी कपिल के द्वारा सुना।

तदुक्तं भवतामद्य सद्यः प्रीतिकरं हरेः ।
अतो वो मङ्गलार्थं च शृणुध्वं यन्मयोच्यते ।। 19

जिससे भगवान श्रीनिवास की असीम कृपा शीघ्र ही प्राप्त होती है तथा सभी मनःकामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, ऐसे मंगलप्रद श्रीहरि के माहात्म्य को जिसे कपिलमुनि के द्वारा मैंने सुना था, उसे अब आपके कल्याण के लिये सुनाता हूँ। भक्तिपूर्वक सुनें।

श्रीवेङ्कटेशयात्रार्थं गच्छध्वं सुदृढव्रताः ।
विष्णुसन्दर्शनं कृत्वा भक्तिमन्तो जितेन्द्रियाः ।। 20

आप लोग संयतमन से, अनन्य भक्तिभाव से, सुदृढ़ व्रत-परायण होकर भगवान श्री वेङ्कटेश की पद-यात्रा करें। तथा

श्रवण-मनन-ध्यानादि अनुष्ठानों के द्वारा सर्वेन्द्रियों को संयमित कर सर्वान्तर्यामि, सर्वशक्तिमान, सब के नियन्ता, परम कल्याणगुणमय, सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान विष्णु का तन्मयता से दर्शन करें।

स्तोत्रं कुरुध्वं बहुधा भगवद्गुणवर्णनैः ।
स्वगुणोत्कर्षविज्ञानात् यथा प्रीतिर्निजे हरेः ।। 21

आप लोग अपने गुणोत्कर्ष-विज्ञान तथा अनन्य भक्ति से ऐसे स्तोत्र-पाठादि के द्वारा भगवान श्रीनिवास के गुण-वर्णन कीजिये जिससे वे अपने भक्तों के ऊपर कृपा-वृष्टि करें ।

न तादृशी प्रीतिरस्ति ह्यज्ञानादन्यथामतौ ।
भक्त्या स्तोत्रेण सन्तुष्टः सर्वेष्टानि प्रवर्षति ।। 22

श्रीविष्णुसूक्त, पुरुषसूक्त आदि में प्रतिपादित भगवद्-गुण-वर्णन द्वारा की जानेवाली स्तुति से भगवान श्रीहरि अवश्य प्रसन्न होते हैं। ऐसा न करके, अज्ञान से, माहात्म्य-ज्ञान के बिना, भगवद्-गुणोत्कर्ष-ज्ञान के बिना तथा भक्ति रहित स्तवों से भगवान संतुष्ट नहीं होते । क्योंकि तन्मयतापूर्वक स्तुति-प्रार्थना करने पर ही दिव्य गुणधाम भगवान आह्लादित होकर सभी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं ।

विशेषार्थ —

न तादृशी प्रीतिरीड्यस्य विष्णोः गुणोत्कर्षज्ञातरि यादृशी स्यात् ।
तत्प्रीणनान्मोक्षमाप्नोति सर्वः ततो वेदास्तत्परास्सर्व एव ।।

इत्यादि प्रमाणों के द्वारा ज्ञात होता है कि भक्ति और विश्वास के साथ भगवान का स्तोत्र-पाठ करना चाहिये ।

भक्तिस्तोत्रादिहीनेषु दयावान् न भवेत्तथा ।
अत्र वः कथयामीष्टं इतिहासं पुरातनम् ।। 23

भक्ति-स्तोत्र आदि से विहीन मनुष्यों पर भगवान की कृपा कदापि नहीं होती । इस से संबन्धित एक रोचक और प्राचीन इतिहास आप से बतलाता हूं ।

यस्य स्मरणमात्रेण भक्तिर्विष्णुपदाम्बुजे ।
वायुशिष्यो देवशर्मा विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ।। 24

जिसके (चरित्र) स्मरण करनेमात्रसे भगवान विष्णु के दिव्य चरण कमलों में अनन्य भक्ति सुदृढ़ हो जाती है, ऐसे परम भक्त की कथा सुनाता हूं । वायुदेवता के एक शिष्य 'देवशर्मा' बड़े विष्णु भक्त थे । उन्होंने अपनी इन्द्रियों को वशमें करके सम्पूर्ण मनोवृत्तियों को परमात्मा में लगा दिया ।

तपस्वी ब्रह्मनिष्ठावान् सर्वदा विष्णुचिन्तने ।
ममताऽहङ्कारवर्ज्यो विषयेषु विरागवान् ।। 25

वे बड़े तपस्वी, अत्यंत निष्ठावान् तथा सदैव वेद-शास्त्रों का स्वाध्याय करते हुए श्रवण, कीर्तन, स्मरण, जप आदि के द्वारा भगवान विष्णु के सच्चिदानन्द स्वरूप का चिन्तन करनेवाले, ममता और अहंकार से रहित, निर्मल हृदयवाले, राग-द्वेष एवं विषय-विकार से पूरी तरह दूर थे ।

'तप-आलोचने' इस धातु के अनुसार देवशर्मा भगवन्माहात्म्य विषयक वेद-शास्त्रों का सदा चिन्तन करते थे । 'स्वाध्याय प्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धि तपः तद्धि तपः' इस उपनिषद् वाक्य का पालन करते हुये उन्होंने सभी लौकिक इच्छाओं को पूर्णतया त्याग दिया । वे भगवान विष्णु को ही अपने जीवन की चरम और परम गति मानते थे ।

षट्च्छत्नुविजयी शान्तः षट्तरङ्गसुभङ्गकृत् ।
कुटुम्बे न मनःकारी दारिद्र्यात् पीडितोऽपि च ।। 26

उन्होंने षड्रिपुओं (काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्य) को दमनकर सुख-दुःख को अपना प्रारब्ध या भगवत्-प्राप्त समझकर गहन शान्ति का अनुभव करते हुए तनाव, दुःख, कष्ट और क्लिष्टपूर्ण परिस्थितियों में भी अपने को निश्चल बना लिया। उन्होंने आहारेच्छा, पानेच्छा आदि छः तरंगों का नाश किया। गरीब होते हुये भी वे अपने कुटुम्ब की चिन्ता अपने मन में कभी नहीं आने देते थे। अपितु राग-रहित होकर निर्लिप्ततापूर्वक अपने आत्मकल्याण में ही निरत रहते थे।

विशेषार्थ —

संसार में यद्यपि दुःख तरंगें अनेक हैं। परन्तु 'योऽशनाया पिपासे शोकं मोहं जरामृत्युमत्येति' इस श्रुति के अनुसार अशनाया (भूख) – पिपासा (प्यास) आदि छः दुःख तरंगों को मुख्य माना गया है।

उत्पत्तिरस्ति वृद्धिश्च परिणाम अपक्षयः ।
विनाश इति षड्भावाः न सन्ति परमात्मनः ।।

1. उत्पत्ति – गर्भ से पैदा होना; 2. अस्ति – पृथ्वी पर जीवित होना; 3. वृद्धिः – बढ़ना; 4. परिणामः – बाल्य-किशोर-वृद्धादि अवस्था पाना; 5. अपक्षयः – वृद्धावस्था में क्रमशः क्षीण होना; 6. विनाशः – शरीर नष्ट होना। — ये षड्भाव कहे जाते हैं। परमात्मा में ये नहीं होते हैं।

भार्यया प्रार्थितो नित्यं दारिद्र्यापगमेच्छया ।
"भो नाथ! हे पते! स्वामिन्! प्रसीद करुणाकर! ।। 27

पतिपरायणा पत्नी प्रतिदिन देवशर्मा से 'हे नाथ! पति! स्वामी! करुणाकर! दरिद्रता को दूर करने की कृपा कीजिये' इस तरह प्रार्थना करती थी।

क्षुधया पीडिता बालाः तव पुत्राश्च केवलम् ।
न शक्ताऽहमरण्येषु कन्दमूलार्जनादिषु ।। 28

आपके ये छोटे-छोटे बच्चे इस तरह भला कितने दिन तक दाने-दाने के लिये तरसते रहेंगे ? मैं तो वन में जाकर कन्द-मूल आदि ले आने में असमर्थ हूं ।

रक्षको मम नान्योऽस्ति शिशूनां पालनेऽपि च ।
कृपां कुरुष्व शिशुषु विज्ञापनमिदं शृणु ।। 29

मेरी रक्षा तथा इन बालकों की देखभाल करनेवाला आपके सिवाय दूसरा कोई नहीं । इन पर कृपा कीजिये और मेरी विनम्र प्रार्थना सुनिये —

कुलस्वामीष्टदेवो नो जगद्रक्षणदीक्षितः ।
शरणागतसन्त्राणः श्रीनिवासः सतां गतिः ।। 30
पालको हि बहूनां च भक्तानां भक्तवत्सलः ।

आदिकाल से हम लोगों के कुलदेवता, इष्टदेवता, जगत की रक्षा करने में दीक्षित, शरणागतों के उद्धार करने में तत्पर, और सज्जनों के आश्रय, भक्तवत्सल श्रीनिवास सभी प्रणतजनों के पोषक हैं । ऐसी उनकी ख्याति है ।

विशेपार्थ —

1. शरणागति याने —

सर्वोत्तमत्व विज्ञानपूर्वं तत्र मनस्सदा ।
सर्वाधिकप्रेमयुक्तं सर्वस्यात्र समर्पणम् ।।
अखण्डा त्रिविधा पूजा तद्रत्यैव स्वभावतः ।
रक्षतीत्येव विश्वासः तदीयोऽहमिति स्मृतिः ।।
शरणागतिरेषा स्यात् विष्णौ मोक्षफलप्रदा ।।

श्रीहरि ही सर्वोत्तम हैं। — इस ज्ञान से, उन्हीं में सदा मन लगाकर परम प्रेमपूर्वक सब कुछ उनके चरणों में अर्पित कर दें। यह निश्चय कर लें कि 'वे ही मेरे रक्षक हैं और मैं उनका भक्त एवं दास हूं।' इस प्रकार देव-उपासना में निरत होना ही 'शरणागति' है। इस निश्चित ज्ञान से जीव मुक्ति प्राप्त करता है।

2. 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' गीता में भी कहा गया है। 'भव मम शरणं' इसी तरह कई जगहों में आपन्न-उद्धारक प्रभु से प्रार्थना की गयी है।

तल्लक्ष्मीपतिपादाब्जं गत्वा तत्प्रार्थनां कुरु।

भगवान सहज दयामय हैं। अपने भक्तों की रक्षा एवं आश्रितों पर प्रीति करनेवाले लक्ष्मीपति श्रीवेङ्कटेश के चरण-कमलों की शरण में जाकर उनसे प्रार्थना कीजिये।

तेन प्रीतो भवेत् सद्यः ततोऽस्मज्जीवनं भवेत्।
प्रसीद त्वं दयासिन्धो दयां कुरु दयां कुरु॥" 32

हमारी प्रार्थना से श्रीहरि तुरंत प्रसन्न हो जायेंगे। उनकी अमृत-वर्षिणी दया से हमारा जीवन सुखमय हो जायेगा। हे दया के सिन्धु स्वामी! प्रसन्न हो जाइये! दया कीजिये! दया कीजिये!

इति दैन्येन महता प्रार्थितोऽहर्निशं तया।
न स्वीचकार तद्वाक्यं तपोविघ्नभयात्तदा॥ 33

इस प्रकार अपनी धर्मपत्नी द्वारा दिन-रात अत्यंत दीनता से प्रार्थना की जाने पर भी देवशर्मा टस-से-मस न हुये। "ऐसे करने पर कहीं सत्-शास्त्र-प्रवचन में रुकाट एवं स्वाध्यायरूपी तपस्या में अश्रद्धा न हो।" इस विघ्न के भय से वे अपनी स्त्री की बात पर ध्यान नहीं देते।

दिष्टया चादृष्टपाकेन तद्गुरुर्वायुरागमत् ।
पतिव्रतायां शिशुषु प्रसन्नः करुणानिधिः ।। 34

दैवयोग से दारिद्रयग्रस्त परिवार को उबारने का समय निकट आया। अपने शिष्य की धर्मपत्नी के पातिव्रत-आदर्श से संतोष होकर तथा भूखे पड़े उन वच्चों की दैन्य-स्तिथि पर द्रवित होकर करुणानिधान गुरु वायुदेव वहाँ आये।

तपोऽवसाने सम्प्राप्तं स्वगुरुं जगतां गुरुम् ।
दृष्ट्वा मुदा देवशर्मा सहसोत्थाय चागदत् ।। 35

साष्टाङ्गं तं प्रणम्याथ बद्धाञ्जलिपुटोऽभवत् ।
ततो वायुः प्राह शिष्यं मधुरं वचनं हितम् ।। 36

तपस्समाप्ति के समय पर आये हुए रुद्रादि देवताओं में श्रेष्ठ और अपने ही गुरु वायुदेव को देखकर देवशर्मा (इष्ट की प्राप्ति से) अत्यधिक आनन्द मग्न हो गये। उन्होंने आदरपूर्वक साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया और गुरु के समक्ष नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर खड़ा हो गये। तब वायुदेव देवशर्मा से इस तरह शाश्वत एवं श्रेयस्करयुक्त मधुर वचन बोले—

श्रीमद्वेङ्कटनाथस्य यात्रार्थं गच्छ मा चिरम् ।
तेनेहाऽमुत्र तेऽभीष्टसिद्धिर्भवति नान्यथा ।। 37

हे प्रिय शिष्य ! तुम वेङ्कटाचलाधीश्वर श्री लक्ष्मी वेङ्कटेश की यात्रा के लिए शीघ्र ही निकल जाओ। विलम्ब न करो। इस यात्रा से लौकिक और पारलौकिक आकांक्षाएँ पूर्ण हो जाती है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं, अन्यथा तुम्हारा मनोरथ पूर्ण नहीं होता।

लक्ष्मीपतेर्दयासिन्धोः ब्रह्मादिवरदायिनः ।
यात्रायां मास्तु सन्देहः शीघ्रं गच्छ सुभक्तिमन् ।।" 38

ऐश्वर्याभिमानी श्री लक्ष्मी के पति, दया के सागर तथा ब्रह्मादि देवताओं के वर प्रदाता श्रीवेङ्कटेश की यात्रा के संबन्ध में किसी तरह का संदेह नहीं होना चाहिए। अतएव उनके दर्शनार्थ अत्यंत भक्ति और विश्वास के साथ तुरंत ही जाओ।

इति देवाद्युत्तमेन गुरुणा वायुनेरितः ।
मुहुर्मुहुर्बोधितोऽथ विष्णुयात्रामहादरः ।। 39
गुरूक्तमर्थं जग्राह गुरुवाक्ये सदा रतः ।
गुरूपदेशो बलवान् गुरोराज्ञां न लङ्घयेत् ।। 40
इत्यर्थमनुसन्धाय प्रतस्थे शेषपर्वतम् ।
तत्र श्रीवेङ्कटेशस्य सन्दर्शनमहादरः ।। 41

इस प्रकार रुद्रादि देवताओं में श्रेष्ठ, जगद्गुरु तथा अपने गुरु वायुदेव के बार-बार कहने पर श्री श्रीनिवास की यात्रा में अत्यधिक निष्ठवाले एवं गुरु-वाक्य का सदा पालन करने वाले देवशर्मा ने वायुदेव के वचन को स्वीकार किया।

गुरु का उपदेश इष्ट-सिद्धि का साधक है। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य है। 'समाश्रयेद्गुरुं भक्त्या गुरोः श्रीपादपङ्कजे' इस स्मृति वाक्य का अनुसंधान करके 'तेनेहामुत्र तेऽभीष्टसिद्धिः' (37 श्लोक में) गुरु के कहे अनुसार शेषगिरि पर विराजित भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के दर्शन की प्रबल इच्छा देवशर्मा को हुई। उन प्रभु की कृपा से अपरोक्षज्ञान प्राप्त होता है, जिससे परम शान्ति मिलती है। यही मानव जीवन का सर्वोत्तम पुरुषार्थ है। इस तरह विचार करके देवशर्मा ने श्रीवेङ्कटाचल की यात्रा की।

विशेषार्थ —

1. मति-श्रुतिं-ध्यान-काल-विशेषं गुरुरुत्तमः ।
वेत्ति तस्योक्तिमार्गेण कुर्वंतः स्याद्धि दर्शनम् ।।

इस प्रकार ब्रह्मसूत्र के भाष्य की व्याख्या है । श्रवण, मनन, ध्यानादि के काल विशेष को श्रेष्ठ गुरु ही जानते हैं ।

2. 'गुरूपदेशो बलवान् न तस्माद्बलवत्तरम्' गुरु के उपदेश से बढ़कर और कोई अधिक बल है ही नहीं । अतः उसका आचरण करनेवालों को भगवत्-साक्षात्कार अवश्य होता है ।

3. यया यस्य विमुक्तिः स्यात् तद्दाता मुख्यतो गुरुः ।
एकदेश गुरुत्वंस्यादन्यविद्याप्रदस्य तु ।। — बृहद्भाष्य

वे ही मुख्य गुरु हैं, जो अपने शिष्यों की मुक्ति के लिये वेदादि विद्या का उपदेश देते हैं । अन्य विषय की शिक्षा देनेवाले गुरु गौण हैं ।

4. 'महत्सेवां द्वारमाहुः विमुक्तेः तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम्' महापुरुषों की सेवा मुक्ति का द्वार है तो स्त्रियों का संग नरक का । (भागवत स्कंद 5)

5. 'सम्यक् गुरुप्रसादश्च मुख्यतो दृष्टिकारणम्' ।
गुरु के अनुग्रह से अपरोक्षज्ञान प्राप्त होता है ।

6. गुरुप्रसादो बलवान् न तस्माद्बलवत्तरम् ।
सर्वलक्षण सम्पन्नः यद्दद्यात्सुप्रसन्नधीः ।।
शिष्याय सत्यं भवति तत्सर्वं नात्र संशयः ।

जब गुरु संतुष्ट होकर उपदेश देते हैं, वह सार्थक होता है ।

7. 'आचार्याद्धयेव विद्या विदिता साधिष्ठं प्रापयति' ।

गुरु के उपदेश के बिना जो विद्या केवल पुस्तक ज्ञान से प्राप्त की जाती है, वह मोक्ष का साधन नहीं होती ।

8. अप्रसादाद्गुरोर्विद्याः न यथोक्त फलप्रदाः ।
विद्याः कर्माणि च सदा गुरोः प्रोक्ताः फलप्रदाः ।।

गुरु के अनुग्रह के बिना विद्याएँ सफल नहीं होती। गुरूपदिष्ट विद्याएँ और कर्म यथोक्त फल प्रदान करने में सक्षम हैं।

9. भक्त्या ज्ञानात् निषिद्धानां त्यागान्नित्यं हरिस्मृतेः ।
अपरोक्षदर्शनं विष्णोर्जायते नान्यथा क्वचित् ।।

भक्ति, ज्ञान, निषिद्ध कर्मों का परित्याग एवं सदा हरिस्मरण— इनसे अपरोक्षज्ञान प्राप्त होता है।

आनन्दज्ञानदं विष्णुं आनन्दमयनामकम् ।
आनन्देन ददर्शाथ आनन्दनिलयालये ।। 42

भगवान अनन्त, असीम, इहलोक और परलोक के सुख-वैभव सहित अक्षय आनन्द के आगार हैं। वे अनन्तकाल से अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड के प्राणियों को सुख-ऐश्वर्य अर्थात् दीर्घायु, धन-सम्पत्ति, नीरोगता, पुत्र, मित्र, दारादि तथा परलोक के आनन्द अर्थात् मोक्षोपयुक्त वेद-शास्त्रों के तत्वज्ञान अथवा अपरोक्षज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। (निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनं । अनुव्रजाम्यहं।' भागवत की इस उक्ति से भगवान भक्त के अधीन हैं। तथा 'अन्नमय–प्राणमय–मनोमय–विज्ञानमय –आनन्दमया मे शुध्यन्तां।' इस उपनिषद् वचन के अनुसार भगवान आनन्दमय नाम के हैं। 'तादात्म्यर्थे विकारार्थे प्राचुर्यार्थे मयट्त्रिधा'— इस कथन से भगवान पूर्णानन्द स्वरूप होने के कारण वे आनन्द पदबोध्य हैं। देवशर्मा ने 'आनन्द निलय' नामक मंदिर में स्थित सर्वव्यापी श्रीविष्णु से अभिन्नरूप श्रीवेङ्कटेश्वर (बालाजी) का दर्शन आनन्दपूर्वक किया।

विहरन्तं श्रीधराभ्यां नानालीलाविलासिनम् ।
भक्तदर्शनमात्रेण प्रसन्नं मन्दहासिनम् ।।
श्रीवेङ्कटेशं संदृष्ट्वा भक्त्या नत्वाऽथसंस्तुवन् ।। 43

वहाँ श्रीदेवी और भूदेवीरूपा भगवती लक्ष्मीजी के साथ विहार करनेवाले, रसानुभूति के लिए उनके साथ अनेक प्रकार से लीला-विनोद करनेवाले, दर्शन करने मात्रसे अपने भक्तों पर प्रसन्न होनेवाले तथा मधुर मंद मुस्कानवाले उन श्री वेङ्कटेश के चिद्रूप श्रीविग्रह का दर्शन करके अत्यंत भक्ति से अपूरित हृदय से प्रणाम करते हुये देवशर्मा इस प्रकार स्तुति करने लगे —

देवशर्मोऽवाच —

दयानिधे दयानिधे दयानिधे दयानिधे ।
नमो नमो, नमो नमो, नमो नमो, नमो नमो ।। 44

1. दयानिधे — हे दया के परिपूर्ण !

2. दयानिधे — समस्त पापों का नाश करना तथा मोक्ष के सभी साधनों को प्रदान करना – इन दो गुणों के निधान !

विशेपार्थ —

'दो अवखण्डने' धातु से बना 'दः' शब्द, जिसका अर्थ है – समस्त पापों का नाश करना । अर्थात् भगवान श्रीनिवास सारे पापों को दूर करनेवाले हैं । 'सर्वपापानि वें प्राहुः कटः तद्दाह ईरितः' इस प्रकार स्मृति वचन के अनुसार भक्तों की समस्त पापराशि को श्री वेङ्कटेश नष्ट कर देते हैं। इस कारण, श्रीनिवास 'वेङ्कट' कहे जाते हैं।

'या प्रापणें' धातु से बना 'या' शब्द, जिसका अर्थ है – भगवान श्रीनिवास मोक्षादि सब प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त करा देनेवाले हैं ।

'वकारोऽमृतबीजं स्यादैश्वर्यं कट उच्यते' अमृत का कारणभूत

ऐश्वर्य ही 'वेङ्कट' कहा जाता है। 'तथा च दश्च या च दये, दयाभ्यां निधिः दयानिधः' सभी पापों से मुक्त करना तथा मोक्ष प्रदान करना — इन दोनों गुणों से परिपूर्ण हैं भगवान श्रीवेङ्कटेश।

3. दयानिधे — दैत्यादि दुष्टों का विनाश करना तथा उनको अन्धतमस नरक के कष्ट-क्लेशों को शाश्वतरूप से देना— इन दोनों गुणों से युक्त !

विशेषार्थ —

दानवों का संहार करने के कारण 'द:' तथा उनको अन्धतमस नरक देने से 'या' कहे जाते हैं। 'दयाभ्यां निधिः दयानिधिः'

4. दयानिधे — भक्तों को इच्छित पदार्थ और वैकुण्ठ आदि का निवास प्रदान करना — इन दो गुणों से परिपूर्ण हे भगवान ! आपको बारंबार नमस्कार करता हूँ।

विशेषार्थ —

'डुदाञ् दाने' इस धातु के अनुसार ददातीति = दः का अर्थ है, दान देने के स्वभाववाले।

'या' का अर्थ है, भक्तों को अपने वैकुण्ठादि लोकों को ले जाना — इन दो गुणों के कारण निधे = परिपूर्ण हे श्रीनिवास ! आपको नमस्कार है।

देवशर्मा ने अष्ट-ऐश्वर्यों तथा अष्ट-पुत्रों की अभ्यर्थना करते हुये आठ बार 'नमः' शब्दोच्चारण किया। यह तो भगवत्-प्रेरणा से ही हुआ। तदनुसार भगवान ने आठ सिद्धियाँ प्रदान कीं। (अ. 5; श्लो. 59 – 60 के द्वारा विदित होता है।)

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिः प्रकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्ट सिद्धयः ॥

इन आठ सिद्धियों को अष्ट-ऐश्वर्य कहे जाते हैं।

सम्बन्ध — श्री लक्ष्मी जी कमल पर विराजमान रहती हैं। अतः यहाँ प्रभु की कमल के पर्यायवाची 'पद्म' शब्द के द्वारा स्तुति करते हैं।

श्रीपद्मनाभ पद्मेश पद्मजेशेन्द्रवन्दित ।
पद्ममालिन् पद्मनेत्र पद्माभयदरारिभृत् ।। 45

हे स्वामिन् ! अपने नाभि कमल से चतुर्मुख ब्रह्मा की सृष्टि करनेवाले पद्मनाभ ! लक्ष्मीवल्लभ ! पद्मसम्भव ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, इत्यादि देवताओं द्वारा वन्दित! चरणों तक लटकते हुए कमल की माला से सुशोभित ! कमलदल-जैसे नेत्रवाले ! अपने चार हाथों में क्रमशः पद्म, अभयमुद्रा, शङ्ख एवं चक्र धारण करनेवाले !

लक्ष्म्येवोदकरूपेण शय्यारूपेण चाण्डजः ।
आसीद्गर्भोदके चेत्थं नान्यदासीत्कथञ्चन ।।
तस्यनाभेरभूत्पद्मं सौवर्णं भुवनाश्रयम् ।
तत्प्राकृतं च विज्ञेयं भूदेवी अभिमानिनी ।।

पद्माद्धिरण्मयाज्जातो ब्रह्मातु चतुराननः । गारुड अ. 11-20, 49

स्वयं लक्ष्मी जी सेविका बनकर जलरूप में विद्यमान रहती हैं। भगवान की नाभि से सुवर्ण कमल की उत्पत्ति हुई। उसमें से ब्रह्माजी प्रकट हुए।

पद्मपाणे पद्मपाद सर्वहृत्पद्मसंस्थित ।
त्वत्पादपद्मयुगलं प्रणमाम्यतिसुन्दरम् ।। 46

कमल के समान सुन्दर और सुकोमल हाथों और चरणों वाले ! सबके हृदय कमल पर स्थित होनेवाले हे श्रीनिवास ! अत्यन्त सुन्दर आपके युगल चरण कमलों को मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूं।

विशेषार्थ —

नित्यानन्दः समुद्दिष्टः वरिति ज्ञानमुच्यते ।
मुक्तिदानेन तद्दानात्सुवरस्य पदद्वयम् ।।

भगवान के दाहिने चरण को 'सु' और बायें चरण को 'वर' कहा जाता है। 'यं यं यथोपासते तत्तथैव भवति' इस वचन के अनुसार ज्ञान और आनन्दस्वरूप उन दोनों चरणों की वन्दना करने पर ज्ञान और आनन्दस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः भगवान के दोनों चरणों का नमन करना चाहिये ।

त्वत्पादपद्ममाहात्म्यमप्यनन्तं त्रिविक्रमम् ।
यत्कनिष्ठाङ्गुलिनखमण्यग्रगुणसङ्गतान् ।। 47

अनन्तान् सुविशेषांश्च पश्यन्ती श्रीर्निरन्तरम् ।
स्तोतुकामाऽक्षीणदीक्षा हर्षादाश्चर्यसागरे ।। 48
गहने गाहमानाऽभूत् अनन्तश्रुत्यगोचरे ।

हे स्वामी ! कमल-सदृश आपके चरणों की महिमा अनन्त है। त्रिविक्रम (वामन) अवतार लेकर आपने एक ही चरण से चौदह भुवनों को नापकर ब्रह्माण्ड कवाट को भेदकर (जीव मात्र के कल्याणार्थ) गङ्गा को प्रकट कराया। ऐसे विराट्स्वरूप आपके चरण सरोज की महिमा असीम है, सर्वव्याप्त है और सर्वोत्कृष्ट है। आपके चरण में मुक्तामणि की भाँति चमकने वाली कनिष्ठांगुली के नखाग्र भाग में जो आनन्दादि विशेष गुण हैं, उनमें से एक-एक गुण की महिमा को श्रद्धाभाव से निरंतर देखती हुई स्तुति करने की इच्छावाली ज्ञानस्वरूपा लक्ष्मी जी भी पूर्णरूप से नहीं जान पायीं। ऐसे आपके चरण कमल की महिमा जो अनन्त वेदों को भी अगोचर है, उसे देख लक्ष्मी जी हर्ष और आश्चर्य के गम्भीर समुद्र में डूब गयीं।

विशेषार्थ —

त्रिविक्रम न विक्रमं गणयितुं फणी शक्नुते ।
तवेश नतवेपथुप्रशमनं परे किं पुनः ।।
अजाण्डघनभाण्डखण्डनपटीयसी यन्मृदु ।
प्रदीप्तनिगमोक्तवन्नखशिखा जगद्व्यापिनी ।।

इस तीर्थ प्रबन्ध वचन के अनुसार – हे त्रिविक्रम वामन भगवान्! भक्तों के भय आदि का नाश करनेवाले आपके इस पराक्रम की गणना करने में शेषनाग भी समर्थ नहीं हो सकते, तो दूसरा कौन समर्थ है ? क्योंकि अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त 'त्रिणिपदाविचक्रमे'; 'विचक्रमे पृथिवी मेष एतां' इत्यादि वेदों के प्रमाणानुसार आपके चरण की कनिठांगुली के नख का जो अग्रभाग है, वह ब्रह्माण्ड कटाह को भेदने में समर्थ हुआ। तात्पर्य यह है कि ऐसे त्रिविक्रम के पराक्रम का वर्णन करने में कोई भी समर्थ नहीं है ।

2. भगवान विष्णु के चरण की कनिठांगुली के नखाग्र में निहित एक गुण की एक महिमा को भी अनन्त वेद नहीं जान सकते हैं । वैसे ही ज्ञानस्वरूपिणी लक्ष्मीजी भी श्रीहरि के अनन्त महिमा-युक्त विशेष गुणों को जानने में असमर्थ होकर आश्चर्य-सागर में मग्न हुईं, तो फिर साधारण मनुष्य की कौन बड़ी बात है ।

3. 'त्रयः विक्रमाः यस्य सः' तीन चरण विक्षेप होनेवाले हैं । अथवा त्रि = तीन लोकों में; वि = गरुड से; क्रम = चरण विक्षेप या विचरण करनेवाले । अथवा, त्रीन् = तीन वेदों, कालों, गुणों, लोकों, देव-मान-दानवों, चेतनों, अचेतनों और मिश्रित पदार्थों का अपने चरण द्वारा आक्रमण करनेवाले हैं । ऋग्-भाष्य में कहा गया है ।

वेदान् कालान् गुणान् लोकान् देवमानुष दानवान् ।
चेतनाचेतनान् मिश्रान् त्रीणिपदा विचक्रमे ।।

त्वयोपदिष्टो यः पुत्रवात्सल्याच्चतुराननः ।। 49
त्वद्गुणानां च गणनात् आनन्दमतुलं भजन् ।
नाद्यापि विररामासौ गणनाद्देवराडपि ।। 50

आपके नाभि-कमल से उत्पन्न ब्रह्मा जी स्वयं आपसे (आप की महिमा) पुत्र-वात्सल्य के कारण उपदेश किये गये। परन्तु, हे श्रीनिवास! वे देवश्रेष्ठ चतुरानन आपके गुणों की गिनती आनन्दपूर्वक करते तो हैं, पर पूरा कर पाने में समर्थ नहीं हो सके। अभी वे उसी प्रयत्न में लगे हैं।

सहस्रवदनः शेषोऽशेषवेदार्थकोविदः ।
नाहं जाने इति ब्रूते यन्नखाग्राग्र्यवैभवम् ।। 51

सम्पूर्ण वेदों का अर्थ जाननेवाले और हजार मुखवाले शेषनाग भी यह कहते हैं कि श्रीनिवास के चरण के नखाग्र भाग में जो वैभव है, उसे मैं न ही जान पाता हूँ और न ही उसका बखान कर सकता हूँ। फिर सामान्य व्यक्ति भला कैसा कर सकता है।

अनन्त वेदाः भाषन्ते ह्यन्योन्यं प्रविचार्य च ।। 52

अनन्त वेदाभिमानी देवगण आपसमें विचारने लगे हैं कि भगवान अनन्त गुणैश्वर्यवाले हैं। उनके चरण के नखाग्र का वर्णन करना हमारे लिए दुःसाध्य है।

एकैकस्मिन्नधिकारे नियुक्ताः
एकैकशो ब्रह्मपूर्वाश्च विष्णोः ।
सर्वे देवाः स्वाधिकारे नियुक्ताः
सत्यादिलोकेषु यथाक्रमेण ।। 53

ब्रह्मादि हर देवता अपनी योग्यतानुसार भगवान विष्णु के द्वारा एक-एक अधिकार-पद पर नियुक्त किये गये हैं। वे देवगण सत्यलोक, स्वर्गलोक, सूर्यलोक, चन्द्रलोक इत्यादि के अभीष्ट भोगों का अनुभव करते हैं।

भुञ्जन्ति चेष्टानि महादरेण
भजन्ति शेषाचलगं रमेशम् ।
वयं त्वनन्ता हरिणा नियुक्ता
वेदाः स्तुतौ स्वस्य गुणानुभावम् ।। 54

वे ब्रह्मादि देवता अपने-अपने अधिकार में प्राप्त सब तरह के सुख-ऐश्वर्यों को भोगते हुए शेषाचल निवासी भगवान लक्ष्मीपति का सदा श्रद्धापूर्वक भजन करते हैं। हम लोग अनन्त वेद श्रीनिवास के गुणैश्वर्य माहात्म्य का वर्णन करने के लिए ही श्रीहरि के द्वारा नियुक्त हैं।

गुणास्त्वनन्ताः परमात्मनो यत्-
पदो नखाग्रस्थगुणैकदेशम् ।
स्तुतौ मिलित्वा वयमप्यशक्ताः
वेदास्त्वनन्ता जनितास्तदर्थम् ।। 55

जैसे परमात्मा के गुण अनन्त हैं, वैसे ही उनके गुणानुवाद करनेवाले हम (वेद) भी अनन्त हैं। हम सब मिलकर स्तुति करने पर भी श्रीहरि के अनन्त गुणों का वर्णन करने में असमर्थ ही हैं। अतएव उनके चरण-नख के अग्रभाग के गुणों का वर्णन करने में हम वेद अस्तित्वशील हैं। अर्थात् गुणलेश का वर्णन करने के लिए ही हम वेद बनाये गये हैं।

एवं सुनिश्चित्य गुणैकदेश
माहात्म्यमेते त्वविजानमानाः ।
उप(अप)क्रान्ताः स्तोतुमथो गुणैक
देशोऽप्यनन्तात्मतयाऽभिवृद्धः ।। 56

'नखाग्रभाग का एक अंश भी अनन्तानन्त रूप से बढ़ता जाता है तो उसका वर्णन करना असम्भव है' — इस प्रकार निश्चय करके वेद सम्पूर्ण माहात्म्य को नहीं जानते हुये, उन गुणों के एक अंश का ही जितना वे जानते हैं, उतना वर्णन करने के लिये उपक्रमित हो गये हैं। 'अपक्रान्ताः' — पाठ के अनुसार एक अंश का भी वर्णन करना असम्भव समझकर वे वेद निवृत्त हो गये हैं। अर्थात् भगवद्-गुणों की पूर्णतया स्तुति करने में वेद अशक्त हैं। फिर उनके गुण-माहात्म्य का वर्णन कौन कर सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ।

तं वीक्ष्य तेऽन्योन्यमथोचुरेकं
गुणं वदामो विसृजाम शेषान् ।
आरेभिरे पूर्ववदेव तेऽपि
गुणा ह्यनन्ताः फलदास्त्वावृताश्च ।। 57

इस प्रकार गुणैकदेश (चरण नखाग्र के एक अंश) को देखकर अनन्त वेदाभिमानी देवगण एक दूसरे से बोले — हम लोग अब तक एक ही गुण का वर्णन करेंगे, शेष छोड़ ही देंगे। ऐसा निश्चय करके उन्होंने गुणानुवाद करना प्रारम्भ किया । किंतु, पहले की तरह एक-एक गुण का अनन्त विस्तार हो गया, अर्थात् एक ही गुण अनेक शाखा-उपशाखाओं में बढ़ता हुआ फलप्रद बन गया ।

गुणैः समन्तात् शुभदैरनन्तैः
प्रत्येकशः किरणानीव पूष्णः ।
विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधश्च देवाः
दृष्ट्वा गुणान् अद्भुतानित्यवोचन् ।। 58

जिस तरह सूर्य की तीक्ष्ण किरणें सभी दिशाओं में व्याप्त हो जाती हैं, उनसे बढ़कर अत्यधिक ब्रह्मलोक पर्यंत ऊपर की ओर तथा नीचे पाताल तक फैले हुए अत्यंत आश्चर्य युक्त भगवद्-गुणों को देखकर वेद आपस में विचारने लगे कि एक-एक गुण आवरणरूप से सर्व शुभप्रद होकर अनन्तानन्त रूप से बढ़ रहा है।

द्रष्टुं श्रोतुं कीर्तितुं वाऽपि बोद्धुं
अशक्यं नः किमुत स्तोतुमेतान् ।
अस्मानतीतान् वयमल्पसाराः
किं वर्णयामोऽलमलं प्रशंसया 59

अत्यधिक महिमावाले इन गुणों को हम लोग आँखों से देखने, कानों से सुनने, मुँह से वर्णन करने तथा मन से समझने में असमर्थ हैं। ऐसे अगम-अगोचर इन गुणों का विस्तार से वर्णन करना हम-जैसे अल्प सामर्थ्यवाले वेदों के द्वारा कैसे सम्भव है? इसलिये हम अब यथाशक्ति उन देवाधिदेव श्रीहरि के गुणों की स्तुति करेंगे।

इत्युक्तवन्तः स्वमनोऽनुसारात्
गुणानेतान् वर्णयामासुरञ्जसा ।
तथाऽपि ते पादनखाग्रगेषु
गुणेष्वनन्तेषु विभाजितस्य ।। 60

गुणैकदेशस्य गुणैकदेशः
प्रवर्णितोंऽशा बहवो न वर्णिताः ।
एवं रमाऽजाहिपवेदमुख्याः
शक्ता नासन् वर्णने त्वद्गुणानाम् 61

इस प्रकार कहते हुए वेद (वेदाभिमान देवगण) अपने मन के अनुसार परमात्मा के गुणों का थोड़ा-बहुत वर्णन अत्यंत श्रद्धापूर्वक करने लगे, तथापि श्रीहरि के कमल चरण के नखाग्र में स्थित अनन्त गुणों में एक गुण को अनन्त भागों में विभक्त किये हुए अनन्त गुणों के एक देशिक गुणों का कुछ अंश तो वर्णन किया गया । किंतु वह भी पूर्ण नहीं, बहुत-से अंशों का वर्णन शेष रह गया । लक्ष्मी, ब्रह्मा, रुद्र, शेष, वेद इत्यादि भी आपके सम्पूर्ण गुणों को जानने में, देखने में और गिनने में समर्थ नहीं हो सके, तो साधारण हम जैसे की क्या बात है ।

सम्बन्ध — चरण महिमा का वर्णन कर समाप्त करते हुए कहते हैं —

यत्समस्तगुणान् विष्णोः वर्णने शक्तिवर्जिताः ।
अनन्तवेदास्तद्भूमन् गुणमाहात्म्यमीदृशम् ।। 62

भगवान श्रीनिवास के जिन सम्पूर्ण गुणों का वर्णन करने में अनन्त वेद भी असमर्थ हैं, उनका यह गुणमाहात्म्य का वर्णन अत्यल्प है ।

विशेषार्थ —

1. विष्णुः 'ष्णु-प्रस्रवणें' धातुसे 'विगतः स्नुः यस्य' अर्थात् नद्यादि की तरह प्रवाहित न होनेवाले ।

2. अथवा 'विशेषेण ष्णुः यस्मात्' इस व्युत्पत्ति से विशेषरूप से गङ्गादि नद्यादिकों को प्रवाहरूप में प्रवाहित करनेवाले।

3. 'विष्ऌ—व्याप्तौ' धातु के अनुसार विष्णु सर्व व्यापक हैं।

4. 'विश–प्रवेशने' धातु के अनुसार सब में अन्तर्यामीरूप में प्रवेशित हैं।

5. त्रिविक्रमरूप में तीन पगों से त्रैलोक्य को आक्रान्त करनेवाले हैं।

6. विष्णु नाम्नि 'ण' शब्देन विष्णोः बलमुदीर्यते।
'वष्णु' शब्द में 'ण' का अर्थ है बल।

'ण' इत्याक्रियमाणत्वात् णकारोऽस्यबल्नं मतम्।
विष्णुनाम्नि षकारेण रमाब्रह्मेशपूर्विणः।।
प्रणेतृताऽखिलस्यैव विष्णोरुक्ताऽत्मता तथा।
षकार का अर्थ— रमा, ब्रह्मा, ईश आदि निखिल जगत् को प्रेरित करनेवाले हैं।

आत तत्वं सर्वगुणैः देशतः कालतः तथा।
आत्मशब्दोदितं तच्च षशब्देनाभिधीयते।
आत्मा शब्द का अर्थ विष्णु है।
'ण' के विषय में भी परिपूर्ण समझना चाहिए।

'ष' इत्याक्रियमाणत्वं प्रणेतृत्वं च पूर्णता।
'ष' का अर्थ है प्रेरकत्व।

विष्णोः षकार इत्युक्तो वीत्युक्तस्य विशिष्टता।
अन्त्यस्थित उकारस्तु ताच्छील्याद्धरेर्वदेत्।
एवं विशिष्टप्राणत्वं अनन्तत्वं च सर्वतः।

विशिष्टं च बलं विष्णोः सर्वस्मा च्छीलमित्यपि ।
उदितं विष्णुशब्देन तस्मादृक्संहितामनु ।
वर्णद्वय समायोगे 'ष्णु' शब्दस्यार्थमेव तु ।
विष्णोः प्राणत्वमात्मत्वं बलं चैवात्र वेत्ति यः ।
स एव विष्णोः बलवित्तथा प्राणत्वविद्भवेत् ।
स एव मुक्तः संसारात् नित्यायुष्मान् भविष्यति ।

इस प्रकार ऐतरेय भाष्य में विष्णु शब्द का अनेक अर्थ कहा गया है।

इति श्रीमदादित्यपुराणे श्रीवेङ्कटेशमाहात्म्ये
श्रीनिवासपादनखाग्रादिमहिमानुवर्णनं नाम
प्रथमोऽध्यायः ।

श्रीमदादित्य पुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटेश माहात्म्य में
'पादनखाग्रमहिमावर्णन' नामक प्रथम अध्याय समाप्त ।

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

द्वितीय अध्याय

।। अथ श्रीश्रीनिवास दिव्यमङ्गलविग्रह सौन्दर्यादिवर्णनम् ।।

सम्बन्ध — अब तक भगवान श्रीनिवास की पाद-नखाग्र-महिमा का वर्णन किया गया है। पश्चात् उनके चरण-सौन्दर्य, चरण-रेखाओं तथा दिव्य मङ्गल शरीर-सौन्दर्यादि का स्तवन करते हैं।

देवशर्मोऽवाच —

इतोऽप्यथ त्वत्पादाब्जगतसौन्दर्यमद्भुतम् ।
स्वामिंस्त्वया प्रेरितश्चेत् यथामत्यनुवादये ।। 1

मङ्गलमय सर्वकार्य प्रेरकरूप हे स्वामिन्! आपके चरण-नखाग्र का जो गुणमाहात्म्य है और आपके चरण-कमल का जो सौन्दर्य-माधुर्य है वह महाद्भुत एवं वर्णनातीत है, तथापि आपकी प्रेरणा से मैं अपनी बुद्धि के अनुसार आपके श्रीचरणों का गुणानुवाद करता हूं।

वक्षःस्थापि रमादेवी तव पादाम्बुजे स्थितम् ।
सौन्दर्यमद्भुतं दृष्ट्वा सुन्दरी मोहिताऽभवत् ।। 2

हे प्रभो ! श्रीलक्ष्मी जी जो सदैव आपके वक्षःस्थल पर विराजमान हैं, वे स्वयं अतिशय सुन्दरी होते हुए भी वे आपके सर्वोत्कृष्ट चरण-कमल की अद्भुत सौन्दर्यराशि को देखकर मोहित हो गयीं।

विस्मिता द्रष्टुकामाद्धि स्वस्य नेत्रद्वयेन वै ।
अशक्यं दर्शनं मत्वा त्रिरूपा चाभवत्तदा ।। 3

अत्यधिक आश्चर्य से युक्त लक्ष्मी जी अपने दो नयनों से निरखने में असाध्य समझकर उस सौन्दर्य-माधुर्य को देखने की लालसा से वे तीन रूपों में परिणत हो गयीं।

हर्षात् श्रीरूपिणी वामे भूरूपा दक्षिणे स्थिता ।
दुर्गारूपाऽग्रभागस्था त्रिरूपा नेत्रषट्कतः ।। 4

आपकी मनोहर रूप-माधुरी का आस्वादन करने केलिये श्रीलक्ष्मी जी अत्यन्त उत्कण्ठित होकर आपके बायें श्रीदेवीरूप, दाहिने भूदेवीरूप तथा सामने दुर्गारूप धारण करके छः नेत्रों से देखती रहती हैं।

पश्यन्त्यनन्यमनसा सौन्दर्याख्यरसायनम् ।
पिबन्त्यप्यन्वहं नापि निवृत्ता तृष्णयाऽधुना ।। 5

इस प्रकार आपकी मनमोहक छवि को देखते हुये श्रीलक्ष्मीजी का मन अन्य किसी भी विषय में नहीं रमता तो वे सदैव आपके सौन्दर्यरूपी रसामृत के आस्वादन में संलग्न हुईं। फिर भी उनकी प्यास नहीं बुझी, तो वे अब तक उसी प्रयत्न से निवृत्त नहीं हुईं।

विशेषार्थ —

'अथावरण पूजायां लक्ष्मीं वामेहरेर्यजेत् । धरास्तु दक्षिणेपार्श्वे' अर्थात् बायीं ओर लक्ष्मी और दाहिनी ओर भूदेवी का पूजन होना चाहिए। इस प्रकार श्री जयतीर्थ (टीकाचार्य) ने अपनी पद्यमालिका में बतलाया है।

सम्बन्ध — चतुर्मुख ब्रह्मा के बारे में बताते हैं।

श्रीसुन्दर श्रीनिवास नाभिस्थश्चतुराननः ।
तव पादाम्बुजे रम्ये सौन्दर्ये लग्नमानसः ।। 6

सर्वलोक सुन्दररूप हे श्रीनिवास! अत्यन्त उत्तम स्थान अर्थात् आपके नाभि-कमल पर विराजित ब्रह्मा जी भी आपके चरण-कमलों के मनोरम सौन्दर्य को तत्परता से देखने में ही अपना मन लगाये रहते हैं।

विशेषार्थ —

1. श्रीः निवसति अस्मिन्निति श्रीनिवासः = लक्ष्मी इन्हीं में निवास करती हैं।

2. श्रियं न यतीति श्रीनिः = लक्ष्मी के प्रेरक हैं।

("वामनिर्भामनिः" इत्यादि की भाँति 'श्रीनिः' शब्द है। वस्ते = आच्छादयति सर्वं इति वासः, अथवा वासयतीति वासः, अथवा वसति सर्वत्रेतिवासः इस प्रकार 'वास' शब्द का भाव जाना जाता है। 'श्रीनिश्चासौवासश्च श्रीनिवासः' इस व्युत्पत्ति के द्वारा लक्ष्मी के प्रेरक एवं सर्वान्तर्यामी परमात्मा श्रीनिवास कहलाते हैं।

3. श्रियां निवसति अन्तर्यामितया = लक्ष्मी जी में अन्तर्यामीरूप में अवस्तिथ रहने से श्रीनिवास हैं।

4. तस्य नाभौरभूत्पद्मं सौवर्णं भुवनाश्रयम्।

पद्माद्धिरण्मयाज्जातो ब्रह्मा तु चनुराननः।। गारुड अ. 20, 49

— श्रीहरि की नाभि से सुवर्ण कमल उत्पन्न हुआ। उसमें से चतुर्मुख ब्रह्मा आविर्भूत हुये।

अष्टनेत्र्या दिवारात्रं पश्यन् सौन्दर्यमद्भुतम्।
नालं नेत्राष्टकमिति बहुरूपी तदाऽभवत् ।। 7

चतुरानन ब्रह्मा ने अपने आठ नेत्रों से रात-दिन आपकी आश्चर्यमय सौन्दर्यराशि को निरखते हुए भी पर्याप्त नहीं समझ पाया। अतएव उन्होंने अनेक रूप धारण किये।

कण्ठे च कौस्तुभं नाभौ वैकुण्ठादित्रिधामसु।
सत्यलोके च मेर्वादौ सर्वत्र चतुराननः ।। 8

चतुर्मुख ब्रह्मा ने परमात्मा श्रीनिवास के गले में शोभित कौस्तुभ रूप में, नाभिकमल में, एवं श्वेतद्वीप, अनन्तासन, और वैकुण्ठ — इन तीनों दिव्य धामों में तथा सत्यलोक मेरु पर्वत आदि कई स्थलों में बहुरूप धारण किये।

विशेषार्थ —

1. 'अनन्तासन वैकुण्ठ नारायण पुराणि तु।
त्रीणि धामानि वै विष्णोः' — श्वेतद्वीप, अनन्तासन और वैकुण्ठ – ये तीन भगवान विष्णु के धाम हैं। ब्रह्माण्ड का औसत विस्तार पचास करोड़ योजन हैं।

2. मध्यभागे तस्य मेरुः लक्षयोजनमुच्छ्रितः –
उसके मध्य में मेरुपर्वत स्थापित है जो एक लाख योजन लम्बा है।

जम्बूद्वीपोऽभितोमेरोः पञ्चायुतमितः स्मृतः।
लक्षयोजनविस्तार एवं द्वीपोऽयमुच्यते ॥

3. प्लक्षादि द्वीपषट्कन्तु क्रमात्-द्विगुणितं मतम्।
परितो वलयाकाराः सप्तानां सप्तसिन्धवः ॥

जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तारवाला है। प्लक्षादि छः द्वीप हैं। ये सभी परस्पर एक-दूसरे से द्विगुण प्रमाण में स्थित हैं। इस प्रकार ये सात द्वीप लवणादि (खारे पानी) सात समुद्रों से घिरे हुए हैं।

4. श्वेत द्वीप —

तत्र क्षीराब्धिमध्ये तु द्वात्रिंशल्लक्षयोजने।
श्वेतद्वीपो हरेर्लोको द्विशतायुतयोजनः।
शाकद्वीपं समारभ्य परितो वलयाकृतिः ॥

क्षीरसागर बत्तीस लाख योजन विस्तारवाला है। उसके बीच में श्वेत द्वीप नाम से भगवल्लोक हैं। यह शाक द्वीप से प्रारम्भ होकर वलयाकार में बीस लाख योजन में फैला हुआ है।

5. अनन्तासन —

परतोद्विगुणं तस्मात् घनोदकमिति स्मृतम्।
दध्याकारं जलं तत्तु नानाद्वीप समाकुलम् ॥
एषां मणिप्रकाशेन तमसो नास्ति सम्भवः।
तत्परो खर्परं यावत् अनन्तासनमुच्यते ॥

लक्षत्रयं योजनानां विस्तृतं वलयाकृतिः ।
श्रीभूदुर्गात्मका भागाः तत्रापि परतःस्थिताः ।।

एवं स्थानद्वयं विष्णोः भूमिष्ठमिव दृश्यते ।
अधस्तात् भूमिनाशोऽपि तदनश्यद्धि तिष्ठति ।।

भूदुर्गाभागयोस्तत्र भूमिनाशो प्रणश्यति ।
श्रीभागो नित्यएवास्ति मुक्तैरेव निषेवितः ।।

उसके आगे दो गुना परिमाण में घनोदक है। यहाँ का जल दही के आकारमें है। मणियों के प्रकाश से यहाँ कभी अन्धकार होता ही नहीं। उसके आगे खर्पर (कच्छपरूप सीमा तक) अनन्तासन है। यह तीन लाख योजन विस्तीर्ण वलयाकार है। इसमें श्रीभाग, भूभाग और दुर्गा भाग — ऐसे तीन भाग होते हैं। श्वेतद्वीप और अनन्तासन — ये दोनों विष्णु के स्थान हैं, जो पृथ्वी के ऊपर स्थित-से दीखते हैं। नीचे जो भूमि है, उसका नाश होने पर भी श्रीभाग कदापि क्षय नहीं होता। यदि भूमि के नाश होने से भूभाग और दुर्गाभाग नष्ट हो जाय, तो भी श्रीभाग शाश्वत रहता है। यह मुक्तजनों से सुसेवित है। पृथ्वीलोक से लेकर नीचे ब्रह्माण्ड पच्चीस करोड़ योजन दूरी पर कच्छप सीमा तक फैला हुआ है।

कोटियोजन गम्भीरं तत्रैव च घनोदकम् ।
घनोदकादधस्तात्तु भूतलं कोटियोजनम् ।।

कोटीकोटी ततोऽदधस्तात् ज्ञेयं पातालसप्तकम् ।
ततोऽप्यधस्तात् सप्तापि नरकाः रौरवादिकाः ।।

घनोदक की गहराई एक करोड़ योजन है। घनोदक के नीचे पृथ्वीतल है। यह एक करोड़ योजन की गहराई में है। इसके नीचे एक-एक हजार परिमाणवाले सात पाताललोक हैं। उसके बाद रौरवादि सात नरक हैं। 'भूलोकामूर्ध्नंतोमेरुः छत्राकारस्सुरालयः' भूलोक के उपरितल में जो मेरुपर्वत है, वह छत्राकार में देवताओं का निवास है।

6. वैकुण्ठ —

भुवर्लोकस्तु भूलोकादूर्ध्वतो लक्षयोजनः ।।
महेन्द्रनगरी तस्मात्पञ्चाशल्लक्षयोजना ।
तदध्यर्द्धो स्वर्गलोकः ततोध्यर्द्धाः परेस्मृताः ।।
महर्जनस्तपश्चेति सप्तलोकास्त दूर्ध्वतः ।
भूलोकात्तु तपो यावद्वैकुण्ठं सप्ततः परम् ।।
यावदण्डकटाहं तदूर्ध्वमूर्ध्वंव्यवस्थितम् ।
मध्यभागः श्रियस्तत्र स तु लोकः सनातनः ।।
मुक्ता एव रमन्तेऽत्र पुनरावृत्तिवर्जिताः ।
भूदुर्गा भागकौ तत्र दक्षिणोत्तरतः स्थितौ ।।
आराधितोऽस्तिर्यैर्विष्णुः नानापुण्योच्चयैर्नरैः ।।

(विष्णुरहस्य अ. 39)

भूलोक से ऊपर भुवर्लोक एक लाख योजन विस्तृत है। उसके बाद पचास लाख योजन परिमाण में देवेन्द्र नगर है। उससे अधाभाग अधिक है स्वर्गलोक। इस प्रकार ऊपर एक-के-बाद-एक — महर्लोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक आदि सात लोक हैं। इन सात लोकों के ऊपर वैकुण्ठ है। भूलोक से सत्यलोक तक जो विस्तार है वही इसका भी है। यह अण्डकड़ाह पर्यन्त व्याप्त है। यहाँ सनातन (नित्य) पुरुष निवास करते हैं, जिनका जन्म-मरणरूप संसार में आवागमन नहीं होता। भूभाग और दुर्गाभाग दक्षिणोत्तर में हैं। वहाँ श्रीविष्णु महान् पुण्यपुरुषों से अराधित हैं। 'अरण्याख्यौ सुधासिन्धू विष्णुलोकत्रयेपि हि' श्रीविष्णु के वैकुण्ठादि तीनों लोकों में 'अर' और 'ण्य' नाम के दो अमृत-समुद्र हैं।

वैजयन्ते समासीनमेकान्ते चतुराननम् ।
विष्णोर्विदुषस्तत्वं पर्यपृच्छत्सदाशिवः ।।

इस प्रमाण के अनुसार 'जयन्तं त्वन्तरिक्षगः' भगवान सदाशिव अन्तरिक्षलोक में स्थित ब्रह्मा से श्रीविष्णु के तत्वों को पूछते हैं। इससे ज्ञात होता है कि चतुर्मुख ब्रह्मा के भी जयन्तलोक, सत्यलोक और मेरु पर्वत — ये तीनं धाम हैं। उनमें से जो मेरु है, वह पंचायती अदालत है, जहाँ से ब्रह्मा जीवों को पृथ्वी पर जन्म लेने की आज्ञा देते हैं।

ततः पादाब्जसौन्दर्यरसं चामृतधिक्करम् ।
प्रीत्या पातुमहोरात्रं आस्वाद्य सुखभोगिनः ।। 9
तृष्णा शान्ताऽधुना नापि पादसौन्दर्यमीदृशम् ।

इस प्रकार अनेक रूप धारण कर ब्रह्माजी अमृत को भी तिरस्कृत करनेवाले आपके चरणकमलों के सौन्दर्यरूपी रस का परम प्रीति से सुखपूर्वक दिन-रात पान करने पर भी उनकी तृष्णा अब तक शांत नहीं हुई। उन्हें रसास्वाद की आकांक्षा अधिक होती गयी, तो आपके चरण सौन्दर्य-माधुर्य की क्या महत्ता है।

शय्यासनऽऽतपत्रादिरूपी त्वत्पादसेवकः ।। 10
शेषो बहुसहस्राक्षः सदाऽन्तस्थोऽप्यचिन्तयत् ।
अस्मात्स्वाम्यङ्घ्रिसौन्दर्यं विचित्रं सुमनोहरम् ।। 11
अदृष्टश्रुतपूर्वं च महागाढं विलक्षणम् ।
सुलक्षणं च सन्दृश्यं जगन्मोहनमोहकम् ।। 12

शय्या, आसन, छत्र, पादुका — इत्यादि अनेक रूपों में नित्य-निरन्तर आपके चरणों की सेवा करनेवाले शेषनाग अनेक सहस्र नेत्रों से आपके निकट रहते हुए भी मन में सोचने लगे — 'मेरे प्रभु श्रीनिवास के अत्यंत मनोहर और आश्चर्य-युक्त सौन्दर्य-माधुर्य को अब तक कहीं भी नहीं देखा। वह तो जगद्विलक्षण है, अति गम्भीर है, गोपनीय है, पूजनीय है तथा शास्त्रोक्त सर्व शुभलक्षण सम्पन्न है। अतएव परम श्रद्धा से देखने योग्य है। क्योंकि वह सौन्दर्य संसार को मोहित करनेवाले श्रीनिवास को भी मोहित करनेवाला है।

विशेषार्थ —

'पुंसां मोहनरूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम्' — अर्थात् श्रीराम और श्रीकृष्ण को जो भी देखते हैं, वे अवश्य मुग्ध एवं स्तब्ध हो जाते हैं। भगवान शिव एवं कामदेव ही इस जगत को मोहनेवाले हैं – ऐसी प्रतीति है। किन्तु वे भी राम और कृष्ण के सौन्दर्य-माधुर्य को देखकर आश्चर्य-चकित हो गये। ऐसी कथाएँ हैं।

बहूनि मम नेत्राणि समीपे सर्वदा हरेः ।
वासश्चेशप्रसादेन त्वेवं भाग्यमभून्मम ।। 13

हे स्वामी ! आपके अनुग्रह से सदा आपके समीप रहकर आपके पादपङ्कजों की अपार सौन्दर्यराशि को अनेक नेत्रों द्वारा दर्शन करना मेरा सौभाग्य है।

विशेषार्थ —

ई = लक्ष्मी को, शं = सुख और आनन्द जिसके द्वारा प्राप्त होते हैं, वे ईश हैं। अर्थात् लक्ष्मी जी के आनन्दप्रद हैं।

इति सम्भ्रमसंयुक्तः सर्वदाऽतिप्रियो हरेः ।
नेत्रैर्बहुसहस्रैश्च लक्ष्मीपतिपदाम्बुजे ।। 14

असमं चित्रसौन्दर्यं दृष्ट्वा दृष्ट्वा पुनः पुनः ।
महानन्दाम्बुधौ मग्न एवं मेने फणी तथा ।। 15

इस प्रकार सदा श्रीहरि के अत्यन्त प्रिय शेष ने अधिक प्रसन्नता से लक्ष्मीपति श्रीनिवास के चरणारविन्दों के अद्भुत सौन्दर्य को हजारों नेत्रों से बारम्बार देखकर परमानन्द सागर में डूबते हुए मन में इस तरह विचार किया।

वसाम्यहं सदैवात्र पादमूले च मत्पते ।
वैकुण्ठं वा न गच्छामि त्यक्त्वा विष्णुपदाम्बुजे ।। 16

मैं अपने प्रभु श्रीनिवास के चरण कमलों को छोड़कर वैकुण्ठ भी नहीं जाता, क्योंकि यहीं पर श्रीवेङ्कटेश के पादमूल में अर्थात् आसन रूप में, शयन रूप में, पादुका रूप में और पर्वताकार में श्रीपति का वासस्थान होकर रहूँगा ।

विशेषार्थ – 'अत्रपादमूले' यहाँ 'अः इतिब्रह्म' इस प्रकार श्रुति है । 'अकारो वासुदेवे' इस तरह कोश में है । 'अः – परब्रह्म है । 'त्रिपु रक्षणे' इस धातु के अनुसार त्र – सर्वरक्षक हैं । इस प्रकार अत्र – परब्रह्मस्वरूप सर्वरक्षक श्रीनिवास के पादमूल में – यह अर्थ है।

यस्त्वानन्दो भवेन्नित्यं पादसौन्दर्यदर्शनात् ।
वैकुण्ठ ईदृशानन्दः कैवल्येऽपि न विद्यते । 17

यहाँ अबाधगति से प्रभु के चरण सौन्दर्य के दर्शन से जो आनन्दानुभूति होती है, वह सुख वैकुण्ठ और कैवल्य में भी नहीं प्राप्त होता है ।

सम्बन्ध — अगर श्रीहरि के चरण को नहीं छोड़ते तो शेषनाग को पातालाधिपत्य कैसे सम्भव है ? इस शंका का उत्तर देते हैं ।

पातालमात्रं गन्तव्यं पादमूलं यतो हरेः ।
न स्थास्यामि क्षणमपि यत्सौन्दर्यामृतं विना ।। 18

मैं पाताल में भी स्वामी के चरणों में सदा लीन होकर रहूंगा । क्योंकि श्रीहरि के पद-तल में ही पाताल है । मैं वहाँ पर भी तो प्रभु के पाद-सौन्दर्यामृत का आस्वाद करता रहूंगा, मैं एक क्षण के लिये भी उनके चरणों से अलग होना नहीं चाहता । 'पातालमेस्य हि पादमूलम्' — ऐसा प्रमाण भी है ।

इति निश्चित्य नागेन्द्रः पादसौन्दर्यमोहितः ।
यत्र यत्रेन्दिरेशस्य पादमूलं प्रवर्तते ।। 19
तत्र तत्र सदा पादसौन्दर्यामृतपय्यभूत् ।

इस तरह निश्चय करके चरण सौन्दर्य से मोहित नागोंके अधिपति शेषनाग जहाँ-जहाँ पर रमानाथ का चरण प्रवृत्त होता है वहाँ-वहाँ पर जाकर सदा चरणकमल की सुन्दरतारूपी अमृत के सेवन करनेवाले हुए ।

सम्बन्ध — भगवान शिव जी की भी श्रीहरि के चरण सौन्दर्य के प्रति जो भावना है, उसका उल्लेख करते हैं।

यथाचिन्तयदेवं हि शङ्करो लोकशङ्करः ।। 20

श्री श्रीनिवास के परम मङ्गल स्वरूप चरण सौन्दर्य के बारे में जगत के कल्याण करनेवाले परमशिव ने अपने मन में इस प्रकार विचार किया ।

विशेषार्थ —

यद्द्वारि मत्तमातङ्गाः वायुवेगास्तुरङ्गमाः ।
पूर्णेन्दुवदनाः नार्यः शिवपूजाविधेः फलम् ।।

इत्यादि शास्त्र प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि शिव की पूजा से इष्ट-सिद्धि होती है । शिव भी श्री विष्णु के गुण-माहात्म्य का वर्णन भक्तिपूर्वक करते हैं। इससे भगवान विष्णु की श्रेष्ठता ज्ञात होती है।

शेषस्य किमहो भाग्यं शेषागेशप्रसादजम् ।
बहुनेत्राणि त्वत्पादसौन्दर्यामृतसेवनम् ।। 21

शेषाचलाधीश्वर श्रीनिवास का अनुग्रह प्राप्तकर उनके पास रहकर अनन्त नेत्रों द्वारा देवाधिदेव के चरण सौन्दर्य का अमृतपान करनेवाले शेषदेव के कैसे महान् भाग्य है ?

एतद्द्वयं दुर्लभं मे त्रिनेत्रत्वादहो बत ।
भाविजन्मनि शेषत्वप्राप्त्यर्थं वा महत्तपः ।। 22
करोमीत्यतिवैराग्यात् शम्भुः कैलासगोऽभवत् ।

'अहो ! मेरे तो तीन नेत्र हैं, तथापि मैं श्रीवेङ्कटेश्वर से बहुत दूर रहता हूं। परन्तु शेषनाग के तो अनन्त नेत्र हैं, तथा स्वामी के समीप रहते हैं। — ये दोनों भाग्य अन्य किसी केलिये दुर्लभ है । अतएव मैं जन्मान्तर में तो श्रेष्ठ शेषपद की प्राप्ति के लिये कठोर तपस्या करूँगा ।' – ऐसा विचार करके शिवजी परम वैराग्य लेकर कैलास चले गये ।

सम्बन्ध — चरण सौन्दर्य के प्रति देवराज इन्द्र की भावना —

श्रीवेङ्कटेशेन्दिरेश जिष्णुस्तव मुखाम्बुजात् । 23
जातस्सहस्रनयनोऽप्येवं तव पदाम्बुजे ।
अदृश्याश्चर्यसौन्दर्यं सम्पश्यन्नप्यहर्निशम् ।। 24
इत्यचिन्तयदत्यन्तं पादसौन्दर्यमोहितः ।
अमृतस्य पुरा पाने मे नाभूदीदृशं सुखम् ।। 25

हे वेङ्कटाधीश ! हे लक्ष्मीवल्लभ श्रीनिवास ! सर्वव्याप्त आपके मुखकमल से उत्पन्न देवराज इन्द्र अपने हजारों नेत्रों से अत्यन्त आश्चर्यमय आपके चरण कमल के सौन्दर्य को निरन्तर निरखते हुए मोहित हो सोचने लगे कि इतना अपूर्व आनन्द तो मुझे अमृत-पान करते समय भी कभी नहीं मिला ।

विशेषार्थं —

'जिष्णुर्लेखर्षभः' कोश के इस कथन के अनुसार इन्द्र सर्वत्र जयशील हैं, अतः वे 'जिष्णु' कहलाते हैं। अर्थात् अपने रूप, बल और ऐश्वर्य से सब को जीतनेवाले हैं। वेदमन्त्र में इन्द्र की उत्पत्ति भगवन्मुख कही गयी – 'मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च'।

सौन्दर्यमतिसामीप्यदोषात् सम्यङ् न दृश्यते ।
इतोऽप्यतिशयानन्दः किञ्चिद्व्यवहिते भवेत् ।। 26

अत्यन्त निकट रहने के कारण प्रभु के चरण सौन्दर्य अच्छी तरह नहीं दिखलाई पड़ता है। इससे भी अधिक आनन्द कुछ दूर होने से होगा। (जैसे भौहें अति समीप होने के कारण आँखों से दिखाई नहीं देती।

अतः स्वर्गस्थोऽनिमिषस्तावन्नेत्रैरहर्निशम् ।
वीक्ष्ये यावदलम्बुद्धिः ततो मत्स्थानमाव्रजे ।। 27

इस विचार से इन्द्र स्वर्गलोक में रहकर ही निर्निमेष हजारों नयनों से रात-दिन प्रभु श्री वेङ्कटेश्वर के चरण सौन्दर्य को आदरभाव से देखते हुए कहते हैं — 'तब तक दर्शन करूँगा जब तक तृप्ति नहीं होगी, तत्पश्चात् अपने निवास स्थान को चला जाऊँगा।'

विशेषार्थ — 'अनिमिषा वै देवाः' इस श्रुति से जान पड़ता है कि देवताओं की पलक कभी नहीं गिरती।

इति स्वर्गगतस्यापि यावन्नेत्रैः श्रियःपते ।
त्वत्तेजःपुञ्जपादाब्ज सौन्दर्यामृतपायिनः ।। 28
तृष्णा शान्ताऽधुना नापि तस्मात्स्वर्गे स्थिरा स्थितिः ।

हे लक्ष्मीकान्त श्रीवेङ्कटेश ! स्वर्गलोक में आकर इन्द्र अपनी सब आँखों से नित्य तेजोमय आपके चरण सौन्दर्यामृत का आस्वादन करने पर भी उनकी अभिलाषा अभी भी पूरी नहीं हुई और वे वहीं ठहर गये। इसलिए स्वर्ग ही उनका स्थायी निवास बन गया।

श्रीश ते पादसौन्दर्यं लेखानां महतामपि ।। 29
यद्येवं दुर्लभमभूत् इतरेषां तु का कथा ।

हे लक्ष्मीनाथ ! आपके चरण सौन्दर्य की शोभा का वर्णन करना इन्द्रादि उत्तम देवताओं के लिए ही इतना दुर्लभ है तो हम-जैसे साधारण जन की क्या बात ?

विशेषार्थ —

1. श्रियः शं यस्मात् श्रीशः = लक्ष्मी को सुख देनेवाले हैं। तथा श्रियः ईशः = लक्ष्मी के पति।

2. 'आदितेया दिविषदो लेखा अदितिनन्दनाः' इस प्रकार कोश में है। लेखा = देवगण।

सम्बन्ध — अब चरण-रेखाओं के माहात्म्य का वर्णन करते हैं।

विष्णो ते पादरेखाणां माहात्म्यं लोकपावनम् ।। 30
विज्ञापनं करिष्यामि ह्यपराधं क्षमस्व मे ।

हे विष्णु ! आप की चरण-रेखाओं की जो महिमा है, वह समस्त लोकों को पवित्र करनेवाली है। मैं उसीका थोड़ा-बहुत वर्णन करता हूं। यदि इसमें मेरा कोई अपराध हो तो प्रभो ! क्षमा करें।

विशेषार्थ —

1. 'विष्लृ व्याप्तौ' इस धातु से विष्णु शब्द निष्पन्न होता है। सब में व्याप्त होने के कारण 'विष्णु' कहे जाते हैं।

2. 'विश प्रवेशने' इस धातु के अनुसार सर्व व्यापक हैं। अर्थात् वामन रूप में अवामन होकर त्रिविक्रम रूप धारणकर तीन पग से तीनों लोकों को नापने के लिये जगन्मय विशालरूप दर्शानेवाले हैं।

सम्बन्ध — भगवान श्रीनिवास के श्रीचरणों में चक्र-रेखा है। श्रवण-मनन-ध्यान क्रम से करनेवालों को जो शास्त्रजन्य फल-सिद्धि मिलती है, उसका वर्णन करते हैं।

पादमाहात्म्यश्रोतॄणां भक्तानां भक्तवत्सल ॥ 31
महाऽज्ञानतमो भित्वा कृत्वा ज्ञानप्रकाशनम् ।
त्वन्मार्गदर्शनार्थाय चक्ररेखां पदेऽधरः ॥ 32

हे भक्तवत्सल श्रीनिवास! अपने चरण-माहात्म्य का श्रवण करनेवाले भक्तों के अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करके ज्ञान के प्रकाश को फैलाकर आपको प्राप्त करने का वैकुण्ठादि मार्ग दिखलाने अथवा ब्रह्मज्ञान प्रदान करने के लिये आप अपने चरणों में चक्र-रेखा धारण किये हुए हैं।

विशेषार्थ —

1. भक्तं अन्नं येषामस्तीति भक्तवन्तः ।
भक्तवतः सलतीति भक्तवत्सलः ॥

यज्ञ करनेवलों पर अनुग्रह करने के लिये उनके सन्निकट पहुँचने के कारण भक्तवत्सल कहलाते हैं। अर्थात् भक्तों के प्रति विशेष प्रीति रखनेवाले हैं।

2. भक्ता एव वत्साः तान् लानि = भक्तों को पुत्र के समान स्वीकार कर उनके भरण-पोषण करनेवाले हैं।

3. सुदर्शनमहाज्वाल कोटिसूर्यसमप्रभ ।
अज्ञानान्धस्य मे नित्यं विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय ।
यह स्मृति वाक्य इसका ज्वलंत प्रमाण है।

सम्बन्ध — भगवान के चरणों में शङ्ख-रेखा है, जिसके मनन करने से महाज्ञानी होते हैं। इसका माहात्म्य बताते हैं।

पादमाहात्म्यमन्तॄणां साङ्गवेदचतुष्टयम् ।
इतिहासपुराणानि मन्त्रोपनिषदात्मकाः ।। 33
सर्वविद्या ददामीति दररेखां पदेऽधरः ।

'अपने चरण-माहात्म्य का मनन (सदा स्मरण) करनेवालों को षडङ्ग (शिक्षा-व्याकरण-छन्द-निरुक्त-कल्प-ज्यौतिष) सहित चार वेदों, महाभारत आदि इतिहासों, अठारह पुराणों, उपनिषदात्मक महावाक्यों तथा समस्त विद्याओं का ज्ञान अनुग्रह करता हूँ।' — इसे सूचित करने के लिये आप अपने चरण में शङ्ख-रेखा धारण किये हुए हैं।

विशेषार्थ —

1. 'शिक्षा कल्पो निरुक्तं च छन्दो व्याकरणं तथा जौतिषम्' — इति षडङ्गानि ।
2. आयुर्वेदं धनुर्वेदं गान्धर्वंचार्थशास्त्रकम् ।।
   चतुर्णामुपवेदांश्च । — ये चार उपवेद हैं ।
3. प्रसंगानुसार पहले वर्णित ब्राह्मादि अठारह पुराण हैं।
4. ब्राह्मण एवं उपनिषद — ये मन्त्रभेद हैं ।
   'वेद शिरोऽखिला' इस प्रकार स्मृति है ।
5. भागवत चतुर्थ स्कंद के अनुसार अबोध बालक ध्रुव के मन में जब श्रीहरि को देखते ही कीर्तन करने की उत्कट इच्छा हुई, तब भगवान ने उसके कपोलों पर शङ्ख से स्पर्श किया, तो तत्काल ध्रुव महाज्ञानी होकर भगवान की स्तुति करने लगे। शङ्ख स्तोत्रेच्छा तथा दानशीलता के लिये प्रसिद्ध है ।
6. सत्यायुषि शरीरस्य नानारोग निवृत्तये ।
   आयुर्वेदं वितेने सः ह्यग्निवेश्यादिभिर्भुवि ।।
   नानाशस्त्रैः युद्धैसिद्ध्ये धनुर्वेदमवातनोत् ।
   राज्ञां च धनिकानां च मनोरञ्जनसिद्धये ।।

गान्धर्वं व्यतनोद्यत्र गीतं वाद्यं च नर्तनम् ।
पाकक्रिया गजाश्वादि नानाकर्म प्रसिद्धये ।।
लोकानां व्यवहाराय नानाशिल्प प्रसिद्धये ।
राजनीत्यै दण्डनीत्यै अर्थशास्त्रमिहातनोत् ।।

विष्णुरहस्य अ. 35, श्लो. 38–41

सम्बन्ध — भगवान के चरण में जो गदा-रेखा है, उसका ध्यान करने से सभी प्रकार के अनिष्ट दूर होते हैं।

पादमाहात्म्यध्यातॄणां उपद्रवकरान् खलान् ।। 34
दैत्यरक्षःपिशाचादीन् कूष्माण्डब्रह्मराक्षसान् ।
सञ्चूर्णयामीति हरे गदारेखां पदेऽधरः ।। 35

भक्तों के सर्वारिष्ट निवारण-हेतु हे श्रीहरि! आप 'अपने चरण माहात्म्य का ध्यान करनेवालों के लिये उपद्रव करनेवाले दुष्टों, दैत्यों, राक्षसों, पिशाचों, कूष्माण्डों, ब्रह्म राक्षसों इत्यादिकों का चकनाचूर कर दूंगा' – इस विचार से अपने चरण में गदा-रेखा धारण किये हुए हैं।

विशेषार्थ —

1. गदेऽशनि स्पर्शन विस्फुलिङ्गे
   निष्पिण्ढि निष्पिण्ढ्यजितप्रियासि ।
   कूष्माण्ड-वैनायक-यक्ष-रक्षो
   भूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन् ।।

   भागवत स्कंद 6, अ. 8, श्लो. 24

2. 'हरतीति हरिः' पापों को हरनेवाले हैं तथा दुष्ट दैत्यादिकों का संहार करनेवाले हैं।

3. पिशाच भूत कूष्माण्डाः प्रेतश्चाण्डालजातयः ।
   घण्टाकर्णः पिशाचोशो भूतेशो भैरवः स्मृतः ।।

कूष्माण्डेशो भृङ्गिरुक्मि प्रेताधीशः तथोल्मुकः ।
ब्रह्मराक्षसवेताळाः नानाजात्याः प्रकीर्तिताः ।।
कन्यादाः शोणिताऽऽहाराः यातुधानाः तथाऽपरे ।
मातरः पूतनाद्याश्च शाकिन्यो डाकिनीगणाः ।।
मलरक्तसुरापाश्च नानाजात्याः प्रकीर्तिताः ।

विष्णु रहस्य अ. 35, श्लो. 19, 22, 27, 28

सम्बन्ध — भगवान के श्रीचरण में जो पद्म-रेखा है, वह प्रवचन-फल प्रदान करनेवाली है । उसका वर्णन करते हैं ।

पादमाहात्म्यवक्तॄणां उत्तमे मन्दिरे सदा ।
पद्मया भार्यया साकं पद्मजेन सुतेन च ।। 36
कुटुम्बी पद्मनाभोऽहं वसामीत्येव सूचयन् ।
पद्मरेखां पादपद्मे पद्मेश त्वं धरन्नसि ।। 37

हे लक्ष्मीनाथ ! पद्मनाभ ! आप अपनी प्रिया लक्ष्मी और अपने पुत्र पद्मगर्भ (ब्रह्मा) के साथ अर्थात् अपने कुटुम्ब सहित 'जो मेरे चरण-माहात्म्य का गुणानुवाद करते हैं, उनके उत्तम मन्दिर में मैं निवास करूँगा' – यह संकेत करने के लिए अपने चरण-कमल में पद्म-रेखा धारण किये हुए हैं ।

विशेषार्थ —

1. 'पद्मं नाभौ यस्य' पद्मनाभः = जिनकी नाभि में पद्म अर्थात् कमल है, ऐसे वे श्रीनिवास श्रीमन्नारयण हैं ।
2. पदयोर्मा यस्य पद्मः = जिनके चरण में लक्ष्मी हैं, वे ।
   न विद्यते अभा यस्य नाभः = जिनको अन्धकार नहीं है, वे ।
   पद्मश्चासौ नाभश्च, पद्मनाभः ।
3. पद्मं नयतीति पद्मनः=कमल को विकसित करनेवाले सूर्य हैं' पद्मनस्य आभेव आभा यस्य सः=सूर्य केसमान कान्तिवाले हैं।

4. पद्मं नाभौ यस्य = जिनकी नाभि में चतुर्मुख ब्रह्मा का आसनभूत कमल है।
5. पदं मन्यत इति पद्मना: भक्ता: = भगवद्-भक्त वे हैं, जो भगवत्स्वरूप को समझते हैं। तान् प्रति आभाति = उनको अपने स्वरूप का दर्शन देनेवाले हैं।
6. 'लक्ष्मी: पद्मालया पद्मा' कोश के अनुसार पद्मा=लक्ष्मी हैं।

सम्बन्ध — पद्म-रेखा का वर्णन और एक प्रकार से करते हैं।

विरजा मानससरो धनुष्कोटी महाघहृत् ।
गङ्गादिसर्वतीर्थानि त्वत्पादाब्जे वसन्ति हि ।। 38

विरजा, मानससरोवर, धनुष्कोटि, गङ्गा इत्यादि प्रसिद्ध तीर्थ जोकि बड़े-से-बड़े पाप को नष्ट करने में अत्यंत समर्थ हैं, वे सब आपके चरण-कमल में निवास करते हैं।

सहस्रपत्रपूर्वाणि जायन्ते तेषु नित्यशः ।
इति सूचयितुं पादे पद्मरेखां धरन्नसि ।। 39

उन तीर्थों में सहस्रदल कमल, कुमुद इत्यादि पुष्प उत्पन्न होते हैं। इसे सूचित करने के लिये आप अपने चरण में पद्म-रेखा धारण करते हैं।

सम्बन्ध – कमल में लक्ष्मी जी निवास करती हैं। इस कारण देवशर्मा लक्ष्मी से प्रेरित होकर कमल की महिमा बताते हैं,

पद्मा हृत्पद्मसंस्थाऽपि पादपद्मस्य मूलगा ।
पश्यन्ती नेत्रपद्माभ्यां त्वत्सौन्दर्यमलौकिकम् ।। 40
ध्यायन्ती च स्वहृत्पद्मे त्वन्माहात्म्यं श्रुतीरितम् ।
भजन्ती करपद्माभ्यां स्वाङ्केऽर्चनकरी सदा ।। 41
इति सूचयितुं पादे पद्मरेखां धरन्नसि ।

हे स्वामी! आपकी वक्षोविलासिनी, पद्मरूपा, पद्मनमांकिता लक्ष्मी आपके चरण-कमलों के पास रहकर आपके विश्वविलक्षण चरण-सौन्दर्य को अपने नेत्र-कमलों से नित्य-निरन्तर देखती रहती हैं। श्रुत्यादि से प्रतिपादित आपके चरण-माहात्म्य का वे अपने हृदय कमल में सदैव ध्यान करती हैं तथा अपनी गोद में आपके चरणों को रखकर अपने करकमलों से सेवा करती हैं। ऐसा सूचित करने के लिए ही आप अपने चरण में पद्म-रेखा धारण करते हैं।

सम्बन्ध — भगवान के चरण में वज्र-रेखा है। उसके माहात्म्य का वर्णन करते हैं।

पादपङ्कजमाहात्म्यं लिखित्वैव स्वहस्ततः ॥ 42
दातॄणां वैष्णवाग्र्येभ्यो महाऽघौघाद्रिभेदनम् ।
करोमीति ज्ञापनाय वज्ररेखां पदेऽधरः ॥ 43

'चरण कमलों के माहात्म्य को जो अपने हाथ से लिखकर उस पुस्तक को विष्णु के सर्वोत्तम ज्ञानिवरेण्य भक्तों को दान करेगा उसके महापाप पर्वत-समूह का नाश करूँगा'—इसे ज्ञात कराने के लिये आप अपने चरण में वज्र-रेखा धारण किये हुए हैं।

विशेषार्थं —

ब्रह्महत्यादि महापातक साधारण का नहीं, वह पर्वत के समान है। देवराज इन्द्र ने अपने वज्रायुध से अनेक पर्वतों के पंखों को विच्छेद किया। अतः महापातकरूप पर्वतों का विच्छेदन वज्र के सिवाय अन्य किसी साधन से नहीं हो सकता है। चाहे अनेक पर्वतों के सदृश ब्रह्म-हत्यादि महापाप किया हुआ व्यक्ति भी क्यों न हो, वह भगवान के चरण-माहात्म्य सम्बन्धी पुस्तकें लिखकर अपने हाथों से दान देता तो वह सभी महापापों से मुक्त हो जाता है। वज्र महापाप का नाशक है।

सम्बन्ध — भगवान के श्रीचरण में जो अंकुश-रेखा है, वह अर्चना की फल-सिद्धि देनेवाली है।

माहात्म्यमर्चकानां तु गजान् कामादिसंज्ञितान्।
अदम्यान् दमयामीति ह्यङ्कुशाख्यां पदेऽधरः॥ 44

'चरणों की सेवा करनेवाले भक्तों के लिये काम-क्रोधादि शत्रुरूपी दुर्दम मतवाले हाथियों का दमन करूँगा'– इस प्रतिज्ञा से ही आप अपने चरण में अंकुश-रेखा धारण किये हुए हैं।

विशेषार्थ —

अंकुश में मदोन्मत्त हाथी को काबू में रखने की शक्ति है। भगवान के चरण में जो अंकुश-रेखा, है वह भक्तों के काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्यादि विकारों का दमन करके दोष रहित एवं भगवन्मय जीवन में संलग्न करा देती है।

सम्बन्ध – भगवान के चरण की ध्वज-रेखा के माहात्म्य को जो आदरपूर्वक सुनता है उसकी फल-सिद्धि बताते हैं।

श्रुत्वाऽऽदरेण सन्तुष्टान् भक्तान् ध्वजवदुच्छ्रितान्।
करोमीति ज्ञापनाय ध्वजरेखां पदेऽधरः॥ 45

'चरण-माहात्म्य को जो भक्त श्रद्धापूर्वक सुनकर सदा प्रसन्नचित्त रहता है, उसके जीवन को ध्वज की तरह उँचा अर्थात् संपन्न एवं समृद्धकर दूँगा' – इसे प्रकट करने के लिए आप अपने चरण में ध्वज-रेखा धारण किये हुए हैं।

विशेषार्थ —

ध्वज विजय सूचक है। भगवान के चरण-माहात्म्य का श्रवण करनेवाले भक्तों को परम सिद्धिरूप विजय प्राप्त होती है। अर्थात् वे जीवन में अपने जाति–गोत्र–वित्त–पुत्र–मित्र–कलत्रादिकों में अधिक समुन्नति प्राप्तकर भगवत्कृपा के पात्र होते हैं।

सम्बन्ध — भगवान श्रीनिवास के चरण-माहात्म्य का वर्णन अनन्त वेद भी नहीं कर सकते हैं, तो साधारण मानव क्या कर सकता है ? अतः देवशर्मा यथासाध्य वर्णन करके उपसंहार कर लेते हैं।

अबग्नीरनभोऽहङ्कृन्महत्तत्त्वगुणत्रयैः ।
क्रमाद्दशगुणैरण्डमावृतं परमाद्भुतम् ।। 46
यन्नखाग्राद् विनिर्भिन्नं त्वत्पादं कोऽनुवर्णयेत् ।

गोलाकाररूप में स्थित इस ब्रह्माण्ड के बाहरी भाग में जल–अग्नि–वायु–आकाश–अहंकारतत्त्व–महतत्त्व आदि आवरण तथा सत्त्वादि तीनों गुणों के आवरण — इस प्रकार कुल नौ आवरण होते हैं। वे आवरण एक-से-एक अपने क्रम में दस गुना अधिक विस्तारवाले हैं। हे श्रीहरि ! इतना महान् अद्भुत और विपुल ब्रह्माण्ड कटाह केवल आपके चरण अंगूठे के नखाग्र के स्पर्श से टूट गया, तो आपके चरण-माहात्म्य का वर्णन भला कौन कर सकता है ?

विशेषार्थ —

1. भूमण्डल का परिमाण पचास करोड़ योजन है। भूमण्डल से दस गुना परिमाण का जलावरण है। उससे दस गुना तेजस(अग्नि) तत्त्व फैला हुआ है। उससे दस गुना अधिक अकाश आवरण है। उससे दस गुना परिमाण का महतत्त्व है। उससे दस गुना अधिक सत्त्व है। सत्त्व से दस गुना रजोगुण तथा उससे दस गुना परिमाण में तमोगुण है। इस क्रम से एक-से-बढ़कर-एक दस-दस गुना अधिक विस्तारवाला है यह ब्रह्माण्ड। श्री मद्भागवत आदि में इसका विशद विवरण मिलता है।

2. पूर्वंखर्परतः प्रत्यक् खर्परान्तं तथोत्तरात् ।
खर्पराद्दक्षिणान्तं च मण्डलाकारतः स्थितम् ।।
घनोदकं स्यात् विस्तारवत् समुद्रैव संश्रुतम् ।
तदन्तर्मण्डलाकारं तमश्च समुदीरितम् ।

द्विस्तावत् पृथिवीत्युक्तं पृथुत्वात् श्रुतिमस्तके ।।
तदन्तर्मण्डलाकारं भूश्चैवं समुदीरिता ।
पृथिवी समुद्रपर्यन्तेत्युक्ता या विप्रमण्डले ।
मध्ये सौवर्णगिरिणा मेरुणा सप्तभिः क्रमात् ।।
द्वीपैः समुद्रैश्चयुता मण्डलाकारतः स्थितैः ।
पञ्चशत्कोटि विस्तीर्णं मिलित्त्वैतत् त्रयं किल ।।

(ये श्रीमद्वादिराजतीर्थ विरचित 'भूगोलवर्णन' ग्रंथ से उधृत हैं)

सम्बन्ध — पद्मावती और वेङ्कटेश्वर की लीलाओं के महिमा-गान के लिये उपोद्वात कहते हैं। 'चिन्तां प्रकृत सिद्ध्यर्थां उपोद्घातं विदुर्बुधाः' — प्रकृत अर्थ-सिद्धि के लिये उपयुक्त विचार उपोद्वात् कहा जाता है।

शेषो महत्तपस्तप्त्वा त्वामाराध्य जगत्पतिम् ।। 47
त्वत्प्रसादान्महाभाग्यं यद्यप्याप सुदुर्लभम् ।
शय्याऽऽसनं पादुके च ह्यातपत्रमभूत्तव ।। 48

आप संसार के स्वामी की घोर तपस्या एवं आराधना के फलस्वरूप आपके अनुग्रह प्राप्त शेषनाग को शय्या, आसन, पादुका और छत्र के रूप में अब आपकी निरन्तर सेवा करने का सौभाग्य मिला है, वह तो गरुड, रुद्र, इन्द्र आदि देवताओं के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है।

तत्सुखं तु रमा दृष्ट्वा मेने शेषैकभाजनम् ।
अहमेवानुभोक्ष्यामि मत्पतेरङ्गसङ्गजं सुखम् ।। 49

भगवत्सेवा के द्वारा शेषनाग परम सुख अनुभव करने के एकमात्र अधिकारी बने हैं। इसे देख लक्ष्मी जी मन-ही-मन विचारने लगी कि अब मैं ही (केवल) अपने स्वामी के अंग के संग से उत्पन्न सुख को भोगूंगी।'

आतपत्रेण यत्प्राप्यं पादुकाभ्यां च यत्सुखम् ।
सर्वं भाग्यं ममैवस्यादिति वक्षःस्थिताऽपि सा ।। 50

छत्र और पादुका से जो सुख प्राप्त हुआ है, वह सब मेरा ही होना चाहिए। ऐसा विचार कर लक्ष्मी ने हे श्रीहरि! आपके वक्ष:स्थल में स्थान ग्रहण किया।

वैकुण्ठादिषु लोकेषु चतुर्दशसु वै तथा ।
ब्रह्माण्डान्तर्बहिश्चापि सर्वहृत्कमलेष्वपि ।। 51

लक्ष्मी जी ने यह भी सोचा कि 'मैं वैकुण्ठ आदि तीनों लोकों में, भूलोक आदि चौदहों भुवनों में, ब्रह्माण्ड के भीतर-बाहर तथा सब के हृदय-कमल में भगवान के साथ रहूंगी।'

विशेषार्थ —

भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक — ये सात लोक ऊपर के हैं।

अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, महातल और पाताल — ये सात नीचे के लोक हैं। कुल चौदह लोक हैं।

संस्थितो भगवान् यत्र बसेऽहं तत्र तत्र हि ।
क्रीडावनमभून्मन्दवायुगन्धादिरञ्जितम् ।। 52

'भगवान जहाँ-कहाँ भी रहते हैं, उन सभी स्थलों और वस्तुओं में मैं रहूँगी' — ऐसा समझकर लक्ष्मी जी परिमल भरित मन्द वायु से पूर्ण सुगन्ध किसलय, कस्तूरी, कर्पूर आदि वस्तुओं के व्याज से नन्दन वन आदि क्रीड़ावन के रूप में परिणत हो गईं।

सम्बन्ध — क्रीड़ावन क्या है। उसका वर्णन करते हैं।

मल्लिकाकेतकीजातीचम्पकाकुसुमान्वितम् ।
खर्जूरपनसद्राक्षाकदलीनारिकेलकैः ।। 53

बदरीमातुलङ्गैश्च कपित्थैश्चूतदाडिमैः ।
जम्बूजम्बीरक्रमुकप्रमुखैः फलदायकैः ।। 54

पारिजातैः कल्पवृक्षैरत्यन्तफलदायकैः ।
श्रीचन्दनेक्षुमन्दारैः सङ्कुलं मधुकादिभिः ।। 55

मल्लिका, केतकी, जाती, चम्पा इत्यादि सुविकसित फूलों से युक्त; खजूर, पनस (कटहल), अंगूर, केला, नारियल, बेर, मातुलुङ्ग, कैथा, आम, अनार, जामुन, नींबू, क्रमुक (सुफारी) इत्यादि मधुर फल-वृक्षों से पूर्ण; सदा फूल और फल से भरित पारिजात और कल्पवृक्ष तथा श्रीचन्दन, इक्षु (ईख), मन्दार, मधूक (महुआ) इत्यादि वृक्षों की वाटिका से घिरा हुआ सुन्दर क्रीड़ावन का रूप लक्ष्मी जी ने धारण किया।

विशेषार्थ —

ऋतु-सम्भूत भाँति-भाँति के फूल और फलों से लदे हुए मंजुल निकुंज-लताओं एवं वृक्षों से पूर्ण वह क्रीड़ावन पूरे साल शोभायमान है।

तस्मिन् सरः स्वच्छनीरं स्वर्णसोपानमण्डितम् ।
नवरत्नाभकमलैः सुवर्णाभकुशेशयैः ।। 56

पीतवर्णैरुत्पलैश्च रक्तनीलोत्पलाञ्चितम् ।
मीनकच्छपहंसाढ्यं मत्तषट्पदनादितम् ।। 57

उस क्रीड़ावन में सुवर्ण के बने सुन्दर सोपान और घाट से युक्त निर्मल जलाशय का रूप लक्ष्मी ने धारण किया।

उस सरोवर में नवरत्नों के प्रकाशवाले सहस्रदल-कमलों के रूप में; स्वर्ण की कांति से झिलमिलानेवाले कुश-काश के रूप में, कई पीले-नीले-लाल रंगों के कमलों के रूप में; मत्स्य–मगर–मच्छ-हंसों के रूप में तथा मधुपान-मत्त भ्रमरों के गुंजार के रूप में लक्ष्मी जी विद्यमान रहती हैं।

विशेषार्थं —

'तस्मिन्' से प्रारम्भ कर कहे जानेवाले सब जत्येकवचन समझना चाहिए, अर्थात् ये सब क्रीडावन के अंग हैं।

तत्र रत्नमयं क्रीडामण्डपं चाभवद्रमा ।
दिव्य रत्नमयं तेजःपुञ्जपीठमभून्मुदा ॥ 58

उस शुभद सरोवर के मध्य लक्ष्मी जी अत्यंत आनन्द से क्रीड़ा-विनोद के लिए रत्न से निर्मित एक भव्य मंडप बन गईं और मंडप में तेजःपुञ्ज से युक्त दिव्य रत्नमय पीठ (आसन) भी हो गईं।

तत्र त्वामर्चयन्त्यम्बा षोडशैरुपचारकैः ।
पायसान्नं व्यञ्जनादि पञ्चभक्ष्यामृतानि च ॥ 59
नूतनानि पवित्राणि नानारुचिकराणि च ।
आर्द्रकादीनि मूलानि स्वादूदं स्वर्णपात्रके ॥ 60

जगन्माता लक्ष्मी जी उस पीठ पर आप श्रीनिवास की षोडशी-पूजा करती हुई और पायस, अन्न इत्यादि व्यंजनों (पंचभक्ष्य, पंचामृत, पंचशाक) से; अत्यंत पवित्र स्वादिष्ट ताजे अंगूर–खजूर–केला–नारियल इत्यादि मधुर फलों से; अदरक–कन्द आदि मूलों से तथा स्वर्ण-पात्र में भरे स्वादु जल से आप नित्यतृप्त को सदा नैवेद्य करती हैं।

विशेषार्थ —

1. तत्राऽवाह्यं हरिं चार्घ्यं पाद्यं आचमनीयकम् ।
मधुपर्कं पुनश्चाचां स्नानं वासोविभूषणें ।
उपवीतासने दत्वा गन्धपुष्पे तथैव च ।।

— अर्घ्यं-पाद्य-आचमन-मधुपर्क-पुनराचमन-अभिषेक (स्नान के जल)-वस्त्र-भूषण-उपवीत-आसन-गन्ध-पुष्प-धूप-दीप–नैवेद्य–नीराजन — इन सोलह को तन्त्रशास्त्र में 'षोडशोपचार' कहा गया है ।

2. आपूप (मालपुआ)–मोदक (लड्डू)–बटक(वाटी)–होळिका–शष्कुलि — ये पंचभक्ष्य हैं ।

3. तिलैलानारिकेलाज्य गुडगुम्फ समन्वितः ।
पञ्चभक्ष्यसमः प्रोक्तः पञ्चसूर्तेर्हरेः प्रियः ।।

— तिल, इलाची, नारियल, घी और गुड – ये या इन द्रव्यों से छौंक-बधारकर बनाये हुए व्यंजन पंचभक्ष्य के समान है ।

4. नाहं कर्ता हरिः कर्ता तत्पूजा कर्म चाखिलम् ।
तथापि मत्कृता पूजा तत्प्रसादेन नान्यथा ।।
तद्भक्तिस्तत्फलं मह्यं तत्प्रसादः पुनः पुनः ।
कर्मन्यासो हरावेनं विष्णोस्तुष्टिकरस्सदा ।।
...... स्वातन्त्र्यं मम न क्वचित् ।
इति मत्वा न शक्तः स्यात् प्रीतोऽस्यभवति प्रभुः ।।

— भगवान को सब कुछ अर्पित कर देने का अर्थ यह है कि 'मैं किसीका कर्ता नहीं हो सकता। भगवान श्रीहरि ही सब के कर्ता और धर्ता हैं। उनका पूजन और समस्त कर्म उन्हीं की कृपा से मैं कर रहा हूँ, उनके प्रति भक्ति होना और फलतः उनका अनुग्रह मुझ पर होना — ये सब भगवान के सङ्कल्प-बल से प्राप्त होते हैं । इसमें मेरी कोई स्वतन्त्रता नहीं है।' – इस प्रकार कर्म-फल में आसक्ति नहीं होनी चाहिए । भक्त के इस तरह के कर्म-संन्यास से श्रीहरि प्रसन्न होते हैं। यह बात गीता तात्पर्य में बतायी गयी है । (अ. 3, श्लो 35)

नित्यतृप्तायार्पयन्ती पूर्णकामाय चादरात् ।
ईराङ्कसर्वसाराय सर्वसारात्मिका स्वयम् ।। 61

पुत्र वायुदेव को अपनी गोद में रखनेवाले, सर्वश्रेष्ठ, पूर्णकाम और नित्यतृप्त आप श्रीनिवास को समस्त पदार्थों की सारस्वरूपिणी लक्ष्मी जी स्वयं बड़े आदर से भोग लगाने हेतु विविध व्यंजन अर्पण करती हैं ।

विशेषार्थ —

1. उद्यद्रविप्रकरसन्निभमच्युताङ्के
स्वासीनमस्य नुतिनित्यवचः प्रवृत्तिम् ।
ध्यायेद्गदाऽभयकर सुकृताञ्जलिं तं
प्राणं यथेष्टतनुमुन्नतकर्मशक्तिम् ।।

अनेक सूर्य-बिम्ब के उगने की भाँति प्रकाशित होनेवाले तथा श्रीहरि की गोदमें बैठकर ध्यान करनेवाले बहुरूपमें विद्यमान मुख्य प्राणी (वायुदेव) का ध्यान करना चाहिए। इस तरह तन्त्रसार में कहा गया है।

2. देव्यादेशप्रणीतिद्रुहिणहरवरावध्यरक्षोविघाता-
द्यासेवोद्यद्दयार्द्रः सहभुजमकरोद्रामनामा मुकुन्दः ।
दुष्प्रापे पारमेष्ठ्ये करतलमतुलं मूर्ध्नि विन्यस्य धन्यं
तन्वन् भूयः प्रभूतप्रणयविकसिताब्जेक्षणस्त्वेक्षणमाणः ।।
वायुस्तुति श्लो. 21

लंका नगर में सीता जीं को श्रीरामचन्द्र जी का संदेश सुनाकर अंगूठी देने, सीताजी द्वारा दी गयी चूडामणि श्रीरामचन्द्र को देने तथा महाबली (अवध्य) अक्षयकुमार आदि राक्षस वीरों का संहार करने इत्यादि की सेवाओं से सन्तुष्ट होकर श्रीराम ने भक्तप्रवर हनुमान के सिर पर अपने अभय हस्त रखकर उन्हें कृपा-दृष्टि से देखा, तो हनुमान ने माना कि मानों उन्हें देव-दुर्लभ ब्रह्मा का पद मिल गया हो ।

3. 'सहभोगमनन्यलभ्यं हनुमद्रूपवते ददौ पुरा हि।' चतुर्मुख ब्रह्मा का पद देकर मानों सायुज्य मुक्ति (अर्थात् मात्र लक्ष्मी जी इस भोग के अधिकार के सिवाय) अन्य सभी भोगों का अनुग्रह आंजनेयस्वामी को प्राप्त हुआ।

4· प्रत्येक भोज्य पदार्थ में वाय्वात्मक (वायु संबन्धी), रमात्मक (लक्ष्मी संबन्धी) तथा विष्ण्वात्मक (विष्णु संबन्धी) — ये रस विशेष होते हैं। इनमें श्रीहरि स्वरूपभूत विष्ण्वात्मक अप्राकृत रस विशेष को भगवान स्वयं स्वीकार करते हैं। श्री लक्ष्मी स्वरूपभूत रमात्मक रस विशेष को श्रीहरि के समर्पण के उपरांत लक्ष्मी जी स्वीकार करती हैं। परन्तु, वाय्वात्मक रस विशेष को श्रीहरि स्वयं अपने पुत्र वायुदेव को अपनी गोद में बिठाकर अत्यंत प्रीति से देते हैं। तथा उस वायु के माध्यम से उस रस विशेष को अन्तर्यामी होकर भगवान स्वयं स्वीकार करते हैं। – कही मुख्य तात्पर्य है।

5. श्रीहरि तो नित्यतृप्त और सर्वभोग विवर्जित हैं। उनको किसी प्रकार की भोग-सामग्री की आवश्यकता नहीं, तो भी भोज्य-पदार्थ आदि अर्पित कर हम भगवदनुग्रह चाहते हैं। अर्थात् भक्ति की अतिशयता के कारण हम उनको समर्पित करते हैं। भले उनको ये सब नहीं चाहिए।

अथात्मनं कल्पयन्ती डोलामञ्चं मनोहरम्।
सुवर्णशृङ्खलालम्बं सुविशालं सुलक्षणम्॥ 62

प्रवालपादसंयुक्तं सुवज्रफलकैर्वृतम्।
ओतप्रोतैः स्वर्णपटैः माणिक्यस्तबकावृतम्॥ 63
जाम्बूनदवितानाढ्यं मुक्तास्तबकरञ्जितम्।

आपके भोजनोपरान्त विश्राम के लिये लक्ष्मी जी स्वयं अपने-आप अत्यंत मनोहर झूला रूप में परिणत हो गई। वह झूला सोने की जंजीरों से निर्मित, सुविशाल, शुभलक्षण

सम्पन्न, प्रवल (मूंगे) के पाये से संयुक्त, वज्र के फलकों (पट्टों) से युक्त, सुवर्ण की पट्टियों से ओतप्रोत (पिरोया हुआ) तथा स्वर्णवितान के चंदावे से सुशोभित, माणिक्य और मुक्ता की झालरों से सुसज्जित हैं।

विशेषार्थं —

अनन्तासनवैकुण्ठनारायणपुरेषु ये ।
श्रीभागाः शुद्धसत्त्वस्थाः पद्मशङ्खाम्बरादि च ।।
किरीटकटकाद्या येऽव्यलङ्कारा मम श्रियः ।
इत्याद्याः सत्वरूपाः स्युः नित्यानादय एव ते ।।

विष्णुरहस्य अ. 17, श्लो. 11-13

श्वेतद्वीप, अनन्तासन और वैकुण्ठ — इन नारायण के धामों में भगवान के वस्त्र–आभूषण–किरीट–आयुध–पुष्प इत्यादि लक्ष्यात्मक, नित्य और सनातन कहे जाते हैं। अतएव यहाँ पर रमादेवी तदनुसार ऐश्वर्य-सम्पदाओं से ही भगवान की पूजा करती हैं।

भूरूपाऽभूत् स्वयं शय्या श्रीरूपा सोपबर्हणम् ।। 64

दुर्गाभूत् पादसेवार्थं ताम्बूलं भोगसाधनम् ।
सुवर्णदण्डव्यजनं विद्युदाभे सुचामरे ।। 65

वैडूर्यस्तबकच्छत्रं पादुके रत्नपीठके ।
सर्वराजोपचाराणि राजचिह्नानि यानि च ।। 66

सर्वाण्यभूद् रमादेवी देवायानन्ततेजसे ।
भोग्यवस्तुस्वरूपेण तव सेवाऽभिलाषिणी ।। 67

महानन्दाम्बुधौ मग्ना रमते सा रमा त्वया ।
रमसे रमयैव त्वं वैकुण्ठादिषु धामसु ।। 68

ऐसे झूले पर विराजनेवाले महैश्वर्यपूर्ण हे श्रीनिवास ! आपकी सेवा के लिये लक्ष्मी जी ने स्वयं भूदेवी रूप से शय्या, श्रीदेवी रूप से तकिया और दुर्गा रूप से चरण सेविका बनी हैं तथा लवंग, जावित्री, कपूर आदि सुगंध द्रव्यों से मिश्रित भोग-साधन ताम्बूल के रूप में, सुवर्ण-दण्ड के बने विजन (पंखे) के रूप में; विजली की कांति से दमकनेवाले चँवर के रूप में; वैडूर्य के गुच्छों से युक्त छत्र के रूप में; रत्नों के पीठवाले पादुकाओं के रूप में तथा सर्व राजोपचार और राजलक्षणों से परिपूर्ण पदार्थों के रूप में अपने को ही बना लिया है। इस तरह लक्ष्मी जी अनेक भोग्य-पदार्थ होकर, ब्रह्मादि देवताओं के प्रभु आप श्रीनिवास की सेवा की अभिलाषा से महा आनन्द सागर में डूबी क्रीड़ा-विहार करती हैं, तो आप भी उनकी प्रसन्नता-वृद्धि के लिये वैकुण्ठादि त्रिधामों में उनके साथ रमण करने लगे।

विशेषार्थ —

1. देव: 'दिव् = क्रीडायां, राधसे, राध, साध = संसिद्धौ।

2. छत्र–चामर–दर्पण–व्यजन–पादुका–गीत–नृत्य-वाद्य–वाहन प्रभृति राजोपचार हैं।

3: इन्द्रानिल यमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वती: ।।
यस्मादेषां सुरेन्द्राणां मात्राभ्यो निर्मितो नृप: ।
तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ।। मनुस्मृति 7, 4-5

इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर — इन आठ दिक्पालों (देवताओं) के अंश को लेकर सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने राजा को रचा। उसी तेज से राजा समस्त प्रजा को अपने वश में रखता है। अष्ट-दिक्पालों के जो जो चिह्न होते हैं, उन सब को रमादेवी श्री श्रीनिवास की प्रसन्नता हेतु प्रभु की सेवा में लगा देती हैं।

सम्बन्ध — भगवान के अन्य माहात्म्यों का वर्णन करते हैं ।

प्रत्येकावरणस्थैश्च मूर्तिभिर्ब्रह्मपूर्वकैः ।
त्रिदशैर्दशदिक्पालैः सेवितः परमासने ।। 69

हे प्रभो ! प्रत्येक आवरण में अवस्थित आपके स्वरूपभूत केशवादि–सङ्कर्षणादि–मत्स्यादि भगवद्रूपों में तथा आपके धाम-जैसे उत्तमाधिष्ठानों में ब्रह्मादि देवताओं द्वारा तथा इन्द्रादि दिक्पालों द्वारा सुसेवित आप अपने सर्वोत्तम आसन पर विराजमान हैं ।

विशेषार्थ —

1. प्रथम आवरण के ये सात देवता हैं– लक्ष्मी, भूमि, क्रुद्धोल्का, महोल्का, वीरोल्का, द्युल्का तथा सहस्रोल्का ।
2. द्वितीय आवरण के ये रूप हैं – वासुदेव-माया, सङ्कर्षण-जया, प्रद्युम्न-कृति, अनिरुद्ध-शान्ति, विश्व-तैजस-प्राज्ञा-तुर्या ।
3. तृतीय आवरण — केशवादि के रूप हैं।
4. चतुर्थ आवरण — सङ्कर्षणादि के रूप हैं ।
5. पञ्चम आवरण — मत्स्यादि के रूप हैं ।
6. षष्टम अवरण के देवगण– अनन्त, ब्रह्मा, वायु, ईशान, गरुड, वारुणी, गायत्री, भारती, गिरिजा और सौपर्णी हैं ।
7. सप्तम आवरण के देवता हैं — इन्द्रादि आठ दिकपाल, अनन्त और ब्रह्मा ।

इनके लिए ये प्रमाण हैं —

वासुदेवादिकान् दिक्षु केशवादीन्स्ततः परम् ।
मत्स्यकूर्मवराहांश्च नारसिंहं च वामनम् ।।
भार्गवं राघवं कृष्णं बुद्धं कल्किनमेव च ।
अनन्तं विश्वरूपं च तद्वहिः पूजयेत्क्रमात् ।
अनन्तब्रह्मवाय्वीशान् वीशं चाग्रे प्रपूजयेत् ।।

वारुणीं चैव गायत्रीं भारतीं गिरिजामपि ।
कोणेषु बीन्द्रं वामे च सुपर्णीं प्रयजेदपि ।।
तन्त्रसार अ. 1, श्लो. 62-65

पूर्वादि दिशाओं में वासुदेवादि और केशवादि रूपों की दो-दो मूर्तियों का तथा विदिशाओं (कोणों) में एक-एक मूर्ति का, केशवादि प्रतिमाओं के बाहर मत्स्यादि रूपों का, चारों दिशाओं में शेषादिकों का पूजन करना चाहिए ।

यह अर्चना-प्रक्रिया 'पद्ममाला' नामक ग्रंथमें विस्तार से वर्णित है।

8. भगवद्रूपों में कोई भेद नहीं होने पर भी केशवादि मूर्तियों में श्रीनिवास का पूजन कैसे सम्भव है ? इसे बताते हैं —

महीयते महति च स्वयं स भगवान् हरिः ।
पूज्यपूजकभेदोऽत्र नैव कश्चिदपीष्यते ।।
अनन्योऽप्यन्यशब्देन चतुरात्मा प्रकीर्त्यते ।।
निर्विशेषोऽपि भगवान् सङ्ख्यामात्रविशेषतः ।

श्रीहरि ही अपने रूपों से आप पूजित होते हैं । आप-अपने रूपों में पूजित होने का भाव यह है कि पूज्य और पूजक में कोई भेद है ही नहीं । इस तरह भेद न होने पर भी अन्य शब्द से अलग बतलाये जाते हैं । विशेष न होने पर भी मात्र संख्या द्वारा भिन्न हैं ।

श्रीनिवास रमानाथ त्वन्नाभ्यब्जे चतुर्मुखम् ।
गिरीशमन्तःकरणे ह्यङ्गेष्विन्द्रादिदेवताः ।। 70

ऋष्यादींश्च यथावत् त्वं सर्वजीवांश्चतुर्विधान् ।
सृष्ट्वा तेष्वन्तराविश्य बहिः स्थित्वाऽसि पालकः ।। 71

हे श्रीनिवास ! लक्ष्मीवल्लभ ! आप अपने नाभि कमल से चतुर्मुख ब्रह्मा को, अन्तःकरण से कैलासनाथ शिव को, मुखादि

अंगों से इन्द्रादि देवताओं को, इसी तरह यथा योग्य स्थानों से ऋष्यादिकों को तथा अन्य जीवों (जरायुजों, स्वेदजों, अण्डजों, एवं उद्भिजों) को उत्पन्न करके उनके अंदर प्रविष्ट होकर तथा बाहर उपस्थित होकर उनका पालन-पोषण करते हैं।

विशेषार्थ —

1. जरायु — मनुष्यादि वे प्राणी हैं जो माँ के जरायु अर्थात् गर्भ से उत्पन्न होते हैं।
2. स्वेदज – पसीने से उत्पन्न होनेवाले जूँ, खटमल आदि।
3. अण्डज – अण्डसे पैदा होनेवाले पक्षी, सर्प, मच्छली आदि।
4. उद्भिज – उगनेवाले अर्थात् धरतीको फोड़कर निकलनेवाले पेड़-पौधे आदि।
5' 'मुखादिन्द्राश्चाग्निश्च प्राणाद्वायु रजायत' – इत्यादि श्रुतियों के प्रमाणानुसार श्रीहरि के मुखादि अंगों से इन्द्रादि देवगण उत्पन्न हुए।

अत्यन्तभिन्नस्तैः सर्वैः पृथक् जीवजडात्मकैः।
पारतन्त्र्यादिदोषोज्झः स्वातन्त्र्यादिगुणोर्जितः॥ 72

यद्यपि आप सभी वस्तुओं में हैं, फिर भी परस्पर अत्यंत भिन्न सभी वस्तुओं की अपेक्षा आप अत्यंत भिन्न हैं। आप परतन्त्रादि दोषों से मुक्त हैं तथा स्वतन्त्रादि गुणों से युक्त हैं।

विशेषार्थ —

जीवेशयोर्भिदाचैव जीवभेदः परस्परम्।
जडेशयोर्जडानां च जडजीवभिदा तथा॥
पञ्चभेदा इमे नित्याः सर्वावस्थासु सर्वशः।

1. जीवों और ईश्वर में भेद है ।
2. जीवों में परस्पर भेद है ।
3. जड वस्तुओं और ईश्वर में भेद है ।
4. जड पदार्थों में परस्पर भेद है ।
5. जड और जीवों में भेद है ।

ये भेद नित्य और सनातन हैं ।

निरपेक्षो नित्यतृप्तः पूर्णकामस्त्वमार्द्रहृत् ।
सत्यकृत् सत्यसङ्कल्पो माब्रह्मेशेन्द्रवन्दितः ।। 73

इस जगत में परस्पर आश्रय से जीवन-यापन करनेवाले जीवों की भाँति आप नहीं हैं । आपको न तो किसी वस्तु की अपेक्षा है, न आश्रय की आवश्यकता । आप नित्य तृप्त और पूर्ण काम हैं, पर निर्दय नहीं हैं । अर्थात् द्रवित (दयापूर्ण) अन्तःकरण से युक्त हैं । आप सत्य जगत की रचना करनेवाले हैं तथा सत्य सङ्कल्पवाले हैं । आप जो भी चाहते हैं उसे कर ही देते हैं और उसके प्रतिकूल कभी नहीं होने देते । आप रमा, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र इत्यादि देवताओं से वन्दित हैं ।

सर्वेषां प्रेरकस्त्वं हि मुक्तामुक्तनियामकः ।
अघटचघटने शक्तो ह्यगण्यगुणमण्डितः ।। 74

हे स्वामिन् ! आप रमा, ब्रह्मा आदि सब के प्रेरक हैं । मुक्त एवं बद्ध जीवों के नियामक हैं । असम्भव को सम्भव करने वाले हैं । अर्थात् अघटनशील को घटित करने में समर्थ हैं । अनन्त गुणों से शोभित हैं और श्रुति-स्मृति आदि से प्रशंसित हैं ।

अचिन्त्याश्चर्यचर्यस्त्वं ब्रह्माण्डान्तर्बहिःस्थितः ।
अणोरणीयान् महतो महीयान् सर्वगोऽसमः ।। 75

आप अचिन्त्य एवं आश्चर्य-जनक हैं, इस ब्रह्माण्ड के भीतर और बाहर रहनेवाले हैं, अत्यन्त छोटी वस्तु अर्थात् अणु से भी परमाणु हैं तथा अत्यन्त महान् से भी महान् हैं। आप सर्व व्यापक एवं अपरिमेय हैं।

विशेषार्थ —

1. इस लोक में जिस वस्तु में अणुत्व है उसमें महत्व नहीं है और जिसमें महत्व है उसमें अणुत्व नहीं है, किन्तु भगवान में ये दोनों एक-साथ परिलक्षित होते हैं। यही आश्चर्य-जनक है।

2. सर्वथा असंभावित तथा परस्पर विरोधी-धर्म संसार की किसी वस्तु में एक-साथ घटित नहीं हो सकता है। किन्तु भगवान के सम्बन्ध में यह लागू नहीं होता। क्योंकि वे अचिन्त्य और अनिर्वचनीय हैं। उनकी अपार महिमा न किसी ने जानी है, न समझी। भविष्य में भी कोई नहीं जान-समझ सकेगा।

3. अणोरणीयान् महतोमहीयानात्माऽस्य जन्तो निहितो गुहायां' — यह कारकश्रुति प्रसिद्ध है।

सर्वाधारः सर्वसाक्षी सर्वापेक्षोऽतिसुन्दरः ।
सर्वोत्तमश्च सर्वज्ञः सर्वस्वामी च सर्वदाः ।। 76

हे प्रभो! आप समस्त जीवों तथा लोकों के आश्रय हैं। उन सम्पूर्ण जीवधारियों के बाह्याभ्यंतर व्यापारों के साक्षी तथा उनके कर्मों के अनुसार फल प्रदान करनेवाले हैं, ब्रह्मादि (सर्वसज्जन) आपकी अपेक्षा करते हैं, आप अत्यन्त सुन्दर, अत्युत्तम, सर्वज्ञ, चराचर जगत के स्वामी और भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों कालों में विद्यमान हैं।

विशेषार्थ —

प्रमाण के रूप में —

1. 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च'
2. 'अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः'
3. 'यः सर्वज्ञ स्सर्ववित्'
4. 'यस्य ज्ञानमयं तपः' — इत्यादि श्रुति-स्मृति वाक्य भगवान के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं।

सर्वशक्तोऽज्ञेयचर्यो व्यक्तोऽव्यक्तस्सनातनः ।
शेषोऽशेषश्च निर्लिप्तो ब्रह्मण्यः शाश्वतः शुभः।। 77

हर कार्य करने में आप शक्ति सम्पन्न हैं। आप अनधिकारी व्यक्तियों के लिये अगोचर हैं, अधिकारी व्यक्ति अर्थात् आपके अनुग्रह प्राप्त भक्त ही आपके विलक्षण कार्य किंचिन्मात्र (यथा-लभ्य) जान सकते हैं, पापाचारियों को वह अगोचर है। प्रत्येक अवस्था में आप एक ही रूप में स्थित हैं। वेदों से नित्य संस्तुत्य हैं। प्रलय काल में आप एक ही बचते (शेष) हैं, इस कारण आप 'शेष' कहलाते हैं। सृष्टि के आरम्भ में भी आप ही सर्वत्र व्याप्त हैं, अतः आप'अशेष'नाम से कहे जाते हैं। आप सांसारिक माया-मोह से मुक्त हैं। ब्राह्मण-प्रिय हैं। आप बाल्य–कौमार–यौवन–वार्धक्य आदि अवस्थाओं से अतीत हैं। सदैव एकरूप में स्थित आप सनातन पुरुष हैं। आप समस्त जगत के प्रभु हैं और पूर्ण कल्याणगुणोंवाले हैं।

विशेषार्थं —

ब्रह्मण्यः – 'ब्रह्मयति आनन्देन मुक्तान्' ब्रह्मा = मुक्त जीवों को आनन्द से पूर्ण करने हेतु सुधा-समुद्र जिसके द्वारा प्राप्त होता है, वह। इस ब्युत्पत्ति से मुक्तों के लिए सुधा-समुद्र की उत्पत्ति करने के कारण भगवान ब्रह्मण्य हैं।

चतुर्वर्गैस्सदाहीनः चतुर्धर्मप्रदर्शकः ।
चतुःपुमर्थदाता च चतुर्मोक्षप्रदः श्रुतः ।। 78

आप अनित्यता, देह-हानि, दुःख-प्राप्ति और अपूर्णता – इन चार वर्गों से रहित हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र – इन चार वर्णाश्रमों के नियामक हैं। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य वानप्रस्थ और संन्यास – इन चार आश्रम-धर्मों के प्रवर्तक हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष – चतुर्विध पुरुषार्थों को यथायोग्य प्रदान करनेवाले हैं। कर्मक्षय, उत्क्रान्तिमार्ग, सुख-भोग और सालोक्य-सारूप्य-सामीप्य-सायुज्य — ऐसे चार प्रकार के मोक्ष को देनेवाले हैं तथा वेदों से विख्यात हैं।

विशेषार्थ —

1. अनित्यत्वं देहहानिः दुःखप्राप्तिरपूर्णता ।
नाशश्चतुर्विधो ज्ञेयः तदभावो हरेस्सदा ।।
— चार प्रकार के नाश रहित हैं।

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।।
— शम-दमादि ये नौ गुण ब्राह्मण के स्वभाविक कर्म हैं।

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।।
— शौर्यादि ये सात क्षत्रिय के कर्म हैं।

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
— खेती, गोरक्षा और व्यापार वैश्य के कर्म हैं।

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।।
— तीनों वर्णों की शुश्रूषा करना शूद्र का कर्म है।

(भगवद्गीता अ. 18, श्लो. 42 से 44)

अध्यक्षजोऽप्राकृतस्त्वं अनन्तमहिमा तव ।
मूलरूपी ह्यनन्तस्त्वं अवतारास्तथाविधाः ।। 79

आप प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष-प्रमाणों से परे हैं। (अर्थात् प्रत्यक्षरूप से जानने में अशक्य हैं) प्रकृति सम्बन्ध (सांसारिक बन्धन) से रहित हैं। आपकी महिमा अनन्त हैं। वैसे ही मूलस्वरूप आप और आपके अवतार भी अनन्त हैं। अर्थात् आप अविनाशी परब्रह्म हैं।

विशेषार्थ.—

1. अधोक्षजः = अधः कृतं अक्षजं येन –इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रत्यक्षरूप से न जाने सकने वाले हैं।

2. अनन्तः = 'अति—बन्धने. न विद्यते' – 'अन्तः बन्धः यस्य' संसार बन्धन से सर्वथा अतीत हैं।

3. 'नेन्द्रियाणी नानुमानं वेदा ह्येवैनं वेदयन्ति', 'न तत्र चक्षुर्गच्छति' — न इन्द्रियों और न अनुमान द्वारा ब्रह्म को जाना जा सकता। मात्र वेदों द्वारा जाना जा सकता है। ऐसा श्रुतियाँ बताती हैं। अतः ईश्वर प्रत्यक्षरूप से गोचर नहीं हैं।

4. यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।।

इत्यादि श्रुतियों में कहा गया है कि मूलरूप और अवताररूपों को अलग-अलग मानने पर महा अनर्थ होगा।

नामध्येयान्य(नामचर्याण्य)नन्तानि ज्ञानानन्दादयोगुणाः।
अनन्तवेदवेद्यस्त्वैः अवेद्योऽनन्तसौख्यदः ।। 80

हे लक्ष्मीनाथ ! आपके राम-कृष्ण आदि (गोवर्धनगिरि उठाने आदि कार्यों से) अनन्त नाम हैं। आपके ज्ञान-आनन्दादि

गुण भी अनन्त हैं। आप अनन्त वेदशास्त्रों से ही जानने योग्य हैं तथा उनसे भी पूर्णतया नहीं जाने जा सकनेवाले हैं। आप ब्रह्मा आदि देवताओं (मुक्तों) को यथासाध्य अनन्त सुख-भोग देनेवाले हैं।

अहो भाग्यमहो भाग्यं रमेश त्वत्पादाम्बुजे।
निविष्टमनसां सौख्यमिहामुत्राभिवर्धते ।। 81

हे लक्ष्मीकांत ! अहोभाग्य है ! धन्य भाग्य है ! उनका, जिनका मन आपके चरण कमलों में संयुक्त होते हैं, उन भक्तों को इस लोक और परलोक में सर्वत्र सुख-ही-सुख मिलता है ! ऐसे भक्त बड़े भग्यशाली हैं।

तव प्रसादलेशस्य लेशलेशातिलेशतः।
लवमात्रं यैस्तु लब्धं तैरलभ्यं न किञ्चन ।। 82

हे श्रीनिवास ! आपका लेशमात्र अनुग्रह यत्किचिन्मात्र अर्थात् अत्यंत अल्पकण से अल्पभाग प्राप्त होने पर भी समस्त जीवों को सब सुख मिलते हैं। लवलेशमात्र आप का अनुग्रह जिनको प्राप्त हो गया, उन्हें फिर प्राप्त करने को कुछ नहीं रह जाता।

चरित्राण्यतिचित्राणि महान्ति सुबहून्यपि ।
तव नानावतारेषु दर्शयस्यनुवर्तिनाम् ।। 83

हे श्रीहरि ! आपके राम-कृष्ण आदि अवतारों की बड़ी महिमा है, यह अत्यंत अद्‌भुत भी है। ऐसे महिमान्वित अवतार चरित्रों की विशेषता को आपने उन्हीं भक्तों को दर्शाया जो नित्य-निरन्तर आपके भजन में अनुरक्त रहे।

सम्बन्ध — भगवान श्रीहरि के लोक-कल्याणकारी विभिन्न अवतारों की महिमा तथा जब-जब जिस-जिस रूप में उनकी कृपा का दर्शन अपने भक्तों केलिए हुआ, उसका वर्णन करते हैं।

कीटोऽपि त्वद्दयालेशात् साम्राज्यमनुभुक्तवान् ।
त्वत्पादपद्मसम्पर्कलेशलेशातिलेशतः ।। 84
दृषद्दिव्याङ्गनाऽभूद्धि चेतनानां तु किं ब्रुवे ।

हे श्रीहरि ! (वेदव्यास के रूप में) आपने एक कीट के प्रति लेशमात्र दया दिखायी, तो उस कीट ने महान् साम्राज्य का सुख-भोग अनुभव किया। रामावतार में तो आपके चरण कमल के थोड़े-से स्पर्श से एक पत्थर भी अत्यंत सुन्दरी स्त्री (अहल्या) रूप हो गया। अचेतन (पत्थर) पर जब आपकी इतनी कृपा है तो चेतन (मनुष्यों) के लिये तो कहना ही क्या?

विशेषार्थ —

1. भवस्व राजा कुशरीरमेतत् त्यक्त्वेति नैच्छत्तदसौ ततस्तम् ।
अत्यक्तदेहं नृपतिं चकार पुरा स्वभक्तं वृषलं सुलुब्धम् ।।
लोभात्स कीटत्वमुपेत्य कृष्णप्रसादतश्चाशु बभूव राजा ।

(महाभारत तात्पर्य निर्णय अ, 10, श्लो. 64-65)

एक समय भगवान वेदव्यास रास्ते में जा रहे थे। उनके चरणों पर एक कीडा आकर पड़ गया। इस पर उनका दिल दया से द्रवीभूत हो गया और बोले — "हे कीटक ! तुम इस शरीर को छोड़ कर राजा बनो।" किन्तु कीडे ने अपना शरीर को न त्यागने की इच्छा प्रकट की। क्योंकि वह पूर्वजन्म में एक भक्त था, पर लोभ के वश उसे कीडे की योनी मिली। परन्तु, अब महर्षि वेदव्यास की कृपा ने उसे कीडे के शरीर में ही राजा का पद दे दिया, तो उस कीडे ने समस्त राज-भोग अनुभव किया।

2. अथोऽहल्यां पतिनाऽभिशप्तां प्रधर्षणा दिन्द्रकृताच्छिलीकृताम् ।
स्वदर्शनान्मानुषतामुपेतां सुयोजयामास स गौतमेव ।।

(महाभारत तात्पर्य निर्णय अ. 4, श्लो. 10)

देवराज इन्द्र ने अहल्या का छल से भोग किया। अपने पति गौतम ऋषि के शापवश वह पत्थर बन गयी। बाद में भगवान श्रीराम के चरण स्पर्श से वह शाप से विमुक्त हो गयी। श्रीराम ने अहल्या पर कृपा करके उसे ऋषि गौतम को सौंप दिया।

अत एवार्जुने सूतो बलेश्च द्वारपोऽप्यभूः ।। 85
इन्द्रे त्वं दयया चेलां बलिं याचितवानसि ।

हे स्वामिन्! आपने अपने भक्तों पर अनुग्रह करने केलिये ही श्रीकृष्ण का अवतार लिया। अर्जुन के प्रति आपकी असीम अनुकम्पा थी। इसीलिये तो आप उसके रथ के सारथी बन गये और दुर्योधन आदि पापाचारियों का वध करके पापों के भारवाली पृथ्वी की रक्षा की थी। देवराज इन्द्र पर कृपा करके राजा बलि के पास जाकर आपने वामन शरीर में तीन पग की भूमि माँगी।

विशेषार्थ —

हे श्रीनिवास! देवराज इन्द्र पर दया परवश हो स्वर्ग लौटाने निमित्त आपने वामन के रूप में दैत्यराज बलि के यहाँ जाकर बड़ी दीनता से तीन पग पृथ्वी की याचना की और त्रिविक्रमरूप धारणकर परम भक्त एवं दानवीर बलिकी पृथ्वीतल के नीचे स्थित सुतल नामक पाताल को देकर उसके ऊपर कृपा-प्रसाद प्रकट किया। उसके अनुरोध करने पर आप उसके द्वारपाल बने। आश्चर्य की बात है, दानवेन्द्र बलि के सभी द्वारों पर आप खडे दीखते थे। अर्थात् उनकी आँखें जहाँ जाती थी, वहीं आप चक्र लिये हुए दिखायी पड़ते थे।

गजेन्द्ररक्षणे दूतान् द्वारपान् वाऽप्यनादिशन् ।। 86
अन्वधावः स्वयं शीघ्रं क्षुद्रनक्रमुमुक्षया ।

हे प्रभो ! क्षुद्र मगर मच्छर द्वारा ग्रसित गजेन्द्र की रक्षा के लिये आपने न किसी दूत को भेजा और न किसी द्वारपाल को आज्ञा दी। अपितु, उसकी आर्त-पुकार सुनकर आप स्वयं शीघ्रातिशीघ्र अपने भक्त की विमुक्ति के लिये दौड़ पड़े।

विशेषार्थ —

अन्तःसरस्युरुबलेन पदे गृहीतो
ग्राहेण यूथपतिरम्बुजहस्त आर्तः।
आहेदम् आदिपुरुषाखिललोकनाथ
तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ।।
स्मृत्वा हरिस्तं अरणार्थिनमप्रमेयः
चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः ।
चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य तस्मा-
द्धस्ते प्रगृह्य भगवान् कृपयोज्जहार ।।

भागवत स्कन्ध 2, अ. 7, श्लो. 15, 16

एक विशाल सरोवर में जलक्रीड़ा के लिये एक गजराज ने प्रवेश किया। एक मच्छर ने उस गजराज का पैर पकड़ लिया। गज और ग्राह के बीच कई दिन तक खींचाखींची हुई। जब तक गज के शरीर में शक्ति थी तब तक उसने ग्राह से खूब लडा। हाथी काफी थक गया। उसके पूर्वजन्म के विद्या-संस्कार से उसे यह स्मरण आया कि मुझे अब भगवान की शरण ग्रहण करनी चाहिये, वे ही मेरे रक्षक हैं। उसने निखल जगत के एकमात्र स्वामी विष्णु की पुकार-पुकार कर स्तुति की। आर्तत्राणपरायण भगवान श्रीहरि शरणागतवत्सलत्व की रक्षा के लिए तुरंत वहाँ दौड़ आये। उन्होंने चक्र से नक्र (मगर) का वध किया और गजेन्द्र को उत्तम गति प्रदान की।

2. भगवान सहज कृपामय-दयामय हैं और उनका प्रत्येक विधान अर्थात् अनुग्रह एवं निग्रह प्राणियों के हित के लिए है। देश, काल और पात्र के अधिकारानुसार वे जो कुछ भी करते हैं, वह प्रेम और दया से ओतप्रोत मङ्गलमय विधान ही समझना चाहिए। क्योंकि भगवान सबके — जीवमात्र के सहृद हैं, कृपामय ही नहीं, घनिष्ठ मित्र हैं। भगवत्कृपा-पात्र बनने की एकमात्र शर्त यही है कि अनन्य भक्ति से अपना सर्वस्व प्रभु के चरणों में समर्पित कर दे। अपनी कहलानेवाली कोई चीज़ न रहे। इसीको आत्म-निवेदन या शरणागति कहते हैं। नवधा भक्ति में आत्म-निवेदन का शीर्षस्थ स्थान है। एक बार शरणापन्न हो जाने पर भगवान कठिन-से-कठिन संकट से भी उबार देते हैं। सच्चे मन से निकला आर्तस्वर शीघ्र ही भगवत्कृपा-प्राप्ति करा देता है। चाहे ग्राह से युद्ध में परास्त गज की पुकार हो या द्रौपदी का विलाप। नारद, पराशर, शाण्डिल्य ने भी परम व्याकुलता को ही उदात्त भक्ति का लक्षण माना है। प्रभु-कृपा पात्र तो वह दीन है, जो उन्हीं के अनन्य आश्रय में है। भक्त एवं भगवान के बीच कोई व्यवधान नहीं रह जाता। क्योंकि उसका अहं मिट गया होता है। तब भगवान उसपर कृपा करतेहैं। उसके योगक्षेम का दायित्व वहन करते हैं। श्रीमद्भगवद् गीता में श्रीभगवान का वचन है —

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ।।

भक्त पर असीम अनुकम्पा प्रभु का प्रधान गुण है। भक्ति के वश में होकर प्रभु प्रत्यक्ष प्रकट होकर उसे दर्शन भी देने को बाध्य हैं।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ।। (11-54)

हे परंतप अर्जुन ! अनन्य भक्ति के द्वारा इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखने के लिये, तत्त्व से जानने के लिये अर्थात् एकीभाव से प्राप्त होने के लिए भी शक्य हूँ।

वैकुण्ठं वा परित्यक्ष्ये न भक्तांस्त्यक्तुमुत्सहे ।। 87
मेऽतिप्रिया हि मद्भक्ता इति सङ्कल्पवानसि ।

हे देव ! 'मैं वैकुण्ठ को छोड़ सकता हूँ, किन्तु अपने भक्तों को कभी भी न छोड़ सकता । क्योंकि वे मेरे अत्यंत प्रिय हैं ।' ऐसा आपका दृढ़ सङ्कल्प है ।

कामधेनुः कल्पवृक्षश्चिन्तामणिरिति त्रयम् ।। 88
वेङ्कटेश त्वमेवासि शेषागे सर्वदानतः ।

हे वेङ्कटाचलपति ! देवलोक में कामधेनु, कल्पवृक्ष और चिन्तामणि हैं,— ये तीनों सर्वाभीष्ट प्रदान करनेवाले हैं । तथापि आप अपने भक्तों की सभी कामनाओं को पूर्ण करने के लिए आप ही उन तीनों के रूप में वेङ्कटगिरि (पृथ्वी) पर विराजमान हैं ।

विशेषार्थं —

'नतः' — ब्रह्मादि देवताओं से पूजित हैं । तथा हाथ में पकड़ने लायक झुका हुआ । चाहे वह कल्पवृक्ष ही क्यों न हो, पर अकाश की ओर ऊँचाईबाला तो क्या प्रयोजन ? तात्पर्य है कि हाथ से पकड़ने को लायक झुका होने पर उसकी फल-प्राप्ति सर्व-सुलभ हो जाती है ।

ददाति कामानन्नादीन् मणिर्धेनुश्च पादपः ।। 89
न चापवर्गं स्वर्गं वा तेषां शक्तिश्च तादृशी ।

कल्पवृक्षादिकों की अभ्यर्थना करने पर वे तो केवल अन्न-वस्त्र-आभूषण आदि ऐहिक भोग-बस्तु दे सकते हैं । उनकी शक्ति तो इतनी ही है । स्वर्ग-भोग या मोक्ष प्रदान करने का सामर्थ्य उनमें कहाँ है ।

सम्बन्ध — परम पिता परमात्मा परम दयालु हैं। जिस समय उनकी दया हो जाती तव वे अपने सङ्कल्प से प्रकृति के अनुकूल करके जीवों की विकृति को भी हटा देते हैं। – इस जिज्ञासा पर कहते हैं।

यदि त्वं सुप्रसन्नोऽसि सर्वार्थान् सम्प्रदास्यसि ।। 90
जात्यन्धानां च चक्षूंषि राति त्वन्मूर्तिदर्शनम् ।

हे वेङ्कटनाथ ! यदि आप प्रसन्न होते हैं तो अपने भक्तों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – ये चतुर्विध पुरुषार्थ प्रदान करते हैं तथा जन्मान्ध को नेत्रवाला करके अपने दिव्य मङ्गल सुन्दर श्रीविग्रह का दर्शन करा देते हैं।

बधिराणां च श्रोत्राणि त्वत्कथाश्रवणं परम् । 91
जडं मूकं च वाचालं करोष्यध्ययनान्वितम् ।
मन्दबुद्धिं प्राज्ञतमं साङ्ख्ययोगसमाधिगम् ।। 92

हे प्रभो ! आप बहिरों को सुनने की शक्ति प्रदान कर अपनी दिव्य कथा का श्रवण कराते हैं। जो जन्म का गूँगा है, उसके वाणी दोष को दूर कर वेदशास्त्रों में अध्ययनशील बनाते हैं। मूर्ख को विद्या-विवेक प्रदान कर वक्तृत्व में समर्थ एवं प्रज्ञाशाली बनाकर साङ्ख्य-योग शास्त्रों में निष्णात बनाते हैं और उसे भगवद्विषयक अध्यात्म ज्ञानी और स्थितप्रज्ञ बनाते हैं।

अकरस्य करौ दत्वा करोषि तव पूजकम् ।
अपदस्य पदे दत्वा त्वत्तीर्थक्षेत्रगामिनम् ।। 93

जिस के हाथ नहीं, ऐसे लूले को हाथ देकर अपनी पूजा करने में योग्य बनाते हैं तथा जिसके पैर नहीं, ऐसे लंगडे को पैर देकर अपने तीर्थों में गमन करनेवाला बना देते हैं।

यद्यद्दुःखं भवेद्भक्ते तत्तत् सद्यो हरिष्यसि ।
कुब्जत्वं कुष्ठतां नानारोगानप्याभिचारिकान् ।। 94
हृत्वा ददास्यङ्गदाढर्चं सौन्दर्यं त्वद्दयाऽद्भुता ।

हे केशव ! आपके भक्तों पर जब कभी कोई सङ्कट आते हैं तो उन्हें झट दूर कर देते हैं । अर्थात् वृद्धावस्था के कारण शरीर का टेढापन (कुबडा), कुष्ठरोग, हथियारों से प्रहार, भोजनादि में विषप्रयोग, अभिचार (मंत्रप्रयोग से दिये गये दुःख) इत्यादि विपदाओं का नाश करते हैं तथा वृद्धों को स्वस्थ शरीर दारिढच आदि प्रदानकर उनका सौन्दर्य बढ़ाते हैं । आपकी यह अनुकम्पा अत्यन्त आश्चर्ययुक्त है ।

श्रीनिवास ! बहूक्त्या किं भक्तसर्वार्तिनाशने ।। 95
सर्वार्थपूरणे चापि त्वत्समोऽण्डे न कुत्रचित् ।

हे श्रीनिवास ! बहुत क्या कहा जाय ? अपने भक्तों के सब दुःखों का नाश करने में तथा उनकी सारी कामनाओं को पूर्ण करने में आपके समान इस जगत में कोई दूसरा नहीं है ।

प्रसन्नो नीलमेघस्त्वं श्रीभूविद्युत्समन्वितः ।। 96
हृद्व्योमगस्त्रितापघ्नो भक्तसर्वेष्टवार्षुकः ।

हे श्रीहरि ! आप प्रसन्न होते हैं तो अपने भक्तों के ऊपर 'सर्वाभीष्ट' की वर्षा ही कर देते हैं । (यहाँ वर्षा के लिये मेघों का संकेत-चिह्न है) आप इन्द्रनील मणि की तरह उज्वल देह-कांति युक्त हैं । अपने हृदयरूपी आकाश में विद्युल्लता के समान प्रकाशमान श्रीदेवी और भूदेवी से युक्त आप अपने भक्तों के आध्यात्मिक–आधिभौतिक–आधिदैविक — तीन तापों का नाश करके उनके ऊपर सर्वाभीष्ट वर्षण करते हैं ।

विशेषार्थं —

1. वर्षण (पानी बरसने का) मेघ चिह्नों से रूपक अलंकार निरूपित करते हैं। नीलवर्ण से युक्त भगवान नीलमेघ हैं। श्रीदेवी और भूदेवी — ये दोनों उस मेघ में स्तिथ बिजलियाँ हैं। भक्त के हृदयरूपी आकाश में नीलमेघ संचार करता है।

मेघ के संचार से आधिभौतिक ताप मात्र प्रशमन हो जाता है। भगवानरूपी नीलमेघ हृदयाकाश में संचार होने से त्रिविध ताप शांत हो जाते हैं।

2. आँखों से देखने के लिए सूर्य की आवश्वकता है। सूर्य के न उदित होने से अन्धकार छा जाता है, उसी तरह श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं का अनुग्रह यदि न होता तो वे इन्द्रियाँ कार्यक्षम होती नहीं। अर्थात् जीवन में बधिरत्व, अन्धत्व आदि दोष आ जाता और उन इन्द्रियों के होती हुई भी नहीं के बराबर हैं। वे तो गोलक मात्र हैं। क्योंकि उन इन्द्रियों से सुनने, देखने आदि का काम नहीं चलता। वे इन्द्रियाँ अपने-अपने अधिष्ठाता देवताओं से शक्ति पाकर प्रकाशित हैं। — इसी को आधिदैविक कहा जाता है।

3. पांच भौतिक शरीर में उष्ण के अधिक होने से पित्त, शीत की अधिकता से कफ तथा वायु की अधिकता से वात बढ़ता है। — इसीको आधिभौतिक कहा जाता है।

4. मन की व्यथा, राजादि में भय तथा भाई-बन्धु से कलह — इत्यादि आध्यात्मिक है।

5. परन्तु, स्वयं के द्वारा सम्पूर्ण अनिष्ट निवारण तथा समस्त इष्ट की प्राप्ति होती है।

सम्बन्ध — भगवान अपने भक्तों का कैसे इस संसार से बेडा पार लगाते हैं तथा आठवां समुद्र कहलानेवाले अभीष्ट-सिद्धि को कैसे प्रदान करते हैं — इस विषय को स्पष्ट करते हैं।

अभीष्टाष्टमवाराशौ निमज्योन्मज्जितं निजम् ।। 97

आनन्दाष्टमसुद्वीपे संस्थापयसि चादरात् ।

सर्वसौख्यमिहामुत्र स्वर्मुखक्त्यानन्दवर्धनः ।। 98

सातों समुद्रों के पार आठवाँ समुद्र कहलानेवाले (अनन्त कृपा से) अनन्तानन्त अभीष्ट प्रदान करनेवाले कृपा-समुद्र में अपने भक्तों को आप्लुत कर उन्हें निकालकर सर्वाभीष्ट की प्राप्ति द्वारा महानन्दरूपी आठवें द्वीप (महावात्सल्य एवं आदर) में स्थापित करते हैं। अर्थात् आप अपने भक्तों को सब तरह के ऐहिक-पारलौकिक सुख-भोगों को प्रदान कर मुक्ति की अवस्था में भी उन्हें आनन्द बढ़ाते हैं।

इति श्रीमदादित्यपुराणें श्रीवेङ्कटेशमाहात्म्ये
'अभीष्टदानप्रकारो' नाम द्वितीयोऽध्याय: ।

श्रीमदादित्य पुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटेश माहात्म्य का
'भगवद्गुण कथा-वर्णन' नामक दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

तृतीय अध्याय

।। अथ भगवतः नानावतारवर्णनप्रकारः ।।

अब भगवान के अनेक अवतारों का वर्णन प्रस्तुत किया जाता है ।

देवशर्मोवाच —

अनन्तवेदसंवेद्य लक्ष्मीनाथाण्डकारण ।
ज्ञानानन्दैश्वर्यपूर्ण नमस्ते करुणाकर ।। 1

हे अनन्त वेदों से जानने योग्य! ब्रह्माण्ड सृष्टि के कारण! ज्ञान, आनन्द और ऐश्वर्य से पूर्ण! करुणामय! हे लक्ष्मीपति! प्रभो! श्रीवेङ्कटेश! आपको प्रणाम है ।

नक्षत्राणि च गण्यन्ते पांसवश्च क्षणादयः ।
त्वद्वीर्याणि न गण्यन्ते ब्रह्मणा रमयाऽपि वा ।। 2

नक्षत्र, पृथ्वी के धूल-कण तथा क्षण इत्यादि की गणना तो की जा सकती है । किन्तु आपके शक्ति-चातुर्यादि गुणों की गिनती ब्रह्मा और लक्ष्मी से भी नहीं की जा सकती है ।

विशेषार्थं —

यहाँ 'विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि' इस श्रुति का अर्थ दिया गया है ।

तथाऽपि ते भक्तदासदासदासो यथामति ।
स्तौमि त्वां वेङ्कटाधीश त्वद्भक्तः प्रेरितस्त्वया ।। 3

हे वेङ्कटेश! आपके गुण अगण्य हैं, तथापि आपकी भक्ता लक्ष्मी के दास वायुदेवता का दास मैं आपकी प्रेरणा से ही अपनी अल्प-बुद्धि के अनुसार आपकी स्तुति करना चाहता हूँ ।

श्रीवेङ्कटेश ! मत्स्वामिन् ! ज्ञानानन्ददयानिधे ।
भक्तवत्सल ! भो ! विश्वकुटुम्बिन्नधुनाऽव माम् ।। 4

हे वेङ्कटनाथ ! मेरे स्वामी ! ज्ञान, आनन्द और दया के सागर ! भक्तवत्सल ! इस विश्व का कुटुम्ब के रूप में भरण-पोषण करनेवाले आप ही हैं । मेरी रक्षा कीजिये ।

सत्येशं सत्यसङ्कल्पं सत्यं सत्यव्रतं हरिम् ।
सत्यचर्यं सत्ययोनिं सत्यशीर्षमहं भजे ।। 5

जो सत्य जगत के नियामक (अथवा सत्यभामा के पति), 'वैकुण्ठ को भी छोड़ दूँगा, परन्तु अपने भक्तों को नहीं छोड़ूँगा, अपितु उनकी रक्षा करूँगा' — इस सत्यसङ्कल्पवाले, प्रणतजनों के पालन का व्रत लेकर उनके दुःखों का नाश करनेवाले, पाप-हरण और दुष्ट-संहार करने के कारण 'हरि' शब्द वाच्य, यथार्थज्ञान का अनुशीलन करनेवाले, परमात्म (तत्त्व) ज्ञान के कारणभूत वेदों की रक्षा करनेवाले, 'सत्यस्वरूप वेद मेरे रूपमें अस्तित्वशील हैं' — इसे प्रकट करनेवाले अर्थात् वेद-गम्य हैं, तथा सत्यलोक को सिर पर धारण करनेवाले या सत्यात्मक सहस्रशीर्ष विराट्रूप हैं उन श्रीवेङ्कटेश का मैं भजन करता हूं ।

विशेषार्थ —

इस श्लोक के कुछ अंशों को प्रमाणित किया जाता है ।

1. 'यच्चिकेत सत्यमित्तन्नमोघं', 'विश्वं सत्यं मघवाना' 'परिभूः स्वयंभूः याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः' – इत्यादि श्रुतियों के कथनानुसार जगत् सत्य है ।
2. 'मनोमयः प्राणशरीरः भारूपः सत्यसङ्कल्पः' (छान्दोग्योपनिषत्) इत्यादि वाक्यसे भगवान सत्यसङ्कल्प हैं।

3. 'पापानि पापिनश्चापि दुःखनिर्हरणादपि ।
पुण्याघ हरणाच्चापि हरिर्नारायणोऽभवत् ।।
इस तरह स्मृति कहती है कि भगवान अपने भक्तों के पाप-क्लेशों को दूर करने से 'हरि' कहलाते हैं ।

4. 'नित्यावेदाः समस्ताश्च शाश्वताः विष्णुबुद्धिगाः' — 'अनादिनिधना नित्या' — इत्यादि प्रमाण तथा वेद उद्घोष करते हैं कि भगवान अनादि और नित्य हैं ।

श्रवणात् सर्वपापघ्नं मननात् पुण्यवर्धनम् ।
स्वध्यानात् सिद्धिदं विष्णुं प्रेक्षणान्मोक्षदं भजे ।। 6

जिनके गुण-माहात्म्य श्रवण करनेमात्र से सभी पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं, मनन करने से पुण्यों (ज्ञान) में वृद्धि होती है, ध्यान करने से कई तरह की सिद्धियाँ मिलती हैं तथा दर्शन करने से (ब्रह्मसाक्षात्काररूप या अपरोक्षज्ञानरूप) मोक्ष अर्थात् सांसारिक कष्ट-क्लेशों से मुक्ति प्राप्त होती है, उन विष्णु स्वरूप भगवान श्रीनिवास का मैं भजन करता हूं ।

विशेषार्थ —

गुरु के उपदेशों को सुनना 'श्रवण' है । जो सुना है उसका मन से निरन्तर चिन्तन करने की विधि 'मनन' है । (श्रवण दर्शनादिजनित मनसवासनामयस्य वस्तुनः मनसाऽवलोकनं ध्यानम्) शास्त्र-श्रवण और भगवद्-दर्शन के द्वारा अनुभूत मन में बस गयी वस्तु को मन में धारण कर लेने को 'ध्यान' कहते हैं । कानों से जो सुना जाता और आँखों से जो देखा जाता है वह सदृश-वृत्तियों का प्रवाह मन में स्थिर बना रहे, तब वह 'बिम्ब' कहलाता है । उसे एकाग्र चित्त से हृदय में स्थापित करने को ध्यान कहते हैं । तत्त्वसाक्षात्कार के लिये यह आवश्यक है ।

2. जीव को जन्म-मरण आदि से घटित दुःखसर्वस्व के नाश होने के बाद जब यथार्थ चिर-सुख का अनुभव होता है वही मोक्ष है ।

श्रीवेङ्कटेशं लक्ष्मीशं अनिष्टघ्नमभीष्टदम् ।
चतुर्मुखेरतनयं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 7

जो वेङ्कटाचलाधीश हैं; लक्ष्मीपति हैं; अपने भक्तों के काम-क्रोधादि तथा संशयज्ञान-विपरीतज्ञानादि अनिष्टों का नाश करके तत्त्वज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि अभीष्टों को देते हैं; इस लोक और परलोक में शुभ-फल प्रदान करते हैं तथा चतुर्मुख ब्रह्मा एवं वायुदेव — इन दोनों पुत्रों को प्राप्त हुए हैं, उन भगवान श्रीनिवास का मैं सर्वदा भजन करता हूं ।

यदपाङ्गलवेनैव ब्रह्माद्याः स्वपदं ययुः ।
महाराजाधिराजानं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 8

जिनके लेशमात्र कृपाकटाक्ष से ब्रह्मादि देवतागण अपने-अपने उत्तम पद को प्राप्त हुए (ब्रह्मा सत्यलोक, इन्द्र देवलोक और रुद्र कैलास के अधिपति बने) हैं, ऐसे रुद्रादि महाराजाओं के सार्वभौम सम्राट श्रीनिवास का मैं सदा भजन करता हूं ।

अनन्तवेदसंवेद्यं निर्दोषं गुणसागरम् ।
अतीन्द्रियं नित्यमुक्तं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 9

जो अनन्त वेदों से जानने योग्य, पूरी तरह से दोष रहित, ज्ञान और आनन्द गुणों के सागर, नेत्रादि इन्द्रियों से अतीत और नित्य मुक्त हैं उन श्रीनिवास का मैं भजन करता हूं ।

विशेषार्थं —

1. 'वेदेह्येवैनं वेदयन्ति' – वेद ही परमात्मा का ज्ञान कराते हैं।
2. 'न तत्र चक्षुर्गच्छति, न वाग्गच्छति, नोमनः' – भगवान सभी इन्द्रियों से अगोचर हैं । — इस तरह श्रुतियां कहती हैं।

स्मरणात् सर्वपापघ्नं स्तवनादिष्टवर्षिणम् ।
दर्शनान्मुक्तिदं चेशं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 10

नाम-स्मरण करनेमात्र से समस्त पाप दूर करनेवाले, स्तुति करने से सभी इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले, दर्शन से (अर्थात् परोक्षज्ञान साधन द्वारा अपरोक्षज्ञान देकर) मोक्ष प्रदान करनेवाले, भक्तों के स्तोत्र-पाठ (निष्ठाज्ञान) से संतुष्ट होनेवाले तथा सर्वेश्वर आप श्रीनिवास का मैं सदा भजन करता हूं।

विशेषार्थ — 'धिया रमते' – इस व्युत्पत्ति से भक्तों में भगवान ज्ञान से रमण करनेवाले हैं। अर्थात् भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले हैं।
स्वामिपुष्करिणीस्नानं श्रीनिवासस्य दर्शनम् ।
सहस्रनामपठनं जन्मान्तर तपःफलम् ।। इस तरह पुराण वचन है।

अशेषशयनं शेषशयनं शेषशायिनम् ।
शेषाद्रीशमशेषं च श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 11

जो विश्व की सम्पूर्ण वस्तुओं में शयन (व्याप्त) करते हैं, सब के हृदय में स्थित हैं, महा प्रलयकाल में आप एकही बचकर वटपत्रशायी होने के कारण 'शेष' कहलाते हैं, शेषनाग पर शयन करते हैं, शेषाचल के स्वामी हैं तथा सब में स्वयं अत्मरूप में नित्य रमण करते हैं, मैं ऐसे श्रीनिवास को सदा भजता हूं।

भक्तानुग्राहकं विष्णुं सुशान्तं गरुडध्वजम् ।
प्रसन्नवक्त्रनयनं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 12

जो अपने भक्तों पर अनुग्रह करते हैं; सर्वव्यापी, (सु-श-अन्तं) साधुजनों को सुख देने के अन्तःकरणवाले या (सु-शान्तं) दुर्जनों के सुख को हरनेवाले हैं; गरुडारूढ हैं; प्रणतजनों के प्रति प्रसन्न मुख और नेत्रवाले हैं, मैं उन विष्णुरूप श्रीनिवास को भजता हूं।

भक्तभक्तिसुपाशेन बद्धसत्पादपङ्कजम् ।
सनकादिध्यानगम्यं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 13

जो अपने भक्तों की भक्तिरूपी सुकोमल रस्सी से बन्धे हुए उत्तम चरण कमलवाले हैं तथा सनक-सनन्दनादि मुनिजनों के द्वारा ध्येय हैं, उन श्रीनिवास का मैं सर्वदा भजन करता हूं ।

विशेषार्थं —

संसार में रस्सी-बन्धन दुःखदायक है । प्रकृत पाश के लिए 'सु' विशेषण द्वारा भक्तिरूप पाश से श्रीहरि बँधे जाते हैं। वह उनको सुखकर है । अतः वे प्रसन्न होकर भक्तजनों के भक्ति-पाश में बँधते हैं ।

गङ्गादितीर्थजनकपादपद्मं सुतारकम् ।
शङ्खचक्राभयवरं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 14

जिनके चरण कमल गङ्गादि पुण्यतीर्थों के लिये उद्गम स्थान हैं, जो अपने भक्तों को इस संसार समुद्र से उद्धार कर देते हैं, जो अपने चारों हाथों में क्रमशः शङ्ख-चक्र-अभयमुद्रा-वरमुद्रा धारण किये हुये हैं, उन श्रीनिवास को मैं सदा भजता हूं ।

सुवर्णमुखितीरस्थं सुवर्णेड्यं सुवर्णदम् ।
सुवर्णाभं सुवर्णाङ्गं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 15

जो सुवर्णमुखी नदी के तट पर स्थित हैं, शोभन वर्णों से युक्त वेदों से स्तुत्य हैं, अपने भक्तों को धन-धान्यादि सम्पत्रूपी सुवर्ण (वेदज्ञान) देते हैं, सुवर्ण के समान तेजवाले (वेदों से खूब उद्भासित) हैं, जिनके सिरोभाग स्वर्णमय किरीट-कुण्डलादि आभूषणों से अलंकृत (या लक्ष्मी से युक्त शरीर) हैं, उन सर्वाङ्ग सुन्दर श्रीनिवास का मैं सदैव भजन करता हूं ।

विशेषार्थं —

सुवर्णाः = वेद, आ = खूब, 'भाः (भादीप्तौ) प्रकाशिताः व्यक्ताः येन' इस व्युत्पत्ति के अनुसार श्रीनिवास वेदव्यास के रूपमें ऋक् आदि वेदों को अभिव्यक्त करनेवाले हैं।

श्रीवत्सवक्षसं श्रीशं श्रीलोलं श्रीकरग्रहम् ।
श्रीमन्तं श्रीनिधिं श्रीड्यं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 16

जिन के वक्षःस्थल पर 'श्रीवत्स' का चिह्न शोभित है, जो लक्ष्मी के वल्लभ एवं उनके साथ हावभाव विलास में अत्यंत अनुरक्त हैं, लक्ष्मी को अपने कर-कमलों से ग्रहण किया हुआ है, ऋग्वेदादि सर्व विद्याओं से पूर्ण हैं, समस्त ऐश्वर्यं से सम्पन्न हैं, श्री-भू-दुर्गा के रूप में विलसित रमादेवी द्वारा स्तुत हैं, ऐसे श्रीनिवास का मैं सदा भजन करता हूं।

विशेषार्थं —

1. 'श्रियः शं सुखं यस्मात् सः' = श्रीशः इस व्युत्पत्ति के अनुसार लक्ष्मी को सुख देनेवाले हैं।
2. 'श्रियः=प्रकाश, निधीयन्ते अस्मिन्' – इस व्युत्पत्ति के अनुसार श्रीनिधिः = प्रकाशों का आश्रय।

वैकुण्ठवासं वैकुण्ठत्यागं वैकुण्ठसोदरम् ।
वैकुण्ठदं विकुण्ठाजं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 17

जो वैकुण्ठ में रहनेवाले, भक्तों के अनुग्रह हेतु वैकुण्ठ छोड़कर शेषगिरि पर विराजमान, 'वैकुण्ठ' नाम के भाईवाले, सदा वैकुण्ठ-सुख देनेवाले तथा 'विकुण्ठ' नाम की माता के गर्भ से प्रादुर्भूत हैं, मैं उन श्रीनिवास को निरन्तर भजता हूं।

विशेषार्थ —

> मायावी परमानन्दं त्यक्त्वा वैकुण्ठमुत्तमम् ।
> स्वामिपुष्करिणी तीरे रमया सह मोदते ।।

इस पुराण के कथनानुसार भगवान श्रीनिवास (वेङ्कटेश) वैकुण्ठ छोड़कर स्वामिपुष्करिणी के तट पर लक्ष्मी के साथ विहार करते हैं।

सम्बन्ध– अब भगवान श्रीनिवास के दश-अवतारों की स्तुति करते हैं।

वेदोद्धारं मत्स्यरूपं स्वच्छाकारं यदृच्छया ।
सत्यव्रतोद्धरं सत्यं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 18

अपनी ही इच्छा से स्वच्छ और सुन्दर मत्स्यरूप धारण कर हयग्रीव नामक असुर द्वारा अपहृत वेदों का उद्धार करके उन्हें फिर से चतुर्मुख ब्रह्मा को सौंप देनेवाले तथा जलप्रलय में सत्यव्रत नामक राजर्षि का अपने संकल्प से उद्धार करके 'सत्य' नामसे प्रसिद्ध होनेवाले श्रीनिवास को मैं सदा भजता हूं।

विशेषार्थ —

१. 'सत्य' शब्द के अनेक अर्थ होते हैं।

1. 'सद्भावं यापयेत् यस्मात् सत्यं तत्तेन कथ्यते' इस प्रमाण के अनुसार भगवान विश्व की रचना करनेवाले हैं।
2. 'सत्यं यापयति' = सब प्राणियों के जीवन एवं विनाश उत्पन्न करनेवाले हैं।
3. उक्तं सदिति धत्वार्थो गतिश्चातीहि सत्यता। सत्येन प्राणत्वं' इस प्रमाण से 'सत्' – समस्त प्राणियों को गति देनेवाले हैं। 'प्राणं देवा अनुप्राणन्ति मनुष्याः पशवश्चये' इस श्रुति वचन के अनुसार श्रीहरि सब को प्राणशक्ति देते हैं।
4. 'सत्यं परं धीमहि' इस जगह पर भागवत तात्पर्य ग्रंथ में

'सत्यं निर्दुःख निरतिशयानन्दानुभवस्वरूपम्' व्याख्या है।

5. ऐतिरेय भाष्य में 'सच्छब्दमुत्तमं ब्रूयात्' – 'तनुविस्तारे' – 'याप्रापणें' इस धातु के अनुसार —
स एष भगवान् विष्णुः सत्यमित्यभिधीयते ।
सर्वोत्तमत्त्वात् पूर्णत्वात् सर्वज्ञत्वात् तथैव च ।।
वह भगवान सत्यः=सर्वोत्तम, सर्वगुण सम्पन्न तथा सर्वज्ञ हैं।

6. छान्दोग्य भाष्य में —
सदित्यमरधर्माणः मुक्ताः श्रीरपि चेरिता ।
इत्युक्ता मर्त्यधर्माणः तेषां नियमनाद्धरिः ।।
'सत्यमित्युच्यते सद्भिः' मुक्त और बद्ध जीवों का नियामक होने के कारण भगवान 'सत्य' कहलाते हैं।

7. 'सादयतीति सत्' (वे) नाश (विनाश) करनेवाले हैं। 'ईरयतीति' = प्रेरणा करनेवाले हैं। 'सच्छतत्यंच सत्यं' 'तस्योपनिषत् सत्यस्य सत्यं' – 'एष एव एतत् सादयति यामयतीति' इस तरह श्रुति प्रमाण है।

२. 1. प्रलय काल में जब भूर्भुव आदि लोक समुद्र में डूब गये और चतुर्मुख ब्रह्मा के मुख से जो चार वेद निकले, उन्हें राजा बलि के निकट रहनेवाला हयग्रीव नामक एक असुर ने चुरा लिया और समुद्र में छिप गया। श्रीहरि ने मत्स्यरूप धारण कर उसका संहार किया और उन वेदों को लाकर ब्रह्मा को फिर से दे दिया।

2. ततोहरिर्जगृहे मत्स्यरूपं
मन्वन्तरे चाक्षुषेनाशकाले ।
नाव्यां समारोप्य महीं चरन्तं
पातुं मनुं वैवस्वतं लयोदे ।।

गारुड पुराण अ. 15, श्लो 16

मत्स्यो युगान्तसमये मनुनोपलब्धः
क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतः ।
विस्रंसितानुरुभये सलिले मुखास्म
आदाय तत्र विजहार ह वेदमार्गान् ।।

सत्यव्रत नामक राजा समुद्र के जल में तप करते थे। उस समय स्वर्णकांति से चमकनेवाली एक छोटी-सी मछली उनकी हथेली में आ गिर पड़ी और उसने राजा से अपनी रक्षा करने की विनती की। राजा दया से द्रवीभूत होकर उस मछली को अपने कमण्डलु में डालकर अपने आश्रम ले आये। रात-ही-रात वह मछली कमण्डलु के परिमाण में बडी हो गयी। तब राजा ने उसे एक घडे में रखा। मछली घडे के परिमाण में बढ़ गयी। फिर उसे कुएँ में डाल दिया। इस तरह राजा उसे जहाँ-जहाँ छोड़ते गये, वह उसी परिमाण में बढ़ती जाती थी। अंत में राजा ने उसे समुद्र में डाल दिया तो वह समुद्र के परिमाण में व्याप्त हो गयी। राजा ने भयभीत होकर पूछा — "तुम कौन हो ? मत्स्य ने कहा - "राजन् ! मैं साक्षात् नारायण हूँ, चाक्षुष मन्वन्तर में मैं तेरा उद्धार करूँगा" तदनन्तर भगवान वासुदेव ने प्रलय के समय दस लाख योजन विस्तृत (बडे) अकार में सुवर्णमय मत्स्यरूप धारण किया। राजा के प्रार्थना करने पर मत्स्यरूपधारी भगवान ने कर्म-ज्ञान-भक्ति योग का उपदेश देकर उनका उद्धार किया। ये ही राजा सत्यव्रत बाद में 'वैवस्वत मनु' के नाम से विख्यात हुए। (भागवत स्कंद 8, अ. 24)

महागाधजलाधारं कच्छपं मन्दरोद्धरम् ।
सुन्दराङ्गं च गोविन्दं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 19

अमृत-प्राप्ति के लिए समुद्र-मंथन के समय अति अगाध समुद्र जल के आधार बनने हेतु कच्छपरूप धरकर पीठ पर मन्दराचल को धारण किये तिर्यग्-जन्तुरूप में भी अति सुन्दर दिव्य शरीरवाले कूर्मावतारी गोविन्द श्रीनिवास प्रभु का मैं सदा भजन करता हूं।

विशेषार्थं —

1. 'आगाध-जलाधारः विष्णुकूर्मायतेनमः'
   – इस तरह पीठपूजा प्रकरण में आता है।

2. अथाति भारादविशत्सुकाञ्चनो गिरिः स पातालमथ त्वमेव।
   तं कच्छपात्मात्वभरः स्वपृष्ठे ह्यनन्यधार्यं पुरुलीलयैव ॥
   महाभारत तात्पर्य निर्णय अ. 10, श्लो. 11

स्वर्णमय मन्दराचल जब पाताल लोक में डूबने लगा तब भगवान श्रीहरि ने कच्छपरूप में अपनी पीठ पर धारण किया और उसे ऊपर अनायास ले आये। इस तरह देव-दानव क्षीर-सागर का मंथन करके अमृत प्राप्त कर सके।

'अमरेन्द्रवैरि भुजदण्डमण्डल प्रतिकर्षपुष्कर पतद्धरोद्धतिः।
(म. वि. स. ८, श्लो. १५)

शरणागतों को मोक्ष प्रदानकर उनकी रक्षा करनेवाले नारायण ने समुद्र-मंथन के समय डूबते हुए मन्दरपर्वत को कूर्मरूप धारणकर ऊपर उठाया।

3. ततो हरिर्जगृहे कूर्मरूपं
   सुरासुराणामुदधिं विमथ्नतां।
   पृष्ठे धर्तुं मन्दरं पर्वतं च
   तथैवाण्डं धर्तुमीशो महात्माः ॥
   गारुड अ· 15, श्लो. 17

4. 'दृक् धेनु दीप्ति स्वर्गेषु गो शब्दः परिकीर्तितः' – इस स्मृति के अनुसार 'गोविन्द' शब्द का कई अर्थ होते हैं। 'विद्ऌ = लाभे' प्रकाश से युक्त हैं। 'गोविन्द' समुद्र के जल में प्रवेश करनेवाले तथा धृतराष्ट्र को विश्वरूप-दर्शन के समय नेत्र प्रदान करनेवाले।

5. पृथ्वी, बाण, धेनु, स्वर्ण और वेदों से युक्त हैं अथवा समस्त वेदों से प्रतिपाद्य हैं।

वरं श्वेतवराहाख्यं संहारं धरणीधरम् ।
स्वदंष्ट्राभ्यां धरोद्धारं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 20

जो श्रेष्ठ अंगों से युक्त श्वेत वराह नाम से विख्यात हैं तथा पृथ्वी को पाताल में ले जानेवाले हिरण्याक्ष का जिन्होंने वध किया और अपनी तीखी दाढों में पृथ्वी को दबाकर जल से बाहर निकल आये, उन पृथ्वी के उद्धारक श्रीनिवास का मैं सदैव भजन करता हूं।

विशेषार्थं —

'विदधे वराहवपुषाऽमुनोर्मिमत्
श्रुति सिन्धु कच्छपतयाऽऽप्त रक्षीणा ।'

म. वि. स. 8, श्लो. 15

ततो हरिः प्रादुरभून्महात्मा
नृसिंहनामा भगवान् स्तम्भतश्च ।
दैत्यं हिरण्यकशिपुं स्वोरुदेशे
संस्थाप्य तं करजैर्दारयति स्म कोपात् ।।

गा. पु. अ. 15, श्लो. 20

देवताओं के विरोधी हिरण्याक्ष नामक असुर ने अपने हजारों हाथों से एक वार पृथ्वी को खींचा तो पृथ्वी जल में डूब गयी। तब भगवान नारायण ने रसातल से पृथ्वी के उद्धार के निमित्त शूकर (वराह) रूप धारणकर हिरण्याक्ष का वध किया।

प्रह्लादाह्लादकं लक्ष्मीनृसिंहं भक्तवत्सलम् ।
दैत्यमत्तेभदमनं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 21

जो परम भागवत प्रह्लाद को आनन्द देनेवाले हैं और जिन्होंने मदमत्त हाथी के समान महादैत्य (हिरण्यकशिपु) का संहार किया, उन भक्तवत्सल लक्ष्मीनृसिंहरूप श्रीनिवास का मैं सदा भजन करता हूं।

विशेषार्थं —

नरसिंह एष विददार दारुणं
प्रतिघोदये नखर चक्रे तेजसा ।
स्वरिपुं क्षणेंन सरसः स्फुरत्तनुं
वृथु सत्त्व मिष्टजन भीति भञ्जनः ।।

म. वि. स. 8, श्लो. 16

अनन्त बलशाली भगवान श्रीहरि ने अपने भक्तों के भय को दूर करने के लिए नरसिंहरूप में अवतार लेकर महाबली हिरण्यकशिपु को, जिसने अपने पुत्र परम भागवत प्रह्लाद को कई प्रकार के कष्ट-क्लेशों से पीडित किया, अपने नखों द्वारा बडी उग्रता से चीर कर मार डाला । जब अपने भक्त गजेन्द्र एक क्रूर मगर के मुंह में फँसकर दुःखी था, तब उसकी रक्षा करने दौड़ आये और नक्र को सरोवर से बाहर खींचकर सुदर्शनचक्र से उसका सिर धड़ से अलगकर समाप्त कर दिया ।

2. (उपर्युक्त विवरण के अनुसार) अपने पिता द्वारा दिये गये विष भक्षणादि कष्टों के क्रम की समाप्ति पर प्रह्लाद न तो खुश हुआ, न ही उसे निष्कण्टक राज्य की प्राप्ति से संतोष हुआ, प्रह्लाद को अपने पिता के मरने पर क्रोध भी नहीं आया, तो फिर किस बात पर प्रसन्न हुआ ? उसके लिए यही कहा गया कि भगवान का दर्शन और अनुग्रह प्राप्त होना ही उसका परम भाग्य है । अनादि काल से चल रहा जन्म-मरण रूप आवागमन का चक्कर मिट गया । इसीसे प्रह्लाद को संतोष हुआ । धर्म-शास्त्र को भली-भाँति जाननेवाले साधुजन भी जब सर्प, वृश्चिक आदि हिंस्र जन्तुओं का वध करने पर प्रसन्न होते है, तो भला प्रह्लाद लोक कण्टकरूप अपने पिता का संहार होने से क्यों दुःखी होता, यह न सिर्फ उसके, वल्कि समस्त भूमण्डल के आनन्द का विषय था ।

प्रह्लाद मेऽति प्रियोऽसि तवाद्य सुभद्रभद्रं
भद्रकामं वरं च सुवृणीष्व सुशीघ्रमेव ।
विषयेषु रतिर्नित्यं यथा स स्यान्महाप्रभो ।
तथैव मे वरं देहि ।।

मदाज्ञया त्वं राज्यं च प्रकुरुष्व महाबलः ।
मदर्पणाच्च संसारलेपो नैव भवेत्तव ।
प्रह्लादो हरिमुद्दिश्य राज्यं सर्वमपालयत् ।

गारुड पुराण अ. 40, श्लो 103-107

नरसिंहरूपधारी भगवान ने कहा – "प्रह्लाद ! तू मेरा अत्यंत प्रिय है, तेरा परम मंगल हो, वांच्छित वर मांग।' प्रह्लाद बोले — 'प्रभो ! मुझे ऐसा वर दीजिये, जिससे मैं विषयासक्त प्रवृत्तियों से सर्वथा दूर हो जाऊँ।' भगवान 'तथास्तु' कहकर बोले– 'मेरे आदेश के अनुसार राज्य कर, मुझे कभी न भूल। तब इस संसार की आसक्ति मिट जायेगी।' प्रह्लाद ने भगवान की आज्ञा का पालन किया।

वामनं वामनं पूर्णकामं भामनमाणवम् ।
मायिनं बलिसंमोहं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 22

जो दैत्यों के दम्भ और अहंकार का नाश करने अथवा भक्तों को आकृष्ट करनेवाले तेज और पौरुष से युक्त हैं तथा आप्तकाम हैं और जिन्होंने सुन्दर बाल-ब्रह्मचारी का रूप धारणकर बलि को मोहित किया, मैं उन वामनरूप श्रीनिवास का भजन करता हूं।

विशेषार्थ —

1. अपि वामनो ललितबाल्यवानयं
प्रतिभाबलेन कृतदैत्य कौतुकः ।
उपधेरधः कृत बलीन्द्र शात्रवः
स्वजनाय केवलमदात्परं पदम् ।। (म. वि. स. 8, श्लो.17)

ततो हरिर्भगवान् वामनोऽभू
ददित्यायां कश्यपाद्देवदेवः ।
इन्द्रायेमं दातुकामः स्वर्लोकं
तदर्थं वै याचयितुं बलिं च ।। (गारुड अ. 15, श्लो. 21

कश्यप से अदिति के गर्भ में नारायण के अंश से उत्पन्न वामन ने दैत्यराज बलि को छलने-हेतु तीन पग भूमि को दान माँगा। दानवेन्द्र बलि ने देने का वचन दिया। ज्योंही बलि के हाथ से सङ्कल्प-जल गिरा, त्योंही वामन अवामन (विराट्) बन गये। अपने सर्वदेवमय स्वरूप से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो गये। इस तरह पृथिवी समेत सब कुछ अपने वश में कर लिया और बलि को पाताल भेज दिया। त्रिविक्रम रूपधारी भगवान ने अपने भक्त देवराज इन्द्र को तीनों लोक सौंप दिये।

2. भगवान इस अवतार में वामन होते हुए भी अत्यंत सुन्दर बालक के रूप में प्रशंसित हैं।

वामन वामन भामन वन्दे।
वामन वामन माणववेष ॥ — द्वादश स्तोत्र में है।

3. यहाँ बलि को मोह उत्पन्न होने का अर्थ है कि जो दैत्य वंश में जन्म लेकर दैत्यों का सम्राट है, उसके मन में मोह उत्पन्न करके भगवान का इस प्रकार छल करना ठीक है? अर्थात् अपना भक्त बनाने के बाद छलना उचित है क्या? यह शंका होती है। परन्तु, वामनमूर्ति के दर्शन के उपरांत दैत्येन्द्र बलि के मन में कभी यह विचार न आता कि "तीन पग भूमि दान करने से अपने या अन्य दैत्यों का त्रिलोकी राज्य और भोग-ऐश्वर्य छूट जायेगा" प्रत्युत इस शंका का उत्तर यह है कि वह अपना स्वार्थ भूल ही गया। वह स्थिरमति एवं महाभागवत होने के कारण अपने राज्य-विनाश के प्रति कभी कोई चिन्ता नहीं करता। इस तरह की बलि में भावना बना देने के कारण ही श्रीहरि को 'मायिनं' अर्थात् अपनी इच्छा की पूर्ति करनेवाले यह विशेषण जोडा गया है। तात्पर्य यह है कि वामन ने अपने दर्शन द्वारा बलि की मोहवृत्ति को अपने अनुकूल बदल दिया। यही है मोह उत्पन्न करने का अर्थ।

चन्द्राननं कुन्ददन्तं कुराजघ्नं कुठारिणम् ।
सुकुमारं भृगुऋषेः श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 23

चन्द्रमा के समान जिनका शोभामय मुखमण्डल हैं, जिनकी दन्त-पंक्ति कुन्दकली-सदृश सुन्दर है तथा कुत्सित और दुष्ट क्षत्रियों को इक्कीस बार पृथ्वी पर से पूरी तरह समाप्त करके जो कुठार धारण किये हुए हैं, उन भृग वंश में आविर्भूत सुकुमार कुमार परशुरामरूप श्रीनिवास का सदा मैं भजन करता हूं।

विशेषार्थ —

कथयंत्यमु परशुभासमान गो
हतमर्त्यदेव तमसं मुहुर्मुहुः ।
जगतां हितं हरिमिवापरं हरिं
गुरुशक्ति तापस वरान्वयोद्भवम् ।।

व. नि. स. 8, श्लो. 18

ततो हरिर्जमदग्नेः सुतोऽभू
ल्लोके स वै परशुरामेति संज्ञकः ।
ब्रह्मद्रुहाणां क्षत्रियाणां च वीन्द्र
भूमौ निःक्षत्रं कर्तुमीशो महात्मा ।।

गारुड अ· 15, श्लो. 22

श्रीहरि एक बार अधिक समर्थ भृगुवंश में जन्म लेकर परशुराम नाम से बडे ही पराक्रमी हुए। उन्होंने इक्कीस बार बलगर्वित दुष्ट क्षत्रियों पर अपना कुठार चलाकर संसार का बडा हित किया। दुष्ट-संहार एवं साधु-संरक्षण ही उनका मुख्य लक्ष्य था।

श्रीरामं दशदिग्व्याप्तं दशेन्द्रियनियामकम् ।
दशास्यघ्नं दाशरथिं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 24

जो असीम सुख के मूर्तिमान स्वरूप हैं, दशों दिशाओं में

व्याप्त हैं, दश-इन्द्रियों के देवताओं के शासक हैं, जिन्होंने दशमुख रावण का वध किया, उन दशरथ नन्दन श्रीरामरूप श्रीनिवास को मैं निरन्तर भजता हूं।

विशेषार्थ —

राम शव्द के अनेक अर्थ होते हैं।

1. 'रमायाः पतिरयं रामः' – रमा के पति हैं, अतः राम।

2. रमन्ते योगिनोऽनन्ते सदावन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते ।।

3. 'रमते इति रः, न विद्यते मा यस्य सः अमः, रश्चासौ, अमश्च रामः' = अपरिमित एवं यथेष्ट क्रीडा करनेवाला राम।
'रमयतीति रामः' – लक्ष्मी के साथ क्रीडा करनेवाला।

4. आनन्दस्वरूप, सर्वगुण सम्पन्न एवं सज्जन समुदाय को आनन्ददायक होनेके कारण राम है।
'आनन्दरूपो निष्परिमाण एषः लोकश्चै तस्माद्रमते तेन रामः' इस प्रकार शाण्डिल्यशाखा का वचन है। सदा आनन्दस्वरूप एवं चिदात्मरूप उन्हीं में योगीजन सदैव रमण करते हैं। अतः 'राम' कहलाते हैं। राम पद के द्वारा साक्षात् परब्रह्म है।

5. आठ दिशाओं के साथ ऊर्ध्व-अधो दिशाएँ मिलकर दस दिशाएँ हैं।

6. वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ — ये पांच कर्मेन्द्रियाँ हैं।
श्रोत-त्वक्-चक्षुः-रसना-घ्राण — ये शंच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं।
ये दोनों मिलकर दस इन्द्रियाँ हैं।

7. ततो हरीरघुवंशेऽवतीर्णः कौसल्यायां दशरथात्पूर्ववंशे।
समुद्रादीन्निग्रहं कर्तुमीशो हतुं भूम्यां रावणादींश्च वीन्द्र ।।
गारुड पुराण अ. 15, श्लो. 24

सेतु-बन्धन आदि करके रावण आदि राक्षसों का वध करने के लिये श्रीहरि सूर्यवंश में राजा दशरथ और कौसल्या के पुत्ररूप में प्रकट हुए।

गोवर्धनोद्धरं बालं वासुदेवं यदूत्तमम् ।
देवकीतनयं कृष्णं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 25

गोवर्धनगिरि को अपनी अंगुली पर उठानेवाले, बालक, वसुदेव के पुत्र, यदुवंश में श्रेष्ठ, देवकी के नन्दन, आनन्दस्वरूप श्रीकृष्णरूपी आप श्रीनिवास का मैं सदा भजन करता हूं ।

विशेषार्थं —

1. यतः कर्षसि देवेश नियम्य सकलं जगत् ।
अतोवदन्ति मुनयः कृष्णं त्वां ब्रह्मवादिनः ।। (महाकौर्म्यं)
भगवान सर्व जगत का नियमन करते हुए सबको अपने आकर्षण से बश में कर लेते हैं । इस कारण ब्रह्मज्ञानी मुनिजन श्रीहरि को 'कृष्ण' कहते हैं । श्रीकृष्ण का स्मरण करने से कलि-मल छूट जाता है ।

2. कृष्णरूप होने से तथा पाप के मूल को जलाने के लिए अग्नि सदृश होने के कारण 'कृष्ण' कहलाते हैं ।

3. 'वसुदेवस्य अपत्यं पुमान् वासुदेवः' – वसुदेव के पुत्र होने से 'वासुदेव' हैं ।

4. वानात्सूतेः देवनाद्वासुदेवः वासाद्द्युतेः छादनात्क्रीडया च ।
बलादसुत्वाद्दातृतो वर्तनाच्च तं वासुदेवं प्रवदन्तिवेदाः ।।
अर्थात् वा = वानात् = ज्ञानाधिक्य से, सु = सूतेः = जगत् की रचना करना, दे = देवनात् = क्रीडादि गुण संपन्नता के कारण वासुदेव, अथवा वा = गतिगन्दवयोः, षूङ = प्राणप्रसवे, दिव् = क्रीडाविजिगीषा व्यवहार-द्युति-स्तुति-मोद-मद-स्वप्न-कान्ति-गतिषु' इन तीन धातुओं से उत्पन्न शब्द हैं 'वासुदेव' ।

वासात् = सर्वत्र वास करने से तथा सबके निवास का आश्रय होने से (वस = निवासे) द्युतेः = प्रकाशस्वरूप होने से वासुदेव हैं ।

छादनात्=सब में अविद्या के रूपसे आच्छादित (व्याप्त) होने से (वस =अच्छादने) तथा क्रीडित होने से वासुदेव हैं।

व=वलात्=बल होने से, (असु=असुत्वात्) प्राणरूप से होने से, देव:=भक्तों के अभीष्टप्रद हैं, इसलिए वासुदेव हैं।

दातृत: = भक्तों को अभीष्ट प्रदान करने से, वर्तनाच्छ = सर्वत्र विद्यमान होने से, (वसतीति = वासु:) वायुदेव के देव: =स्वामी होने से वासुदेव हैं।

'वार्थं असुदेव: यस्मात्' = सबको ज्ञान का उपदेश देने के लिये असु (प्राण) वायुदेव को उत्पन्न करनेवाले 'वासुदेव' हैं।

'वृतु = वर्तने' व = सर्वत्र स्थित हैं। असु = प्राणरूप हैं। देव: = क्रीडादिस्वरूप वासुदेव हैं।

5. ततो हरि: कृष्णरूपो बभूव
देवक्यां वै वासुदेवाच्च विष्णु:।
कंसादीनां नितरां हन्तुकामो
सम्यक् कर्तुं पाण्डवाणां खगेन्द्र ।।

गारुड पुराण अ. 15, श्लो. 26

कंसादि दुष्टों का संहार करने और पाण्डओं का उद्धार करने के लिए श्रीहरि ने वसुदेव और देवकी के यहां कृष्ण के रूप में अवतार लिया।

नन्दनन्दनमानन्दं इन्द्रनीलं निरञ्जनम्।
श्रीयशोदायशोदं च श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 26

जो नन्दगोप के नन्दन, आनन्दस्वरूप (या भक्तों को आनन्द देनेवाले) हैं, इन्द्रनील के समान जिनकी देह कांति है, जो निरंजन, निर्दोष, सुसंपन्ना यशोदादेवी को सुयश देनेवाले हैं, उन श्रीकृष्णावतार श्रीनिवास का मैं भजन करता हूं।

विशेषार्थं —

करुणाकरः स वसदेवमोददो
भगवान् पुरा हिमकरान्वयेऽ भवत् ।
जितवान् दिशो दशरथोऽयग्र्यसम्पदो
जनको वभूव भुवि यस्य वैरिहा ।। म. वि. स. 8, श्लो. 19

परम दयामय श्रीनारायण ने वसुओं तथा देवताओं को आनन्द प्रदान करने के निमित्त त्रेतायुग में सूर्यवंश में राजा दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र के रूप में अवतीर्ण होकर अनीतिपरायण रावण आदि राक्षसों का संहार करके साधु-पुरुषों का उद्धार किया। द्वापरयुग में चन्द्रवंश में वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण के रूप में अवतार लेकर दुष्ट दुर्योधन जैसे पापाचारियों का वध करके पाण्डओं पर कृपा की।

गौवृन्दावनगं वृन्दावनगं गोकुलाधिपम् ।
उरुगायं जगन्मोहं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 27

जो गौओं के समूह की रक्षा में दीक्षा-रत हैं, बृन्दावन विहारी हैं, गोकुल के स्वामी हैं, वंशी बजाते हुए विश्व को विमोहित करनेवाले हैं, ऐसे जगनमोहन श्रीकृष्णरूप श्रीनिवास को मैं सदा भजता हूं।

पारिजातहरं पापहरं गोपीमनोहरम् ।
गोपीवस्त्रहरं गोपं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 28

जो सत्यभाम की इच्छा पूरी करने के लिए पारिजात को देवलोक से अपहरणकर धरती पर ले आये हैं, भक्तजनों के पापों को हरनेवाले हैं, गोपियों के मन को हरनेवाले हैं, यमुना के तट पर व्रजसुन्दरियों के वस्त्रों का हरण करनेवाले हैं, तथा गौओं की रक्षा करनेवाले गोपवेषधारी हैं, ऐसे श्रीकृष्णरूपी श्रीनिवास का मैं सदा भजन करता हूं।

कंसान्तकं शंसनीयं संशान्तं संसृतिच्छिदम् ।
संशयच्छेदिसंवेद्यं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 29

कंस को मारनेवाले, ब्रह्मादि श्रेष्ठ देवताओं द्वारा स्तुति किये जानेवाले, सुख-शांति के भण्डार (अथवा अपने भक्तों को अपने-अपने कर्मानुसार सुख-भोग देनेवाले), प्रणतजनों को जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त कर मोक्ष प्रदान करनेवाले तथा भक्तों के संशय-विपरीत ज्ञान आदि का नाश कर तत्त्व ज्ञान देनेवाले श्रीकृष्णरूपी आप भगवान श्रीनिवास का मैं निरन्तर भजन करता हूं।

कृष्णापतिं कृष्णगुरुं कृष्णामित्रमभीष्टदम् ।
कृष्णात्मकं कृष्णसखं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 30

सत्यभामा के पति, भीम-अर्जुन के गुरु, द्रौपदी के मित्र, भक्तों को अभीष्ट-फल देनेवाले, वसिष्ठवंशी वेदव्यास के अवतारस्वरूप, अर्जुन का सखा तथा यदुकुलतिलक श्रीकृष्णरूप आप श्रीनिवास का सदा मैं भजन करता हूं।

विशेषार्थ —

1. 'सत्या भीम पार्थौ कृष्णेत्युक्ते हि भारते।'
   — महाभारत में यह उल्लेख मिलता है कि सत्यभामा, भीम और अर्जुन — ये तीनों कृष्ण नामधारी हैं।

2. 'कृष्णाय कृष्णारमणप्रियाय' — यह भी कहा जाता है कि द्रौपदी का भी कृष्ण नाम है।

कृष्णाऽहिमर्दनं गोपैः कृष्णोपवनलोलुपम् ।
कृष्णातातं महोत्कृष्टं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 31

कालियनाग नामक कृष्णसर्प (कालेनाग) का मर्दन करनेवाले, गोप-गोपिकों के साथ यमुना-तट पर श्यामवन में क्रीडा करने में अनुरक्त, कृष्णवेणी नदी के जनक तथा रमा, ब्रह्मादि देवताओं में अत्युत्तम श्रीकृष्णरूपी आप श्रीनिवास का मैं सदा भजन करता हूं ।

बुद्धं सुबोधं दुर्बोधं बोधात्मानं बुधप्रियम् ।
विबुधेशं बुधैर्बोध्यं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 32

जो अपने भक्तों को तत्त्वज्ञान का उपदेश करनेवाले हैं, दुराचारियों के लिए सर्वथा दुर्बोध्य (न जान सकने योग्य) हैं, ज्ञानात्मक (बोधस्वरूप) हैं, बुद्धिमानों के लिये प्रिय हैं, देवताओं के स्वामी हैं, विद्वजनों द्वारा जानने योग्य हैं, उन बुद्धावतार भगवान श्रीनिवास का मैं सदा भजन करता हूं ।

विशेषार्थं —

1. ततःकलौ सम्प्रवृत्ते हरिन्तु
सम्मोहायाऽप्यासुराणां खगेन्द्र ।
नाम्ना बुद्धो कीकटेषु प्रजातः
वेदोऽप्रमाणंचेति दाढर्यं च कर्तुम् ।। गा. पु. 15—27
असुरों को मोहित करने तथा वेद की प्रमाणिकता को सुदृढ स्थापित करने के लिए श्रीहरि ने कीटकदेश(लुम्बिनी-कपिलवस्तु) बिहार में बुद्ध के रूप में अवतार लिया ।

2. चतुर्विधाः भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तः एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ।।
जैसे ज्ञानी को मेरे प्रति परम प्रीति है, उसी तरह मुझे भी उसके प्रति प्रेम है । गीता अ. 7, श्लो 16-17 में कहा गया है ।

कल्किनं तुरगारूढं कलिकल्मषनाशनम् ।
कल्याणदं कलिघ्नं च श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ।। 33

घुड़ संवार, अपने भक्तों के कलिमल का नाशक, समस्त मङ्गलों के प्रदाता और अति दुष्ट कलि को नष्ट करनेवालें आप कल्किस्वरूप भगवान श्रीनिवास को मैं सदा भजता हूं ।

विशेपार्थं —

कलेस्तु काल्कारत एव कल्की ज्ञानं कलं कं सुखमेन तद्वान् ।
कल्कीति वा तेन समस्तदस्युविनाशनं तेन दिनाद्यधायि ।।
अधर्मवृत्तं विमुखं हरेश्च निहत्य निश्शेषजनं तुरङ्गी ।
संस्थापयामास सधर्मसेतुं ज्ञानं च भक्ति च निजप्रजासु ।।

महाभारत तात्पर्य निर्णय अ. 32, श्लो. 167, 168

ततो हरिः कल्कि संज्ञश्च वीन्द्र
उत्पत्स्यते युगयोर्मध्यसन्धौ ।
दस्युप्रायाणां भूमिपातां निहन्तुं
नाम्नो द्विजस्य विष्णुयशसो गृहे च ।।

गारुड पु. अ. 15, श्लो. 28

(कल = हिंसायां, कल = वन्धने) काल्कारः = बन्धन अथवा हिंसा, काल्कार एव काल्कं, कल्कवान् कल्की = कलि नामक असुर को विनष्ट करने से कल्की कहलाते हैं । (कल=ज्ञाने) कलं=ज्ञान, कं=सुख, ज्ञान और सुख से युक्त हैं। (तनुविस्तारे) तः=व्यापक हैं, व्याप्त कल्किरूप भगवान द्वारा समस्त दस्युओं का नाश किया गया है ।

अधर्मासक्त एवं भगवद्-विरोधी कलि का परिवार सहित वध करके अश्वारूढ कल्किमूर्ति भगवान श्रीहरि अपने भक्तों में ज्ञान-भक्ति-धर्म को स्थापित करते हैं ।

हरिं हंसं कृष्णं नरहरिमनन्तं मधुरिपुं
हृषीकेशं यज्ञं कपिलमृषभं वाजिवदनम् ।
नरं व्यासं नारायणमनघमात्मानममृतं
दत्तं धन्वन्तरिं पुरुषमितरासूनुमजितम् ।। 34

हरि, हंस, कृष्ण, नृसिंह, अनन्त, मधुसूदन, हृषीकेश, यज्ञ, कपिल, ऋषभ, हयग्रीव, नर, नारायण, व्यास, अनघ, आत्मा, अमृत, दत्तात्रेय, धन्वन्तरि, पुरुष, माहिदास तथा अजित नामके आप भगवान श्रीनिवास का मैं सदा भजन करता हूं।

विशेषार्थ —

1. 'हरतीति-हरिः' 'हृञ् = हरणे' = भक्तों के पाप-परिहारक तथा दुर्जनों के विनाशक हैं।

2. 'हंसः' 'दोषहीनत्वात्=हं, सारत्वात्=सः 'हंचासौ सश्च=हंसः'=दोषलेश रहित और सर्वश्रेष्ठ हैं अथवा हीवस्तीति हंसहिंसि = हिंसायां।

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चावरौ वर्णविकार नाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगं तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तं ।।

इति निरुक्तत्वात् साधुः – दुष्टों का संहार करनेवाले, सज्जनों के पापों का प्रशमन करनेवाले, साधु-पुरुषों को ज्ञान प्रदान करनेवाले और सर्वोत्तम हैं।

3. कृष्णः—धर्मस्वरूप श्रीकृष्ण की प्रेरणादि से समस्त जगत को नियंत्रण करनेवाले हैं अथवा पृथिवी और भक्तों के लिए सुखप्रद हैं।

4. नरहरि — सङ्कर्षणादिकों से बढ़कर पृथग्रूप नरसिंहरूपी है।
यमानिलेन्द्र चन्द्रार्क विष्णु सिंहांशु वाजिषु ।
शुकाहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु ।
कोश के इस वाक्यानुसार 'हरि' शब्द सिंहवाचक है।

5. अनन्त: — न विद्यते अन्तो यस्य=चतुर्धि नाश रहित अथवा (अति बन्धने) न विद्यते अन्त: बन्ध: यस्य=जो संसार बन्धन से रहित है।

6. मधुरिपुं — मधु नामक दैत्य के शत्रु हैं।

7. हृषीकेश: — हृष-तुष्टौ हृष:=हर्ष, हृषी=आनन्द से युक्त, ई=लक्ष्मी, क:=ब्रह्मा, उभयो:=ईक:=लक्ष्मी और वायुदेव के प्रभु, हृषी चासौ ई केशश्च=हृषीकेश: अथवा हृषिण: ई केश: येन=जिसके द्वारा लक्ष्मी, ब्रह्मादिकों को अनन्द का अनुभव कराया जाता है वे श्रीहरि 'हृषीकाणां ईश:=हृषीकेश:=समस्त इन्द्रियों के स्वामी(प्रेरक)

8. यज्ञभोक्ता होने से 'यज्ञ' कहलाते हैं। अथवा 'जपयज्ञश्च इज्यां तपोयाज्य एव च' — इस प्रमाण के द्वारा यज्ञस्वरूप में पूजित होने के कारण 'यज्ञ' कहलाते हैं।

न एव यज्ञो अभवद्रुचेश्च
आकूत्यां यत्सच्चिदानन्दरूप:।
स्वायं भुवं आद्यमन्वन्तरं च
देवै: साकं पालयामास वीन्द्र ॥ गारुड पु. 15 श्लो. 14

सृष्टि के प्रारम्भिक पद्मकल्प के प्रजापति के यहाँ उनकी पत्नी देवहूति से सच्चिदानन्दरूप भगवान विष्णु 'यज्ञ' नाम से उत्पन्न हुए और देवताओं के साथ रहकर राज्य किया।

9. कपिल: —कपिम्=हनुमान को, लाति=भक्तत्वेन, गृह्णाति: =भक्त के रूप में स्वीकार करनेवाले अथवा 'सुखरूपं पाल्यते लीयते च जगत् अनेन च' सुखरूपी श्रीहरि द्वारा जगत की रक्षा की जाती है और उसका नाश किया जाता है। अतएव जगत के संरक्षण और लय का कर्ता होने के कारण कपिल हैं। अथवा पि = सुख, कं = आनन्द इस तरह कोश में है। – "प्राणो ब्रह्म क ब्रह्म खं ब्रह्मेति" ऐसा श्रुति भगवती भी कहती है।

'ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञाने बिभर्तिजायमानं च पश्येत्।
सुखादनन्तात् पालनाच्च यं वै देवं कपिलमुदाहरन्ति ॥'

इस तरह बाभ्रव्यशाखा के अनुसार असीम सुख निहित होने के कारण 'कपिल' है। अथवा कः = सुखस्वरूप, पि=जगत की रक्षा करनेवाला। (स=रक्षा करना) लः = जगत को नष्ट करनेवाला या (ली=श्लेषणें ला = आदाने) सुखं पिबन् लीलयैव' इस तरह गीता तात्पर्य ग्रंथ के अनुसार लीला में आनन्द का अनुभव करनेवाला है।

ततो हरिः कपिलत्वं अवाप
 तिरोहितान् कालबलेन तत्त्वान् ।
चतुर्विंशत्सं ख्याकानुद्धरिष्यन्
 चरिष्यन्त्वै आसुरये प्रवक्तुम् ॥

गारुड पु. अ. 15, श्लो. 12

कालबल के कारण जो चौबीस तत्त्व लुप्त हो गये थे, उनका फिर से उद्धार करके आसुरि नामक ऋषि को उपदेश देने के निमित्त श्रीहरि ने कपिलरूप धारण किया।

10. ऋषभः — इसका अर्थ है देवश्रेष्ठ। वांछित कामनाओं को बरसानेवाले एवं धर्म से शोभित।

11. वाजिवदनः — अश्वमुखवाले हयग्रीव हैं।

12. नरः — नाश रहित अथवा ब्रह्मादि देवताओं से नमस्कृत लक्ष्मीवल्लभ विष्णु हैं।

13. व्यास — वि = सर्वस्माद्विशिष्टः = सबसे बढ़कर श्रेष्ठ। सृ=गतौ सृप्ऌ=गता, सः=ज्ञानस्वरूप। आ= खूब। सः = केवल ज्ञानस्वरूप। अग्नि वैश्वशाखा में 'सव्यासौ नीति तं अवैहि। सोऽध-स्तात्स उत्तरतः स पश्चात्स पूर्वस्मात्स दक्षिणतः स उत्तरतः' इस कारण सर्वोत्तम हैं। विश्व में आगे-पीछे, दायें-बायें, पूर्व-पश्चिम, दक्षिण-उत्तर, ऊपर-नीचे सर्वत्र व्याप्त होने के कारण सर्वश्रेष्ठ हैं। सर्व व्यापक या वेदों को विभाजित करनेवाले हैं।

ततोऽभवत् व्यासरूपी च विष्णु-
 श्चतुर्वारं दाशरथेश्च पूर्वम्।

पराशरात्सत्यवत्यां बभूव
पैलादिभिर्येदभागं च कर्तुम् ॥

गारुड पु. अ. 15, श्लो 23

वेद के चार भाग करके पैल, जैमिनि, वैशम्पायन आदि ऋषियों को देने के लिए विष्णु ने अट्ठाईसवें द्वापरयुग में पराशर और सत्यवती के यहां व्यास के रूप में अवतार ग्रहण किया।

14. नारायण: – 'प्रलयोदक शायित्वात् स तु नारायणः स्मृतः= प्रलय के जल में वट-पत्र पर शयन करनेवाले अथवा (दोषारच्छिद्रशब्दा वां पर्यायत्वं यतस्ततः) अराः = दोष तथा दोष-विरुद्ध गुण नारः है। नराणां आयनं = गुणों का आश्रय, या न अराणां अयनं भवति=दोषों का आश्रय न बननेवाले अर्थात् दोष वर्जित, या नरसम्बन्धित्वात् नारम् न रीयते अनेन इति वा, न अरमणं येनेति वा, न दोषः येनेति वा निर्दोषरूप वेदों के द्वारा उत्पन्न होने से नारं = ज्ञानं=ज्ञान के विषय बनकर आश्रय होने से नारायणः =ज्ञेय अथवा (अरविधुरत्वात्, अरति रहितत्वात्, (लक्ष्मी रहित न होनेवाले) क्षय विधुरत्वाद्वा द्वेष रहित होने से, अनिष्ट रहित होने से तथा अविनाश होने से नारायण कहे जाते हैं। अथवा नाराः=मुक्त=मुक्तों का आश्रय होने से नारायण हैं। अथवा (उपकारत्वादिना नराणां इमे)=नाराः=वेदादिकों के प्रतिपाद्य होकर आश्रयभूत होने के कारण 'नारायण'। या (नराणां इदं) नारं = जन समुदाय की उत्पत्ति आदि करके आश्रय बनने से 'नारायण'। अथवा (नराणां समूहः) नारं=मनुष्य समुदाय से नमस्कृत होने से 'नारायण'। (नराणां अधिपतिः)= नारः = मुख्य वायु। इस वायुदेव के लिए परम प्रीति के पात्र तथा आश्रय होने से 'नारायण' हैं।

आपो नारा इति प्रोक्ताः आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

इस प्रमाण के अनुसार आपः अयनं यस्य=जल का आश्रय बन या बनाकर रहनेवाले या क्षीर सागर में शेषशय्या पर निवास के कारण 'नारायण'।

स एव विष्णुः समभूद्बदर्यां
नारायणाह्वाः श्यामलायां यमाच्च ।
तपस्तप्तुं शिक्षयितुं ऋषीणां
तिरस्कर्तुं अप्सरसां सहस्रम् ।।

गारुड पुराण अ. 15, श्लो. 11

विष्णु ही ऋषियों को तपस्या की विधियाँ बताने के लिये तथा अनेक सहस्र अप्संरा-कान्ताओं का तिरस्कार करने के लिये यमराज और श्यामला के यहाँ बदरीकाश्रम में 'नारायण' नाम से अवतीर्ण हुए।

15. अनघं — न विद्यते अघं=पापं, यस्य = दोष रहित ।

16. आत्मानं —

यच्चाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह ।
यच्चास्य संततोभावः तस्मादात्मेति भण्यते ।।

— इस स्मृति वचन के अनुसार भगवान सर्वगुण परिपूर्ण हैं ।

यो गुणैः सर्वतोहीनः यश्च दोषविवर्जितः ।
हेयोपादेयरहितः स आत्मेत्यभिधीयते ।।

— सत्त्वादि गुणों से परे हैं और सभी दोषों से सर्वथा रहित हैं। 'आ ततः गुणत्त्वात् अत्मेति भण्यते' ज्ञानानन्दादि गुणों से पूर्ण होने के कारण 'आत्मा' कहा जाता है ।

17. अमृतं – अनन्तासन, अधारत्वेन यस्य=अनन्तासन जिसका आधार है । 'ब्रह्म गुणपूर्णत्वाच्च नित्यत्वादमृतं तथा' ऐतरेय भाष्य के अनुसार अमृतः=शाश्वत हैं, अमं=असीम, ऋतं=शास्त्र, यस्य = वह असीम शास्त्र युक्त है, अर्थात् सर्व शास्त्रों का प्रतिपाद्य या ज्ञाता ।

18. दत्तात्रेयः – विष्णु का ही अवतारस्वरूप हैं । दत्तात्रेय की अवतरणा महर्षि अत्रि की धर्मचारिणी अनसूया से हुई ।

स्ववित्तं तेन दत्तां तु दत्तात्रेयाय कर्मणे ।
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य विजयं श्रुतमेव च ।।
(महाभारत अनुशासनिकपर्व 257, श्लो. 5)

मार्गशीर्षयुते पौर्णमास्यां ज्ञ स्य तु वासरे ।
जनयामास देदीप्यमानं पुत्रं सती शुभम् ।।
तं विष्णुमागतं ज्ञात्वा चात्रिः नामाकरोत्स्वयम् ।
दत्तवान् स्वस्य पुत्रत्वात् दत्तात्रेय इतीरितः ।।

मर्गशीर्ष की पूर्णिमा को अनसूया के यहाँ स्वयं भगवान श्रीहरि पुत्र के रूप में अवतार लेकर अत्रिपुत्र 'दत्तात्रेय' नाम से प्रसिद्ध हुए ।

स एव दत्त प्रादुरभून्महात्मा
अनसूयायामत्रिऋषेः सकाशात् ।
अन्वीक्षीकीं नाम सूतर्कविद्यां
अलर्काय शिक्षयितुं महात्मा ।।
(गारुड पु. 15 श्लो. 12)

भगवान ने अलर्कऋषि को तर्क विद्या का उपदेश देने के लिए अत्रिमुनि और अनसूया से दत्तात्रेय के रूप में अवतार लिया ।

अनसूया तथैवात्रेः जज्ञे पुत्रानकल्मषान् ।
दत्तां दूर्वाससं सोममात्मेश ब्रह्मसम्भवान् ।। (भागवत)

महर्षि अत्रि की सती अनसूया से तीन पुत्र हुए — भागवतस्वरूप दत्तात्रेय, रुद्रस्वरूप दूर्वासा और ब्रह्मनिष्ठ सोम ।

19. धन्वन्तरि —

धन्वन्तरिस्ततो देवः वपुष्मान् उदतिष्ठतः ।
श्वेतं कमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति ।।
(महाभारत अनुशासन 18, श्लो, 38)

ततो हरिः प्रादुरभून्महात्मा
धन्वन्तरिर्नाम हरिन्महाद्युतिः ।
अपथ्यदोषान् परिहर्तुमेष
हस्ते गृहीत्वा पूर्णकुम्भं सुधाभिः ।।

ततो हरिर्जगृहे स्त्रीवपुश्च
नारायणीति प्रवदन्ति लोके ।
समुद्भवानां दितिजानां महात्मा
सम्यक् तेषां वञ्चयितुं हरिः स्वयम् ॥
(गारुड पु. 11, श्लो. 15, 16)

श्रीहरि अपने हाथ में अमृत कलश लेकर 'धन्वन्तरि' नाम से प्रख्यात हुए। उसके बाद दुष्ट राक्षसों का वध करने-हेतु 'नारायणी नाम से उन्होंने स्त्री का रूप धारण किया।

अथोदधेर्मथ्यमानात् काश्यपैरमृतार्थिभिः ।
उदतिष्ठत् महाराजा पुरुषः परमाद्भुतः ॥
दीर्घपीवरदोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः ।
श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ॥
पीतवासाः महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः ।
नीलकुञ्चितकेशान्तः सुभगः सिंहविक्रमः ॥
अमृतस्य पूर्णकलशं बिभ्रद्वलयभूषितः ।
स वै भगवतः साक्षात् विष्णोरंशांसम्भवः ॥
धन्वन्तरि रिति ख्यातः आयुर्वेद दृगिज्यभाक् ।
भागवत स्कं. 8, अ. 8, श्लो. 30–33

क्षीरसागर के मंथन के समय परमात्मा के अंशावतार धन्वन्तरि अमृत कलश हाथ में लिये प्रकट हुए। उन्होंने ही पहले-पहल संसार में आयुर्वेद को प्रस्थापित किया।

20. पुरुषः — (पुरु=अग्रगमने) = सृष्टि के पूर्व ही स्थित हैं (अर्थात् परम पुरुष अविनाशी है) 'षकारः प्राण आत्मा' इस श्रुति के अनुसार अधिक क्रिया सम्पन्न हैं। अथवा पुरु = पूर्णं मोक्षाख्य-फल को (याने अपने को) सनोति (षणु्-दाने) प्रदान करनेवाला है। सबसे पहले, सदनात् = रहने से, या 'सर्वदोषसाधनाद्वा' = सारे दोषों को नष्ट करने के कारण श्रीहरि पुरुष हैं। अथवा पुरी = सब के शरीर में, शेते = नियमित रूप से शयन करने से पुरुष हैं।

शकारस्य षकारोऽयं व्यत्ययेन प्रयुज्यते ।
भगवानिति शब्दोऽयं तथा पुरुष इत्यपि ।।
निरुपाधी च वर्तते वासुदेवे सनातने ।

ऐसा स्मृति वचन है। अथवा 'पूर्णत्वात् पालकत्वात् पुरुषः' — (पॄ–पालन पूरणयोः) पूर्ण षड्गुणों से युक्त हैं।

यो वीजभूतः पुरुषाख्यविष्णुः
स एवाभूद्वासुदेवेति संज्ञः ।
सृष्टिं कर्तुं पुरुषाख्यं विरिञ्चं
मायाख्यायां मूलरूपी यथा सः ।।
(गारुड पुराण अ. 15, श्लो. 2)

समस्त अवतारों के कारणभूत पुरुषाख्य विष्णु ही मायादेवी में 'पुरुष' नामक चतुर्मुख को उत्पन्न करने के लिये वासुदेव हुए।

21. महिदासः

महिदासाभिधो जज्ञे इतरायास्तपोबलात् ।
साक्षात्स भगवान्विष्णुः यस्तन्त्रं वैष्णवं व्यधात् ।।

इतरादेवी के तपोबल से भगवान विष्णु ही उनमें महिदास नाम से प्रकट हुए। इन्होंने ही वैष्णवतन्त्र (पांचरात्रागम) का निर्माण किया।

ततो हरिर्महिदासत्वमाप
ऋषेर्भार्यायामितरायां स्वयंभूः ।
तथाऽवतारे पञ्चरात्रं समग्रं
उपदेष्टुं वै नारदाय स्वतन्त्रः ।।
गारुड पु. अ. 15, श्लो. 10

श्रीहरि ने नारद को पांचरात्रागम का उपदेश करने के लिए इतरादेवी में महिदास नाम से अवतार लिया।

22. अजितः — किसी से पराजित न होनेवाला। (जि–जये) अजित नाम से भगवान का अविर्भाव हुआ।

(भागवत स्कं 8, अ. 5, श्लो· 9)

तत्राऽपि देव: सम्भूत्यां वैराजस्याऽभवत्सुत: ।
अजितो नाम भगवान् अंशेन जगत: पति: ।।

सम्बन्ध — भगवान के अपरिमित अवतार हैं। उन गुणगणमय सच्चिदानन्द स्वरूप के नामों की गणना भी नहीं की जा सकती है। अत: भगवान की यथामति स्तुति करते हुए देवशर्मा बोले —

अनन्तरूपं स्वमनन्तचर्यं
अनन्तवेदैरनुवर्णनीयम् ।
अनन्तनामानमनन्तदेवं (वेद्यं)
अनन्तकल्याणगुणाभिरामम् ।। 35

जो अनन्त अवतार धारण करते हैं, अपने ही रूप होने पर भी अनन्त शक्ति-प्रकाश-क्रिया-सम्पन्न (या चरित्रवाले) हैं, अनन्त वेदों से विपुल वर्णित हैं, अगणित नामों से व्यवहृत हैं, अनन्त स्वरूपों से (अनन्त गुणों से) जानने योग्य हैं तथा अनन्त कल्याणकारी ज्ञानानन्दादि मङ्गल गुणों से परिपूर्ण हैं, मैं ऐसे श्रीनिवास का सदा भजन करता हूं।

अनन्तशक्तीशमनन्तविक्रमं
अनन्तदेहे च शयनामीश्वरम् ।
अनन्तसौभाग्यमनन्तनेत्रकं
अनन्तपादादिमनन्तसौख्यदम् ।। 36

जो अनन्त शक्तियों के स्वामी हैं, अपार वल-पराक्रम संपन्न हैं, अनन्त जीवों (शेष) के शरीर पर शयन करनेवाले हैं, अनन्त सौभाग्य से समृद्ध हैं, असंख्य नेत्रोंवाले हैं, अनन्त कर-चरण-उदरादि से युक्त हैं तथा अपने भक्तों को सकल सुख-समृद्धि देने वाले हैं, मैं ऐसे सर्वेश्वर श्रीनिवास का सदा भजन करता हूं।

विशेषार्थ —

1 केशवाद्याश्चतुर्विंशत् शतं नारायणादयः।
विश्वादयः सहस्राश्च पराद्याः अमिताः स्मृताः।।
अवतारा असङ्ख्येयाः विष्णोर्नारायणस्य च।
स्वयं नारायणस्येते नाममात्र विभेदिनः।।

भगवान के अनन्त अवतारों का विवरण इस तरह आंके जाते हैं। केशव आदि अवतार चौबीस हैं। नारायण आदि अवतार एक सौ हैं। विश्व आदि अवतार एक हजार हैं तथा परादि अवतार तो असीम हैं। इस तरह नारायण के अवतारों की गणना अत्यधिक है। इन समस्त भगवद्रूपों में परस्पर भेद किञ्चिन्मात्र भी नहीं है।

2. ईशन शीलत्वात् ईश्वरः=नियमन करने का जिसका स्वभाव है, वह ईश्वर।

3. ईशेभ्योऽपि वरः=ब्रह्मादिकों से भी बढ़कर उत्तम हैं।

4. ई = लक्ष्मी, श्वा = वायुदेव — इन दोनों को जो संतुष्ट करता है, वह ईश्वर।

5. ईश्वभ्यां राजते इति — ईश्वरः = लक्ष्मी और वायुदेव को अधिक प्रसन्न करनेवाले और उनसे बढ़कर अधिक प्रकाशमान है।

6. 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' आदि श्रुति वचनों से जान पड़ता है कि श्रीहरि अनेक सहस्र चक्षुरादि इन्द्रियों से युक्त हैं।

7. 'विचित्रशक्तिः पुरुषः पुराणः न चान्येषां शक्तयः तादृशाः स्युः' आदि श्रुतियों में भगवान के अनन्तानन्त विचित्र शक्ति-सामर्थ्य का प्रदिपादन हुआ।

सम्बन्ध — 'स्व' शब्द वाच्य या सर्वस्वतन्त्र श्रीहरि की स्तुति प्रकारान्तर से करते हैं।

असुराचलौघहरचक्रधरं दुरिताचलौघहरवज्रधरम् ।
करुणाचलौघभरचित्तवरं कनकाचलौघधरपद्मकरम् ।। 73

राक्षसरूपी पर्वत-समूह को समूल नष्ट करने के लिये चक्र (सुदर्शन)धारण करनेवाले, पापरूपी पर्वत-समूह को ध्वस्तकरने के लिये वज्र धारण करनेवाले, करुणारूपी पर्वत-समूह से पूर्ण श्रेष्ठ चित्तवाले तथा असंख्य पर्वत-समूह से भी अधिक सुवर्ण राशि को अपने प्रियभक्तों को देने के लिये लक्ष्मी जी के कमल को अपने हाथ में धारण करनेवाले आप भगवान श्रीनिवास का मैं सदा भजन करता हूं ।

भुवनेषु वेङ्कटेश बहुपुरुषार्थदान निपुणोऽसि ।
नो चेद्वयक्ततया त्वं बहून्नतस्थाने कुतो ।। 38

हे वेङ्कटेश्वर! सारे संसार में सम्पूर्ण पुरुषार्थ को देने में आप बड़े कुशल हैं, नहीं तो, सब के लिये प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाले आप अत्यंत ऊँचे (शेष) पर्वत पर (वैकुण्ठ में) क्यों रहते?

गुणौधैरपारं स्फुरद्रत्नहारं
स्मरद्दोपहारं स्वभक्तेष्टपूरम् ।
भजे वेङ्कटेशं फणीशाद्रिवासं
सदा मन्दहासं श्रिया सद्विलासम् ।। 39

अपार ज्ञानानन्दादि सद्गुणों से सम्पन्न, चमचमाते रत्न निर्मित हार से विभूषित, स्मरण करनेवाले भक्तों के दोषों को दूर करनेवाले एवं उनकी अभिलाषा को पूर्ण करनेवाले, शेषाचल पर अवस्थित, (भक्तों के दर्शन से प्रसन्न हुए) नित्य मंदहासवाले तथा लक्ष्मी के साथ सदा हास-विलास करनेवाले आप श्रीवेङ्कटेश का मैं सदा भजन करता हूं ।

वेङ्कटेश चरणे तव वन्दे सर्वतीर्थशरणे शरणे मे ।
माविधीरशिववीशफणीशेन्द्रार्कसोमहुतभुङ्मुखवन्द्ये ।। 40

हे वेङ्कटेश ! गङ्गानदी, स्वामीपुष्करिणी इत्यादि सब तीर्थों के उद्गमरूप तथा भक्तों की रक्षा करने में सहज समर्थ; लक्ष्मी, ब्रह्मा, वायु, रुद्र, गरुड, शेष, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र अग्नि इत्यादि देवताओं के द्वारा वन्दित आपके चरण-कमलों को मैं प्रणाम करता हूं।

श्रीनिवास चरणे तव वन्दे लोकपावनसुकुङ्कुमवर्णे ।
श्रीप्रदे किल सुर्षिनराणां श्रीऋगादिनिगमागमवेद्ये ।। 41

हे श्रीनिवास ! सदाचारी पुरुषों को ज्ञान देनेवाले, दिव्य मंगल कुंकुमराग से अनुरंजित, समस्त देवताओं, ऋषियों, अंबरीषादि राजाओं और श्रेष्ठ मनुष्यों को तत्त्वज्ञान बढ़ानेवाले, कल्याणकारी ऋगादि वेदों, पांचरात्रादि आगमों, धर्म-शास्त्रों पुराणों, रामायण-महाभारतादिरूप इतिहासों द्वारा जानने योग्य आपके चरणों को मैं प्रणाम करता हूं।

विशेषार्थ —

1. नितरां गमयति = बोधयति = प्रापयति परमात्मानमिति निगमः। आ=समन्तात् गमयति धर्माधर्मौ परं पदं आगमः।

2. 'श्रीः निवसति अस्मिन्'=सम्पदा अथवा लक्ष्मी उनमें सदा वास करती हैं, अतः 'श्रीनिवास' हैं।

3. श्रियं नयतीति श्रीनिः = सम्पत्ति को पानेवाले और देनेवाले हैं। 'वस्ते=आच्छादयति सर्वं, वासयति च, वससि सर्वत्र इति वा-वासः' सबमें आच्छादित हैं, सर्वत्र आवास करनेवाले हैं। 'वासः' श्रीनिश्चासा वासश्च=श्रीनिवासः'।

4. 'श्रियां निवसति अन्तर्यामितया'=लक्ष्मी में अन्तर्यामी रूप से निवास करते हैं।

भजे भजकसौख्यदं निजकटाक्षसम्प्रेक्षणं
परात् परतरं धरं दरमरिं गदाम्बुजम् ।
चतुर्भुजमधोक्षजं कमलजेशपूर्वाचितं
वरोद्धतखलान् बहून् बहुजवेन संहारिणम् ।। 42

जो भजनकरनेवाले भक्तों को सुख पहुँचानेवाले हैं, अपने प्रणतों की दया-दृष्टि से पूरी तरह रक्षा करनेवाले हैं, लक्ष्मी-ब्रह्मादिकों से अत्यंत उत्तम हैं, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म से विभूषित चतुर्भुजवाले हैं, नेत्रादि इन्द्रियों केलिये अगोचर हैं, ब्रह्मा-रुद्रादि देवताओं से सुसेवित हैं, तथा जिन्होंने ब्रह्मा-शिवादि देवताओं द्वारा वरदान प्राप्त किये हुए महोद्धत रावणादि दुष्ट-राक्षसों का अतिशीघ्र संहार किया है; ऐसे आप श्रीनिवास का मैं सदा भजन करता हूं ।

विशेषार्थः—

'तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम् ।'
(भागवत स्कं 10, अ.3 , श्लो. 9)

अज्ञानसागरसमुत्तरणे प्रशस्तं
सुज्ञानसेतुरचने निपुणं बुधेड्यम् ।
लक्ष्मीपतिं सुरवरार्चितवेङ्कटेशं
दारिद्र्यपूर्वदुरितौघनिशाचरघ्नम् ।। 43

जो अपने भक्तों का अज्ञानरूपी समुद्र से उद्धार करने में अत्यंत चतुर हैं, भक्तों के लिये अत्युत्तम ब्रह्मज्ञानरूपी सेतु के निर्माण करने में निपुण हैं, ब्रह्मादि ब्रह्मनिष्ठों द्वारा वन्दित हैं, दारिद्र्यादि दुरितरूपी असुरों के विनाशक हैं तथा रुद्रादि उत्तम देवताओं द्वारा संपूजित हैं, उन लक्ष्मीपति श्रीवेङ्कटेश को मैं निरंतर भजता हूं ।

लक्षीनाथं कमलनयनं हारकेयूरभूषं
अण्डव्याप्तं बहुगुणभरं दोषदूरं दयाब्धिम् ।
स्वानां तापत्रयहरमजं निर्विशेषं विशेषं
लोकातीतं पुरुषमतुलं भावयामीष्टदेवम् ।। 44

जिनके नेत्र कमल के समान हैं, जो हार-केयूरादि विविध आभूषणों से विभूषित, ब्रह्माण्ड व्यापी, नाना प्रकार के सद्गुणों से पूर्ण, दुःखादि दोषों से रहित, दया के सागर, भक्तों के त्रिताप (दैहिक-दैविक-भौतिक) का नाश करनेवाले, अजन्मा, प्राकृतिक गुणों से परे, लोक विलक्षण, लोकातीत, विश्व का अतिक्रमण करनेवाले, अनुपम पुरुष, मोक्षप्रद और असदृश हैं, ऐसे अपने इष्टदेव लक्ष्मीकांत भगवान श्रीनिवास की मैं निरंतर भावना करता हूं ।

विशेषार्थं —

भगवान विश्व का अतिक्रमण करनेवाले और विश्व से विलक्षण इसलिये कहे जाते हैं कि उत्पत्ति-विनाशवाले इस संसार के सभी जीवों और पदार्थों केलिये जन्म-मृत्यु स्वाभाविक धर्म हैं तथा जगत में जो भी कार्य-कारण भाव होते हैं वे सब प्रकृति-सिद्ध एवं संप्रदाय-बद्ध हैं। परंतु भगवान के लिये ये लागू नहीं होते । क्योंकि वे तो उनसे अतीत और विलक्षण हैं। अनादि काल से लेकर अनन्त काल तक जन्म-मरण रहित होने के कारण भगवान 'नित्य' हैं। स्वयं पुरुष होते हुए भी उन्होंने अपनी नाभि से कमल को उत्पन्न करके, उसमें चतुर्मख ब्रह्मा को जन्म दिया। संसार में स्त्री-पुरुष के संयोग से ही संतान की उत्पत्ति होती है । लेकिन दाम्पत्य-धर्म की लोकरीति का अतिक्रमण करके स्वयं अपनी नाभि से सृष्टि-कार्य करना भगवान का लोकातीत विलक्षण-धर्म है।

श्रीमद्वेङ्कटनाथपादजनिता गङ्गा जगत्पावनी
यस्यापाङ्गनिरीक्षणं विधिभवेन्द्रार्कादिसर्वेष्टदम् ।
यन्नामस्मरणं महाघहरणं स्वर्ग्यं च मोक्षप्रदं
यत्पादाम्बुजयुग्मसेवनरतो ब्रह्मादिभिः पूज्यते ।। 45

हे वेङ्कटनाथ ! आपके जिन कमल चरणों में से उद्भूत गङ्गादि समस्त तीर्थ सारे संसार को पवित्र करते हैं, आपके जिन कृपा-कटाक्ष ब्रह्मा-रुद्र-इन्द्र-सूर्यादि देवताओं को समस्त कामनाओं की पूर्ण करनेवाले हैं, आपके जिन नाम-स्मरण महा पापराशि को दग्धकर स्वर्गादि (मोक्ष) प्रदान करते हैं, आपके जिन युगल चरण कमलों को भजनेवाले व्यक्ति ब्रह्मादि देवों द्वारा यथायोग्य सम्मानित होंगे, ऐसे आपके चरणारविन्दों को नमस्कार है ।

विशेषार्थ —

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरे ।
तावत्कर्तु न शक्नोति पातकं पातकी जनः ।।

(कृष्णामृत महार्णवम्)

— भगवान श्रीहरि के इस नाम में जितनी शक्ति विद्यमान है, उतना पातक पातकी मनुष्य अपने जीवन में कर ही नहीं कर सकता । तात्पर्य यह है कि नाम-स्मरण करने से पापीजन की समस्त पापराशि ध्वस्त हो जाती है और फिर कोई पाप शेष नहीं रहता ।

सर्वरोगोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ।
शान्तिदं सर्वारिष्टानां हरेर्नामानुकीर्तनम् ।।

श्रीहरि के नाम का बारंबार कीर्तन समस्त रोगों का निवारण करनेवाला, सारे उपद्रवों का नाशक और सम्पूर्ण अरिष्टों की शान्ति करनेवाला है ।

सृ(दृ)ष्टयाद्यत्यन्तदूरं निगमनिचयसंवेद्यमाहात्म्यपूर्णं
सर्वेषामादिमित्रं रविशशिनयनं पूर्णकारुण्यदेहम् ।
निर्वाणं निष्प्रपञ्चं निरवधिकसमाम्नायसङ्गैरसङ्गैः
गीर्वाणाद्यैरजस्रं स्तुतिनतिनियमैकान्तभक्त्यादिपूज्यम् ।।

सृष्टि, स्थिति और संहार से अत्यंत दूर अर्थात् जन्मादि से रहित (अन्तरार्थ – आँख, कान और मन के लिये अगोचर), ऋगादि वेदों और पुराणों से जानने योग्य माहात्म्य से परिपूर्ण, (एवं उन वेदशास्त्रों के द्वारा पूर्णरूप से फिर भी न जाने जा सकने के माहात्म्यशाली), ब्रह्मादि समेत सबके आदिकाल से परम हितैषी, सूर्य और चन्द्र की भाँति कान्तियुक्त नेत्रवाले, पूर्ण कृपा के मूर्तिमान् स्वरूप, पांच भौतिक शरीर रहित होने से जन्म-मरण रूप आवागमन से मुक्त, निरवधिक (असीम) अनन्त वेदों से सदा चिन्तनीय तथा एकांत भक्तों (अर्थात् देवता, ऋषि-मुनियों) द्वारा निरंतर श्रवण-मननरूप साधन-नियमों द्वारा निष्ठापूर्वक पूजित चरण महिमावाले आप श्रीहरि का मैं सदा भजन करता हूं।

विशेषार्थ —

भगवान श्रीहरि से बढ़कर सृष्टि आदि का कर्ता कोई नहीं है।

ब्रह्माण्डकोटिस्रष्टा च कटाक्षक्षणमात्रतः ।
संहर्ता पालकश्चैव ततः कोऽन्यो भवेद्विभुः ।।
स्रष्टा पालयिता हन्ता कोटिब्रह्माण्डनायकः ।।

आदि पु. अ. 7, श्लो. 65

भगवान एक तनिक से दृष्टिपात द्वारा तत्काल कराडों ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति करके उनकी रक्षा एवं संहार करते हैं। उनके अतिरिक्त ऐसा और कोई नहीं । वे ही सर्वशक्तिमान हैं।

किङ्करशङ्कर बहुकरुणा तव
बहुचरितं चतुर्दशभुवनेषु ।
ज्ञापयसि तव भक्तवर्गेभ्यः
फणिशुकपैलनारदप्रमुखैः ।। 47

हे शङ्कर के स्वामिन् ! आप करुणावरुणालय हैं, क्योंकि चौदहों भुवनों में शेषनाग, शुकदेव, पैलमहर्षि, नारद आदि महामनीषियों के माध्यम से आप अपने भक्तों में अपने बहुविध चरित्र-ज्ञान (लीला) का वितरण कराते हैं।

विशेषार्थं —

आद्यन्तं वेदशास्त्रस्य स्वयं भगवताकृतम् ।
मध्यं तदाज्ञया शेषपैलाभ्यां कृतमञ्जसा ।।
ऋचां प्रवर्तकं पैलं यजुषां च प्रवर्तकम् ।
वैशम्पायनमेवैकं द्वितीयं सूर्यमेव च ।।
प्रवर्तने मानुषेषु गन्धर्वादिषु चात्मजम् ।
नारदं पाठयित्वा च देवलोकप्रवृत्तये ।।
देवमीमांसकाद्यन्तं कृत्वा पैलमथादिशत् ।
शेषं च मध्यकरणे पुराणान्यथ चाकरोत् ।।
महाभारत तात्पर्य अ. 10, श्लो. 76, 78, 83

भगवान वेदव्यास ने ऋग्वेद का प्रचार करने के लिये पैलमुनि को, कृष्णयजुर्वेद के लिये वैशम्पायन को तथा शुक्लयजुर्वेद के लिये सूर्य को नियुक्त किया। इस तरह निर्देश करने के बाद, वेदव्यास ने वेदान्तशास्त्र की आद्यन्त रचना करके, पैल और शेषनाग के द्वारा मध्यभाग की रचना करवायी तथा परीक्षित आदि नृपों और गन्धर्वादि भक्तों को तत्त्वशास्त्र का अधिकारी जानकर उनको उपदेश करने के निमित्त अपने पुत्र शुकदेव को आज्ञा दी। देवलोक में प्रचार करने के लिये देवर्षि नारद को अदेश दिया।

वेङ्कटेशमनुसृत्य य आस्ते
तस्य भूरि सुभगं दशदिक्षु ।
ऐहिकं त्रिदिवसौख्यमतुल्यं
मोक्षमाशु लभते गुणसाम्यम् ।। 48

श्रीवेङ्कटेश का अनुसरण करके परम भक्तों के द्वारा प्रशंसित व्यक्ति की कीर्ति दश-दिशाओं में (सर्वत्र) व्याप्त हो जाती है। वह इस लोक में अतुल सुख-समृद्धि प्राप्तकर उसके बाद अमित स्वर्ग-भोग का अनुभव करके, अपने योग्यतानुसार गुणसाम्यरूप मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

विशेषार्थ —

1. भगं श्रीयोनिवीर्येच्छाज्ञानवैराग्यकीर्तिषु ।
महात्म्यैश्वर्ययत्नेषु धर्मे मोक्षे च ना रवौ ।।

इस वाक्य का अर्थ है कि इस लोक में अधिक संपत्ति, वीर्य, कीर्ति आदि अपार सुखभोग करके मुक्ति को प्राप्त किया जाय।

2. गुण-साम्य का विवरण यों हैं — समस्त दुःखों का निवारण के साथ-साथ स्वरूपानन्द के आविर्भाव को मोक्ष कहा जाता हैं। 'सद्गुणसारत्वात् तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत्' (ब्रह्मसूत्र अ. 2, पा. 3, सू. 29) 'परमं साम्यमुपैति' आदि सूत्र तथा श्रुति वचन के अनुसार यह जानना चाहिए कि परमात्मा के ज्ञानानन्दादि गुणों से यथायोग्य साम्य, संसार-अभाव से साम्य तथा दु.ख-दोष आदि के अभाव से साम्य — इत्यादि रूपों में मोक्ष ही है। यह स्थिति संसार के जंजाल में पड़ा जीव कदापि किसी अंश में प्राप्त नहीं कर पाता। मुक्ति की अवस्था में कतिपय गुणों से भगवत्-साम्य प्राप्त कर सकता है, क्योंकि उस अवस्था में जीव के लिये न तो दुःख-दोष है, न संसार। ज्ञान और आनन्द कुछ मात्र में होते हैं। अतः इन गुणों में वह ब्रह्म से सम है। गुण-साम्यरूप यह मुक्ति जीव को भगवान के अनुग्रह से प्राप्त होती है। किंतु यह भगवान के अधीन है। अतः यह जान लेना चाहिये कि भगवान के जो ज्ञान आनन्द और शक्ति हैं, वे नित्य, स्वतंत्र और उनके ही अधीन है।

श्रीनिवासमपहाति मदान्धः
तस्य दुःखमसमं दशदिक्षु ।
ऐहिकं नरकरौरवकुम्भी-
पाकवह्निमहदन्धतमांसि ।। 49

हे श्रीनिवास! जो मनुष्य आपका पूजन किये बिना मदान्धता से आपका परिहास या अवहेलना करता है, उस पर इस लोक में दसों दिशाओं से (सर्वत्र) अनेकानेक शोक-संकट आ पड़ते हैं और पर-लोक में रौरव, कुम्भीपाक आदि भीषण नरक का अनुभव करते हुए अन्त में वह शाश्वत दुःखरूप अन्धतमस् नरक को प्राप्त करेगा ।

विशेषार्थ —

रौरवोऽथ महांश्चैव वह्निर्वैतरणी तथा ।
कुम्भीपाक इति प्रोक्तानि अनित्यनरकाणि तु ।।
तामिस्रश्चान्धतामिस्रो द्वौ नित्यौ सम्प्रकीर्तिता ।
एतानि सप्त प्रधानानि बलीयो ह्युत्तरोत्तरम् ।।

इस जीवन के मनुष्यादि-शरीर, आकृति, स्वभाव, ज्ञान, वैभव आदि भगवान के अनुग्रह से ही प्राप्त होते हैं। यह समझकर इसके लिये परमात्मा के प्रति प्रसन्नतापूर्वक कृतज्ञता-भाव रखना चाहिए। लेकिन उसके विपरीत जो आदमी कृतघ्न बनता है, अर्थात् ऐश्वर्य-भोग में मस्त होकर ईश्वर को भूल जाता है तथा उनके स्मरण किये बिना द्वेष कर बैठता है, वह अपने पाप-पुण्य के कर्मानुसार शरीर धारणकर दुःख-सुख का अनुभव करता है। इसका ज्वलंत उदाहरण दुर्योधन, कंस, जरासंध रावण, हिरण्यकशुपु आदि हैं। वे भगवान का तिरस्कार करने के कारण शाश्वतरूप से अपयश प्राप्त कर दुर्गति का शिकार बन गये।

विपद्घ्नं शुभदोग्धारं भक्तानां वशवर्तिनम् ।
लोकपूज्यं रमारामं भजेऽहं प्रतिजन्मसु ।। 50

जो अपने भक्तों के नरक आदि सब कष्ट-क्लेशों के विनाशक हैं, कल्याणकारी मोक्ष-सिद्धि प्रदायक हैं, अपनी ही इच्छा से भक्तों के वश में आनेवाले हैं, सर्वलोकों में ज्ञानियों से आराध्य हैं तथा लक्ष्मी के मनोरंजन के लिये क्रीडादि गुणोंवाले हैं, उन श्रीवेङ्कटेश्वर का मैं प्रतिजन्म में भजन करता हूं ।

विशेषार्थं —

जिस भक्त पर जब भगवान की कृपादृष्टि पड़ जाती है, तब वह नरकादि भय-दुःख से छुटकारा पा लेता है तथा इस लोक में नित्य-सुख और परम शान्ति प्राप्तकर स्थायी आनन्द-निकेतनरूप मोक्षद्वार के कपाट को अनावृत करनेवाली भक्ति के प्रसाद से मुक्तिलाभ करता है । इस तरह ऐहलौकिक-पारलौकिक उभय विध लाभ प्राप्त होता है ।

भक्तौघानुग्रहार्थाय त्यक्त्वा वैकुण्ठमुत्तमम् ।
धरण्यामवतीर्णोऽसि वरेण्यो वरदोऽर्चितः ।। 51

हे वेङ्कटेश ! आप ज्ञानिजनों के स्तुत्य हैं, भक्तों को अभीष्ट-सिद्धि को प्रदान करनेवाले हैं और ब्रह्मादि देवताओं से पूजे जानेवाले सर्वोत्तम हैं । हे दयामय श्रीनिवास ! आप भक्त-समुदाय पर अनुग्रह करने हेतु अत्यन्त श्रेष्ठ वैकुण्ठ को छोड़कर पृथ्वी (शेषाचल) पर अवतीर्ण हुए हैं ।

विशेषार्थ —

पुराणों में यह उल्लेख है कि भक्तों के उद्धार के लिये साक्षात् नारायण वैकुण्ठ छोड़कर भूतल पर पण्ढरपुरस्थ विठलनाथ (श्रीकृष्ण की बाल-छवी) के रूप में अवतरित हैं, तो उनका विभूति (ऐश्वर्य) रूप ही वेङ्कटाद्रि (तिरुपति-तिरुमल) में श्रीनिवास अर्चारूप में विराजित हैं।

अत्यल्पमात्रं परवस्तुलोके नैवापहार्यं किल सत्यसन्धः।
जनैरनेकैः बहुजन्मयत्नैः आयाससाध्यं बहुपापसञ्चयम् ।।52

हरस्यशेषं स्मृतिमात्रतस्त्वं गोगोचरो दृष्टिपथाद्यगोचरः।
विलक्षणं स्थावरजङ्गमात्मयं पश्ये बहूपायविशारदं त्वाम् ।।

हे वेङ्कटनाथ ! संसार में दूसरों की वस्तु को चाहे वह अत्यन्त छोटी भी क्यों न हो, न ग्रहण करने का उपदेश देने वाले आप सत्यप्रतिज्ञ हैं तथा नेत्रादि बाह्य-इन्द्रियों के द्वारा अगम्य हैं, परन्तु अनेक मनुष्य, जिन्होंने जन्म-जन्मों से यत्न पूर्वक पाप किये हैं, आपका 'वेङ्कटेश' नाम-स्मरण मात्र से तत्काल उनकी भारी पापराशि को हरनेवाले आप स्वयं पाप-चोर हैं। आपकी यह और ही अनेक विचित्र लीलाएँ मात्र वेदों से जानने योग्य हैं। चेतन और अचेतनरूपी इस चराचर जगत के नियामक आप अपने भक्तों के भरण-पोषण-रक्षण आदि सभी उपायों में चतुर हैं। यह मैं अपने अनुभव द्वारा जानता हूं।

विशेषार्थं —

नीतिशास्त्र में गुरुजनों और बड़े लोगों के प्रति हास-परिहास करना अशिष्ट माना जाता है, तो भगवान श्रीहरि को तस्कर कहना कहाँ तक समीचीन है ? इसके उत्तर में 'गुरूणामपि रमं हास्यं कर्तव्यं कुटिलं विना' इस स्मृति वचन के अनुसार छल-कपट के बिना यथार्थ विषय में गुरु के साथ हास करना ठीक होता है।

नारायणो नाम नरो नराणां
प्रसिद्धचौरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेकजन्मार्जितपापसंचयं
हरस्यशेषं स्मृतिमात्रतस्त्वम् ।।

इस प्रमाण के अनुसार सत्यसंकल्प भगवान जो मन और वाणी के लिये अगोचर, केवल वेदशास्त्रों द्वारा गोचर हैं, वे स्मरण करने मात्र से द्रवित होकर करुणा-भरे हृदय से अनेक जन्मों की कमायी हुई पापराशि का अपहरण करते हैं। 'दोषों का हरण करके उद्धार करते हैं' ऐसे परिहास भगवान का गुण-कीर्तन ही द्योतित होता है। भक्ति की भावना के साथ-साथ इस उक्ति में व्याज-निन्दा अलंकार भी है।

2. 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा।'
3. 'अवचनेनैव प्रोवाच।'
'यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते।
मन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतं
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति॥'
'वाणी मनोदृष्टिपथाद्यगोचरः।'
– इस तरह श्रुतियाँ उस भगवान के बारे में अनेकत्र कहती हैं।
4. 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' – 'वेदैश्च सर्वै रहमेव वेद्यः' – इत्यादि श्रुति-स्मृत्यादि से वे गोगोचररूप में सिद्ध हैं।

सम्बन्ध — हे श्रीनिवास! आप तस्कर ही नहीं, अपितु आपके अनन्त रूप (अवतार), अनन्त चरित्र, अनन्त नाम, अनन्त गुण-कर्म आदि भी भक्तों के दुरितों-उपद्रवों को हरनेवाले हैं। भक्तिपूर्वक स्मरण करनेमात्र से वे सारे पापों का परिमार्जन करनेवाले ही नहीं, अपितु ऐहलौकिक समस्त सुखों को और पारलौकिक मोक्ष-सिद्धि को प्रदान करनेवाले हैं। इस जिज्ञासा पर देवशर्मा कहते हैं —

तव रूपाण्यनन्तानि चरित्राणि तथैव च।
स्मरतां भक्तिपूर्वं तु महाविभवदानि च॥ 54

हे वेङ्कटेश! आपके अनेकरूप और अनन्त चरित्र का स्मरण जो निष्ठापूर्वक करता है, उसके महापाप नष्ट करअपार विभव को देते हैं।

इहमुत्रातुल्यसौख्यप्रदानि महतामपि ।
अल्पानां किमु वक्तव्यं स्वरूपोद्धारकाणि च ।। 55

आपके चरित्र-माहात्म्य को यत्किञ्चित् जाननेवालों की भक्ति से संतुष्ट होकर आप इस लोक में अपार सुख-संपत्ति को देते हैं तथा परलोक में स्वरूप-उद्धारकरूप मोक्ष आदि पुरुषार्थ प्रदान करते हैं, तो आपके अनन्त गुणमाहात्म्य को अत्यधिक जाननेवाले ब्रह्मादिकों के सौभाग्य के विषय में क्या कहना है?

प्रपद्ये पुण्डरीकाक्षमीशं भक्तानुकम्पिनम् ।
लोकोत्तरं लोकनाथं परात्परतरं विभुम् ।। 56

जो कमलदल-सरीखे नेत्रवाले हैं, सारे जगत के प्रभु हैं, भक्तों पर अतिशय दया करनेवाले और उनको अपने तत्त्वज्ञान दिलाकर संसार सागर से तारनेवाले हैं, निखिल जगन्नायक हैं, रमा, ब्रह्मादिकों से अत्यन्त उत्तम हैं तथा अनन्तरूप (अवतार) धारण करनेवाले हैं, मैं उन श्रीनिवास की शरण में हूं।

विशेषार्थ —

1. ईं शास्तीति ईशः = लक्ष्मी के नियामक हैं।
   'ईकारेणोच्यते रमा' ऐसा कोश में है ।
2. विविधं भवतीति विभुः'— अनेक रूपों का धारण करनेवाले हैं अथवा सर्वत्र व्याप्त हैं ।
3. परात्परतरं, 'एष उ एव परोवरीयान् उद्गीथः स एष आत्मा' उसी भक्तवत्सल के लिये इस तरह शास्त्रों में आता है ।
4. पुण्डरीके इव अक्षिणी यस्य = कमलदल-जैसे नेत्रवाले हैं, या पुण्डरीकः अग्निः स एव अक्षि यस्य = जिसका तीसरा नेत्र अग्नि है वह नृसिहरूप। या पुण्डरीके अक्षि यस्य=पुण्डरीक मुनि पर कृपादृष्टि रखनेवाले।

पुण्यात् त्वद्दयया लब्धं विशेषादकुतोभयम् ।
भगवन्तं विश्ववन्द्यं भूतभव्यभवत्प्रभुम् ।। 57

पूर्वार्जित पुण्य-प्रताप से, आपकी कृपा से तथा गुरु के अनुग्रह से षडैश्वर्यं सम्पूर्ण, अखिल जगत के वन्दनीय और भूत-भविष्य-वर्तमान काल के समस्त पदार्थों के प्रभु श्री वेङ्कटेश ! आप मुझे प्राप्त हुए हैं । अब मुझे तनिक भी भय नहीं । मैं सब प्रकार से आप की शरण में आ पड़ा हूं ।

विशेषार्थं —

भगवान श्रीहरि अतीत-आगामी-वर्तन कालिक प्राणियों का नियामक हैं। अथवा 'भूत-प्रभूतं-भव्यं = मङ्गल यस्यात्' – सर्वाधिक मंगल प्रदान करनेवाले । (भूतभव्यश्चासौ भवत्प्रभुश्च)

यतो भूतानि जायन्ते येन सर्वमिदं ततम् ।
येन जातानि जीवन्ति यं प्राप्स्यन्ति महालये ।। 58

जिनके द्वारा महदादि समस्त तत्त्व रचे गये हैं (या सब जीवों की उत्पत्ति होती है), यह जगत जिनसे व्याप्त है, सब प्राणी जिनके कारण जीते हैं (पालित हैं), महाप्रलयकाल में ये समस्त जीव जिन ब्रह्मादि के आश्रयभूत परब्रह्म में लय हो जाते हैं, उन श्री श्रीनिवास की मैं शरण लेता हूं ।

विशेषार्थ —

संसार के सभी जीव एवं समस्त पदार्थ भगवान श्रीविष्णु से ही उत्पन्न होते हैं, वे ही सर्व जगत का भरण-पोषण करते हैं और ये जीव व पदार्थ उन ही में पर्यवसित हो जाते हैं। इस दृष्टि से श्रीहरि ही इन सब के एकमात्र प्रभु हैं। उन्हीं की सबमें सार्वभौम सत्ता एवं व्यापकता सिद्ध है। इस विषय में 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति' – 'उत्पत्ति स्थिति संहाराः नियति-र्ज्ञानमावृत्तिः' — इत्यादि शास्त्रीय प्रमाण है।

दीपविद्युत्तारकाग्निचन्द्रसूर्यातिदीप्तिमान् ।
योगायोगैर्योग्ययोगैः दृश्योऽदृश्यः श्रुतोऽश्रुतः ।। 59

दीप, बिजली, नक्षत्र, अग्नि, चन्द्र, सूर्य आदि के प्रकाश को अतिक्रमण करनेवाले अत्यधिक प्रकाशवान्, योगियों के ध्यान-योगादि साधन के द्वारा यथासाध्य गोचर होनेवाले, तत्साधनाहीन अयोग्य व्यक्तियों को सर्वथा अगोचर (अदृश्य) होनेवाले आप श्री वेङ्कटेश की मैं शरण पाता हूं।

विशेषार्थ —

'सूर्यकोटिसमप्रभः'
यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ।
गीत अ. 15, श्लो. 12
"सयोऽतोऽश्रुतः अगतः अमतः असतः अदृष्टः ......
"श्रोता मन्ता द्रष्टा आदेष्टा घूष्टा विज्ञाता प्रज्ञाता"

योग-ध्यानादि से ब्रह्मनिष्ठों के चित्त में भगवान गोचर होते हैं। उनके नेत्रों को दिखाई देते हैं और कानों को सुनाई पड़ते हैं। परन्तु जो निष्ठा रहित हैं, वे न तो उन्हें जान सकते, न देख सकते और न सुन सकते हैं। तेजोमय भगवान श्रीहरि से ही तेज-पुञ्ज उत्पन्न हुआ। अतः सूर्यकोटिसमप्रभः' इत्यादि प्रमाण उपयुक्त है।

इति श्रीमदादित्यपुराणे श्रीवेङ्कटेशमाहात्म्ये
'नानावतारवर्णनं' नाम तृतीयोऽध्यायः ।

श्रीमदादित्य पुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटेश माहात्म्य में
'नानावतार वर्णन' नामक तृतीय अध्याय समाप्त हुआ।

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

चतुर्थ अध्याय

।। अथ भगवतो विश्वरूपादि वर्णनम् ।।

इसके अनन्तर भगवान के विश्वरूपादि का वर्णन करते हैं।

देवशर्मोऽवाच —

श्रीवेङ्कटेश ! मत्स्वामिन् प्रणतार्तिप्रणाशन ।
ज्ञानानन्ददयापूर्ण ! विज्ञापनमिदं शृणु ।। 1

मेरे स्वामी! प्रणतजनों के दुःख को दूर करनेवाले, ज्ञान, आनन्द और दया से परिपूर्ण हे श्री वेङ्कटेश ! आप कृपा करके मेरे इस निवेदन को सुनिये ।

सम्बन्ध — 'यतो भूतानि जायन्ते' – पुरुषसूक्त प्रतिपाद्य भगवान श्रीवेङ्कटेश की स्तुति पुरुषसूक्त के अनुसार देवशर्मा करते हैं।

यन्मुखं ब्रह्मजनकं यद्बाहू क्षत्रकारणे ।
यदूरुभ्यां वैश्यकुलं पादाभ्यां सेवकोऽभवत् ।। 2

हे वेङ्कटेश ! आपके जिन मुख ब्राह्मणों का जन्म-स्थान है, जिनकी भुजाएँ क्षत्रिय कुल के लिये कारण है, जिनके उरू (मध्यभाग) से वैश्य कुल उत्पन्न हुआ तथा जिनके चरणों से सेवक (शूद्र) पैदा हुए ।

विशेषार्थ —

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।

ऋग्वेदादि मे 'पुरुषसूक्त' के उक्त मन्त्रानुसार चार वर्णों की उत्पत्ति उस परम पुरुष से ही बतलायी गयी हैं।

शिरसो द्यौरभूद्यस्य सहस्रांशुश्च नेत्रजः ।
मुखात् पुरन्दरोऽग्निश्च दिग्देवाः श्रोत्रतोऽभवन् ।। 3

सिर से स्वर्गलोक, नेत्र से सूर्य, मुख से इन्द्र और अग्नि तथा कान से दिक्पाल उत्पन्न हुए ।

विशेषार्थ —

इस श्लोक में –
'चक्षोः सूर्यो अजायतः मुखादिन्द्राश्चाग्निश्च
शीर्षो द्यौः समवर्तत दिशः श्रोत्रात् ।'
यह मन्त्रार्थ निहित है ।

शीतांशुर्मनसो जातः प्राणाद्वायुरजायत ।
अन्तरिक्षं नाभितोऽभूत् पद्भ्यां भूमिरजायत ।। 4

श्रीमन्नारयण के मन से चन्द्र, प्राण से वायु, नाभि से अन्तरिक्ष तथा चरणों से पृथ्वी आविर्भूत हुए।

विशेषार्थ —

'चन्द्रमा मनसो जातः । प्राणाद्वायु रजायत ।
नाभ्या आसीदन्तरिक्षम् । पद्भ्यां भूमिः ।
इस प्रकार मन्त्रार्थ है ।

यत्कोमलाङ्गैरभवन् भुवनानि चतुर्दश ।
कोमले नाभिकमले ब्रह्माण्डं ब्रह्मधिष्ठितम् ।। 5

आपके सुन्दर निर्मल कोमल अंगों से चौदह भुवन उत्पन्न हुए । आपके कोमल नाभि-कमल से ब्रह्मा का मूल निवासस्थान अद्भुत ब्रह्माण्ड हुआ ।

विशेषार्थ —

1. इसमें 'तथा लोकान् अकल्पयत्' मन्त्र का अर्थ बताया गया है।

2. यद्भिया वाति वातश्च भानुस्तपति यद्भिया।
इन्द्रश्चन्द्रः तथा कालः स्वे स्वे कार्ये चरन्ति ते ।।
स एव परमोविष्णुः' (आदिपुराण 13, 50, 51)

भगवान के अंगों से उत्पन्न हुए वायुदेव, सूर्य, इन्द्र, चन्द्र, काल – इत्यादि देवगण परमात्मा के अनुग्रह प्राप्त करने के लिये तथा उनके भय से भी अपने-अपने नियत कर्मों में सावधानी से लगे हुए हैं।

3. तथा विष्णो र्नाभिरूढमब्जमासीदनुत्तमम् ।
कीटाऽणुकीटवच्चाहं कमलात् प्रज्वलद्युतेः ।।
ततोऽभवं महाभाग प्रभाते संप्लुतोदके।
दिशो विलोकमानस्य चत्वारि वदनानि मे ।।
आदिपुराण 10; 5-6-7

"भगवान की नाभि से अनुपम कमलकोश निकला। उस असाधारण कमल से प्रलयकालीन प्रभात के समय मेरा जन्म हुआ। दिशाओं को देखते-देखते मेरे चार मुख हुए।

श्रियःपते कोऽपि जयेन्न मायां
यया जनो मुह्यति वेदनार्थम् ।
तं निर्जितात्मानमनन्तमायिनं
मायापहं त्वां शरणं प्रपद्ये ।। 6

हे लक्ष्मीवल्लभ वेङ्कटेश! आपकी रची हुई जो माया है, उसकी वास्तविकता को कोई न जान सकता है और न जीत सकता। सब लोग माया के, मोह के बन्धन में बाँधनेवाले होते हैं। भले ही तत्त्वज्ञानी क्यों न हो, आपकी माया की सामर्थ्य को न जानकर वह उससे मोहित हो ही जाता है, अतएव आप

समस्त जीवों को जीतनेवाले हैं और अनन्त माया (इच्छामय) रूपवाले हैं। केवल अपने भक्तों को आप प्रकृति-बन्धन से और माया-जाल से मुक्त करते हैं, ऐसे स्वाधीन प्रभु श्रीवेङ्कटेश ! मैं आपकी शरण में आ पड़ा हूं, अज्ञानरूपी माया से मुझे बचाइये।

विशेषार्थ —

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैः एभिस्सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ।।
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ।।

गीता अ॰ 7, श्लो. 13-14

सत्व, रज और तम — इन तीनों गुणों से मोहित यह सम्पूर्ण जगत इन भावों से परे मुझ अविनाशी को नहीं जानता। मेरी इस तीन गुणोंवाली दैवी माया का तरना कठिन है। पर जो मेरी शरण लेते हैं वे इस माया से पार हो जाते हैं।

'माया' भगवान की इच्छा या संकल्प है। यही अज्ञान और अविद्या के रूपमें जीव को लगी रहती है और बन्धन में बांध देती है। सांसारिक बन्धन में बँधे हुए जीव न तो अपनी स्थिति को स्वयं जान सकता है और न ही ईश्वर की शक्ति-सामर्थ्य को। यह माया भगवान के अधीन है। जब तक भगवान स्वयं इस बन्धन से मुक्त नहीं करेंगे, तब तक जीव के लिये इस संसारचक्र की निवृत्ति नहीं होती। अतएव मयाधीश्वर परमात्मा के चरणों की शरणागति ही एकमात्र निष्कण्टक एवं निर्विघ्न उपाय है। शरणापन्न पर बडी दुस्तर त्रिगुणी माया का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि वह अपने को भगवान के श्रीचरणों में सौंप देता है। उसके जीवन का स्वरूप ही है — 'भगवत्कैंकर्य।'

'मामेकं शरणं व्रज' – भगवद्गीता में भगवान् अर्जुन के प्रति अपने उपदेशों में बार-बार शरणागति की बात कहते हैं – इस संसार के संतरण का कोई उपाय नहीं, जो मेरी शरण में आते हैं वे इसे तुरंत पार कर जाते हैं।

नमोऽतर्क्याय तर्क्याय सगुणायागुणाय च।
नमोऽनन्तायान्तकाय वेद्यावेद्यस्वरूपिणे ।। 7

हे श्रीनिवास! आप तर्क, अनुमान आदि से न जानने योग्य हैं, फिर भी श्रद्धालु भक्तों द्वारा उनकी योग्यतानुसार ऊहा करने (संकेत पाने) के विषय बन जाते हैं। दया, प्रसन्नता आदि सद्गुणों से सम्पन्न हैं, निर्दयता आदि दोषों एवं सत्व आदि गुणोंसे रहित हैं, अविनाशी हैं, भक्तोंके सांसारिक दुःखों को दूर कर अनन्त सुख (मोक्ष) देनेवाले हैं, पापाचारियों का नाश करनेवाले हैं, प्रेमी संत पुरुषों द्वारा यथासाध्य जानने के स्वरूपवाले हैं, किंतु दुर्जनों से सर्वथा न जाने जा सकनेवाले हैं, (अथवा वेदों से प्रतिपाद्य हैं, इसलिये जानने योग्य हैं, वेदों से भी पूर्णतया न प्रतिपाद्य हैं, इसलिये न जान सकने के स्वरूप वाले हैं)। ऐसे भगवान श्रीनिवास को नमस्कार है।

विशेषार्थ —

निरीहोऽनन्तलीलश्च निर्गुणः सगुणाकृतिः।
स्रष्टा कर्ता च संहर्ता यथार्थ्यं वेदकस्तव ।। आदिपुराण 15-30

किसी में आसक्ति नहीं होनेवाले, अनन्त अद्भुत लीलामय, प्राकृत सत्त्वादि गुणों से रहित, ज्ञानानन्द स्वरूप, सृष्टि-स्थिति-संहार के कर्ता — इस प्रकार विचित्र-धर्म से युक्त आपके यथार्थ स्वरूप को कौन जान सकता है? अर्थात् कोई नहीं जान सकता।

2. कभी-कभी ईश्वर के गुण परस्पर विरुद्ध-से लगते हैं। एक ही वस्तु में ऐसा विरोधभाव सामान्यतः तर्क सम्मत नहीं, परन्तु ईश्वर के सम्बन्ध में यह बात लागू नहीं होती, क्योंकि भगवान के लिये कुछ भी असम्भव नहीं, वे सर्व समर्थ हैं, असम्भव भी सम्भव हो जाता है। वे कहीं सगुण हैं तो कहीं निर्गुण, कहीं व्यक्त हैं तो कहीं अव्यक्त, कहीं संवेद्य हैं तो कहीं अवेद्य, कहीं अणु हैं तो कहीं महत्, कहीं तर्क्य हैं तो कहीं अतर्क्य हैं। परमात्मा की ऐसी ही महिमा है।

सम्बन्ध – श्रीवेङ्कटेश्वर के अनुग्रह की प्राप्ति के लिये बताते हैं ।

सिद्धिप्रदस्त्वं किल देववर्यं
त्वत्प्रेरितोऽहं तव पादमाप्तः ।
त्वत्पादभक्तो बहिरन्तरात्मन्
किमस्ति विज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः ।। 8

भक्तों की मनःकामनाओं को पूर्ण करनेवाले ब्रह्मादि सब देवों में श्रेष्ठतम हे वेङ्कटाचलपति ! आपसे प्रेरित होकर आप का अनुग्रह प्राप्त करने हेतु आपके चरणकमलों का आश्रय लेनेवाला मैं आपका चरण सेवक (देवशर्मा) भला, आप सर्वान्तर्यामी, सर्वसाक्षी एवं सब जीवजाल के बाह्याभ्यन्तर में स्थित प्रभु से अपने मन की क्या बात कहूं ? कुछ भी नहीं ।

सुखं नृपालाः सुर देवमुख्याः
ब्रह्मादयस्ते पदपद्मसंश्रिताः ।
त्वत्किङ्करास्तेऽपि पृथक् विभाविताः
कुरुष्व शं भो ऋषिदेवमित्र ।। 9

उत्तम सुखानुभोग से युक्त हे श्रीपति ! आपके चरण-कमलों पर आश्रित आपके भक्त अम्बरीष आदि राजा तथा इन्द्रादि देवताओं के मुख्य ब्रह्मादि देव अपनी-अपनी पात्रता के अनुरूप आपके कृपा-विशेष से सुख-भोग का अनुभव करते हैं । उन ऋषि-मुनियों और देवताओं के कल्याणकारक हे श्रीहरि ! मुझे भी, इस संसार ताप का प्रशमन कर सुख प्रदान करें ।

विशेषार्थ —

'शं भो' इस शब्द का अर्थ है– शं = सुख को, भावयति = उत्पन्न करनेवाला अथवा शं भवति येन शम्भुः = सत्पुरुषों को सुख देनेवाला है।

सम्बन्ध – संसाररूपी महारण्य में भटकनेवाला मुझे आपके चरण कमलों की प्राप्ति ही नित्य-सुख एवं परम-शांति देनेवाली कहते हैं ।

> उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गान्तकोग्र-
> व्यालाकृष्टे विषयमृगतृष्णात्मगेहोरुभारः ।
> द्वन्द्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः
> पादौ शस्तौ शरणद कदा यामि कामोपसृष्टः ।। 10

महारण्य (सघन वन) जितना भयानक है, यह संसार भी उतना ही दुःखदायक है। अतः यहाँ संसार की तुलना महारण्य से करते हैं।

अरण्य – जहाँ कोई रक्षक नहीं होता, अनेक कष्ट-क्लेशों से भरा दुर्गम मार्गवाला, क्रूर-सर्पों, दुष्ट-जन्तुओं, भयंकर दावाग्नि, भ्रमोत्पादक मृगतृष्णा इत्यादि से संकुलित अत्यन्त डरावना है।

इसी तरह संसार भी – रक्षक रहित, आध्यात्मिकादि त्रिविध तापों से युक्त, दारिद्र्य-ऋण-रोगादि से भरपूर, तरने में अत्यन्त दुरूह, आत्म-विकास के बाधकरूप काम-क्रोध, जय-पराजय, मान-अपमान आदि द्वन्द्वों से अति दारुण-दुःखों के कारण भयावह है। साथ ही सती-सुत, धन-संपत्ति, राज-वैभव सुख-भोग – इनके प्रति मोह, अनेक आकांक्षाएँ – इनके पूर्ण न होने से शोक-संताप, इतने कष्ट-क्लेशों को सहने में असमर्थता – इत्यादि अनेकानेक झंझटों का वातावरणवाला है।

हे श्रीवेङ्कटेश प्रभो ! आशा के जालवाले इस संसाररूपी अरण्य में आ पड़ा हूं, इस जंजालसे तरने का मार्ग नहीं जानता। ऐसा मैं अज्ञानी आपके प्रशस्त और तारकरूप पाद-पद्मों की शरण कब प्राप्त करूँगा ? — इस अत्यंत कौतूहल में रहता हूं।

भवाब्धितारं कटिवर्तिहस्तं
स्वर्णाम्बरं रत्नकिरीटकुण्डलम् ।
आलम्बिसूत्रोत्तममाल्यभूषितं
नमाम्यहं वेङ्कटशैलनायकम् ।। 11

भव-सागर से तारनेवाले हैं, अपने चरण-सेवकों को संसाररूपी समुद्र कटि तक गहरे पानी के समान सरलता से पार कराने का संकेत कराते हुए कटिभाग पर अपना हाथ रखे हुए, हैं सोने की तरह चमचमाते पीतवर्ण के वस्त्र पहने हैं, रत्न निर्मित किरीट-कुण्डल धारण किये हैं, नाभि तक लटकते यज्ञसूत्र (जनेऊ), तथा अज्ञानादि दोषों की निवृत्ति-हेतु उत्तम सालिग्राम आदि गाँठोंवाली चरण पर्यन्त लटकती वनमाला से सुशोभित हैं, ऐसे श्री वेङ्कटाचल के स्वामी को मैं प्रणाम करता हूं ।

जाम्बूनदाभं गुणिभिर्वरेण्यं
वक्षःस्थले दक्षकुचोर्ध्वभागे ।
श्रीवत्सलक्ष्म्यङ्कित दिव्यरूपं
श्रीवेङ्कटाधीशमहं प्रपद्ये ।। 12

जो सुवर्ण-जैसे लावण्य तेज से मण्डित हैं, भक्ति-ज्ञान-वैराग्यादि साधनों से ब्रह्मादि देवश्रेष्ठों द्वारा स्तुत्य हैं तथा वक्षःस्थल पर दाहिने स्तन के ऊपर लक्ष्मीस्वरूप 'श्रीवत्स' चिह्नांकित अलौकिक दिव्य रूपवाले हैं, उन श्रीवेङ्कटाचल के प्रभु की शरण पाता हूं ।

विशेषार्थ —

'प्र' इत्युपसर्गात् 'पद-गतौ' इस धातु से 'प्रपत्ति' शब्द निष्पन्न है।

संस्थितं सुविमानान्तर्विरिञ्चाद्यैश्च सेवितम् ।
चामरैर्व्यजनैश्छत्रैः शरदिन्दुमुखं भजे ।। 13

जो सुन्दर प्रशस्त (गर्भालय के ऊपर स्थित स्वर्ण-शिखर 'आनन्दनिलय' कहलानेवाले) विमान में विराजमान हैं, ब्रह्मा-रुद्रादि देवताओं द्वारा चामर-व्यजन-छत्र आदि से सुसेवित हैं तथा शरतकालीन चन्द्रमा की भाँति जिनके मुख की कांति है, ऐसे प्रभु वेङ्कटेश का मैं ध्यान करता हूं।

भक्तानुकम्पी गरुडध्वजस्तत्-
स्कन्धं समारुह्य किरीटकुण्डली ।
पीताम्बरश्चारुसुमन्दहासः
श्रीकौस्तुभश्चक्रवराऽभयाङ्कितः ।। 14

हे प्रभो! भक्तों पर कृपा करनेवाले, गरुडध्ज, गरुड के कन्धे पर आरूढ होकर पीतपट, किरीट, कुण्डल एवं प्रकाशमान कौस्तुभमणि धारनकर श्रीदेवी सहित शङ्ख-चक्र-वरद-अभय मुद्रा — इनसे युक्त, सुन्दर मन्दहास वदनारविन्द आप चतुर्दश भुवनों के भक्तों को ज्ञान का उपदेश देते हुए, उनका उद्धार करने में सदा तत्पर हैं।

विशेषार्थ —

'चर = गतिभक्षणयोः' ये ये गत्यर्थकाः ते ते ज्ञानार्थकाः — यहां इस तरह कहने का तात्पर्य है कि भक्तों को ज्ञान का उपदेश देते हैं।

सजयो विजयश्चैव दृश्योऽदृश्यः श्रुतोऽश्रुतः ।
सम्भाषणोऽभाषणश्च वाच्योऽवाच्यो वृषोऽवृषः ।। 15

आप जहाँ संचरण करते हैं वहां आपकी जय होती है और अपजय भी। यह कैसा संभव है ? तात्पर्य यह है कि आप सर्वत्र सर्वदा पूर्ण जयशील होते हुए भी भक्तों की भावना के आगे हारकर उनके उद्धार के निमित्त अपनी ही इच्छा से उनके अधीन हो जाते हैं। अदृश्य होते हुए भी आप भक्तों को दर्शन देते हैं। आप स्वयं तो कहते नहीं, परंतु वेदों और आपके कथा-श्रवणादि द्वारा उन भक्तों को सुनाये जाते हैं। आप दुराचारी व्यक्तियों को न दीखते हैं, न ही कथा श्रवणादि के रूप में गेय हैं। किंतु केवल भक्तों के द्वारा आपके गुण-माहात्म्य मुखरित करते हैं। आपकी चर्या दुर्जनों के मुख से कभी नहीं निकलती। आप पूर्णरूप से वाच्य (कहने योग्य) न होने पर भी जो योग्य ज्ञानी होते हैं, उनको शास्त्राध्ययन द्वारा यथासाध्य प्रतिपाद्य बनते हैं। अपात्र व्यक्ति को तो आप अपना स्मरण ही नहीं आने देते हैं। आप काम-क्रोधादि षड्रिपुओं से रहित हैं और षड्गुणैश्वर्यादि से परिपूर्ण हैं। अतएव भक्तों पर सतत सर्वाभीष्ट की वर्षा करते रहते हैं।

विशेषार्थ —

भगवान श्रीहरि भक्तों के वशवर्ती हैं – इन प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया जाता है –

'नश्यतां दूरगं सर्वदाऽप्यात्मगम।'
'वश्यतां स्वेच्छया सज्जनेष्वागतम्।'

अर्थात् — हे भगवान ! आप अपने भक्तों की आपदाएँ दूर करें और सज्जनों के वश में रहें। (द्वादश स्तोत्र अ. 8, श्लो· 6-15)

त्वत्पादपद्मयुगलं श्रेयोनिस्सक्तमानसाः ।
विसृज्योभयतः सङ्गं ब्रह्माद्याः समुपासते ।। 16

हे वेङ्कटेश ! परम कल्याणरूप आपके आत्यंतिक अनुग्रह को पाने-हेतु ब्रह्मादि देवगण अपने पुत्र-मित्र-कलत्रादि लौकिक सुख तथा मोक्षादि अलौकिक सुख के आकर्षण से मुक्त होकर परम वैराग्य लेकर निश्चल मन से आपके पाद-पद्म-युगलों की उपासना भक्तिपूर्वक करते रहते हैं ।

विशेषार्थ —

विरक्त-भक्त अपनी सुख-सुविधा की कामना से भगवान का पूजन नहीं करता, क्योंकि भगवान के अनुग्रह के प्राप्त होने पर समस्त सुख स्वतः आ जाते हैं। जैसे किसान खेती करता है तो सिर्फ उसे धान्य ही नहीं मिलता, बल्कि उसके साथ घास-फूस (चारा) आदि भी मिलता है।

माहात्म्यं केन सन्दृश्यं रमाया रमणस्य ते ।
यत्किञ्चित् द्रष्टुमिच्छामि मायिनोऽमायिनश्शुभम् ।। 17

श्रीलक्ष्मी के साथ रमण करनेवाले हे श्रीवेङ्कटेश ! आप स्वेच्छा से जो जगद्रूप मोहजाल डालते हैं, उसका कोई प्रभाव आपके भक्तों पर नहीं पड़ता । आपके उस मंगलमय माहात्म्य को कौन जान सकता है ? फिर भी मैं आपके माहात्म्य को लेशमात्र देखना चाहता हूं ।

विशेषार्थ —

महामायेत्यविद्येति नियतिर्मोहिनीति च ।
प्रकृतिर्वासनेत्येवं तवेच्छवानन्त कथ्यते ।।

इस वाक्य के अनुसार श्रीहरि भक्तों के लिये भी माया रचते हैं। अर्थात् उनको भी कुछ समय तक अज्ञान में बाँधकर बाद मुक्तकर मोक्ष देते । इसलिये वे 'मायावी' कहे जाते हैं । जो उनके भक्त नहीं होते, वे मोक्षादि सुख नहीं देते । इस कारण वे 'अमायि' कहलाते हैं ।

सर्वप्राणिहृदावासं वासुदेवं जगद्धितम् ।
शरण्याग्रं देवदेवं प्रधानपुरुषं भजे ।। 18

जो सब प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं, सभी स्थलों में निवेशित हैं, वे 'वासुदेव' हैं। जो जगत के हित करने वाले हैं, रक्षा करनेवालों में अग्रगण्य हैं, ब्रह्मा-रुद्रादि देवताओं में अधिदेव हैं तथा क्षर-अक्षर पुरुषों में श्रेष्ठ हैं, ऐसे मूलपुरुष श्रीश्रीनिवास का मैं भजन करता हूं।

विशेषार्थ —

वानात्सूतेर्देवनाद्वासुदेवोवासाद्युतेश्छादनात् क्रीडया च ।
वलादसुत्वाद्दादृतो वर्तनाच्च तं वासुदेवं प्रवदन्ति वेदाः ।।

श्रुति की यह बात तीसरे अध्याय में 25 वें श्लोक में भी बतायी जा चुकी है ।

नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय परात्परतराय च ।
जगत्कारणकर्त्रे च साक्षिणेऽक्षयमूर्तये ।। 19

हे वेङ्कटेश! आप चक्षुरादि इन्द्रियों के अगोचर, (वेदादि से पूरी तरह न जाने जा सकने योग्य, अथवा व्यक्ताय=भक्तों को वेद आदि से यथासाध्य योग्यतानुसार प्रत्यक्ष होनेवाले), सर्वव्यापी, सम्पूर्ण प्राणियों में अति सूक्ष्मरूप में विद्यमान, ब्रह्मादि समस्त देवताओं में श्रेष्ठा लक्ष्मी जी से बढ़कर उत्तम, ब्रह्मा-रुद्रादि प्रसिद्ध जगत्-कर्ताओं के भी कर्ता तथा सारे संसार के सभी कार्यों को साक्षीरूप में देखनेवाले हैं। ऐसे अनित्यत्व आदि चतुर्विध नाश रहित सनातनरूप आपको प्रणाम हैं।

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय योगिहृत्पद्मवासिने ।। 20

जो भक्तों को परम पुरुषार्थरूप मोक्षादि प्रदान करने से 'वासुदेव' कहलाते हैं, जो भक्तों के सारे संकट का नाश करने से 'सङ्कर्षण' कहलाते हैं, जो उत्कृष्ट ज्ञानप्रद एवं प्रकाशस्वरूप होने से 'प्रद्युम्न' कहे जाते हैं, जो भक्तों के वशीभूत होने योग्य अर्थात् भक्तों के हृदयों में सदा निवास होने से 'अनिरुद्ध' नाम से अभिहित हैं तथा जो सनकादि महा योगियों के हृदय कमलों में विराजमान हैं, ऐसे श्रीपति को मेरा नमस्कार है।

विशेषार्थ —

1. वासवाद्वसतेश्चापि वासुदेवः स एव हि —

समस्त प्राणियों को जीवित करके सब में वास करने तथा भक्तों को मोक्षप्रद्र होंने से वासुदेव कहलाते हैं।

2. सर्वेषां कर्षणात्सोऽपि सङ्कर्षण उदाहृतः।

भक्तों के अनिष्ट-पाप-क्लेशादि को नष्ट करने से 'सङ्कर्षण' कहलाते हैं।

3. प्रकृष्टद्योतनत्वात्तु प्रद्युम्न इनि कीर्तितः –

दिवं+मनति = द्युम्न; 'म्ना=अभ्यासे' इति द्युम्नं यशस्तु, प्रकृष्टं द्युम्नं यस्य = प्रकृष्ट कीर्तिवाले।

4. अनिरुद्धः – सर्वगतत्वात्=सर्वत्र व्याप्त होने से अनिरुद्ध है। अथवा निरुद्धो न भवतीति=अनिरुद्धः=किसीसे निग्रह किये जा सकने योग्य। अथवा अनिरुद्धान् दधाति=संसार से विमुक्तों का भरण-पोषण और धारण करने से अनिरुद्ध हैं; ज्ञानियों के द्वारा हृदय में निग्रह करने योग्य हैं अर्थात् भक्तों के हृदय को सदा के लिये विशेषरूप से आवास बनाकर रहने के कारण अनिरुद्ध या जो भक्त नहीं, उनके हृदय में आवास न करने से अनिरुद्ध हैं।

पञ्चभूतविसृष्टाय पञ्चमात्रात्मकाय च ।
ज्ञानकर्मेन्द्रियेशाय हृषीकेशाय ते नमः ।। 21

पृथ्वी आदि पांच भूतों को उत्पन्न करनेवाले (या पंचभूतों से रहित अर्थात् भौतिक शरीर रहित), शब्द-स्पर्श-रूप-रस-ग्रंध — इन पांच तन्मात्रों (विषयों) के अभिमानी देवताओं के अन्तर्यामी, मुखादि पांच कर्मेन्द्रियों के अभिमानी देवताओं के स्वामी (प्रेरकस्वरूप अर्थात् सभी प्राणियों के शरीर-इन्द्रिय-मन आदि के नियामक) तथा रमा–ब्रह्मा–रुद्र-इन्द्रादि देवताओं को प्रसन्न करने के कारण 'हृषीकेश' कहलानेवाले आपको प्रणाम है।

विशेषार्थ —

1. पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश — ये पंच महाभूत हैं। पृथ्वी आदि की पांच तन्मात्राएँ हैं। इनके धरादेवी, वरुण, अग्नि और महागणपति — ये पांच क्रमशः अभिमानी देवता हैं।

2. 'योऽसावशरीरः प्रज्ञात्मा' इस श्रुति से श्रीहरि पांच भौतिक शरीर रहित हैं तथा ज्ञानानन्दस्वरूप और दिव्य शरीरवाले हैं।

3. बुद्धीन्द्रियाणि चक्षुः श्रोत्रघ्राणरसवत्वगाख्यानि ।
वाक्पाणिपादपायूपस्थाख्यानि कर्मेन्द्रियाण्याहुः ।।

श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना और नासिका — पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं।
हाथ, पैर, मुख, गुदा और उपस्थ — पांच कर्मेन्द्रिां हैं ।

4. इन इन्द्रियों के लिये अपने-अपने अभिमानी देवता होते हैं।

(क) आँख – सूर्य; कान – दिशाएँ; नाक – अश्वनीदेवता;
जीब - वरुण; त्वचा – वायु ।

(ख) वाणी - अग्नि; हाथ – दक्ष; पैर – जयंत;
गुदा – मित्र; उपस्थ - मनु प्रजापति ।

5 हृषीकेशः — हृष=तुष्टौ, हृषी=प्रसन्न; ई = लक्ष्मी, क=ब्रह्मा, ईश=रुद्र -- आनन्द युक्त तथा लक्ष्मी और ब्रह्मादिकों के स्वामी या लक्ष्मी, ब्रह्मा और रुद्रों को आनन्द देनेवाले अथवा इन्द्रियों के नियामक हृषीकेश कहलाते हैं।

विष्णवे वैष्णवेशाय जिष्णवे जयदायिने ।
इष्टप्रदाय चेष्टाय कृष्णायोत्कृष्टकर्मणे ।। 22

जो सर्वत्र प्रवेशकर व्याप्त होने से विष्णु हैं, विष्णु-भक्तों के नियामक हैं, सब को जीतनेवाले हैं, काम-क्रोधादि को जीतने की इच्छावाले अपने भक्तों के मनोरथ को पूर्णकरनेवाले हैं, भक्तों को सर्वाभीष्ट-सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं, भक्तों के अत्यंत प्रिय हैं, वासिष्ठ कृष्ण (वेदव्यास) और यादव कृष्ण (यशोदा के पुत्र) रूप धारण करनेवाले हैं, तथा जगत की रचनादि जैसे महान् कार्यों को संपन्न करनेवाले हैं या दुष्ट दैत्यों का संहाररूप उत्कृष्ट कर्म करनेवाले हैं, ऐसे भगवान श्रीवेङ्कटेश को प्रणाम है ।

क्षराक्षरोत्तमायाथ स्वक्षरेशाक्षराय च ।
कुक्षिस्थपक्षिसङ्घाय क्षयाक्षयकराय ते ।। 23

जो ब्रह्मा-रुद्रादि क्षरों एवं अक्षररूपा लक्ष्मी से बढ़कर श्रेष्ठ हैं, शोभनाक्षर युक्त वेदों के वर्णाभिमानी देवताओं से उत्तम हैं, सारे जीव-समुदाय को अपने उदर (कुक्षि) में रखते हैं, पाप-कर्म करनेवालों का विनाश एवं साधु-संतों का कल्याण करनेवाले या अपने भक्तों के पाप-ताप को नष्टकर पुण्य की वृद्धि करनेवाले हैं, उन श्रीवेङ्कटाचलपति को प्रणाम है ।

विशेषार्थ —

1. द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।।
गीता अ. 15; श्लो. 16-17

ब्रह्मरुद्रादयो देवाः शरीरक्षरणात् क्षराः ।
लक्ष्मीरक्षरदेहत्वात् अक्षरश्रीरुदाहृता ।।

—अर्थात् इस लोक में क्षर और अक्षर—दो पुरुष (चेतन) हैं। वे ये हैं—ब्रह्मा-रुद्रादि देवों के शरीर का नाश होता है, अतः वे क्षर हैं। इस कारण वे संसारी भी कहे जाते हैं। लक्ष्मीजी का शरीर कभी नष्ट नहीं होता; अतः वे अक्षर हैं। इन क्षर (नाशवान्) और अक्षर (अविनाशी) दो पुरुषों के अतिरिक्त स्वयं 'श्रीहरि' सबसे उत्तम हैं। वे तीनों लोकों में व्याप्त एवं सबके रक्षक हैं। अतः वे सनातन, सर्वेश्वर, परब्रह्म तथा परमात्मा कहलाते हैं।

2. संशान्तसंविदखिलं जठरे निधाय
लक्षीभुजान्तरगतः स्वरतोऽपि चाग्रे ।

भगवान श्रीहरि प्रलयकाल में सम्पूर्ण जगत को अपने उदर में समा लेते हैं और पक्षिप्राय सज्जन-समुदाय को तो नाशरहित आवास रूप मुक्तिस्थान देते हैं, अथवा 'क्षि=निवासगत्योः' गत्यर्थक ज्ञानार्थकत्व होने के कारण नाशरहित मुक्ति का साधनरूप ज्ञान देनेवाले हैं।

3. 'हि' शब्द से –

द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।।

इस श्रुति में जीवों को सुपर्णत्व (पक्षी के रूपमें रहने) का संकेत है।

4. 'परिभूः स्वयंभूः यथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् ।
शाश्वतीभ्यः समाभ्यः' 'यच्चिकेत सत्यमित्तन्नमोघम्' ।।

आदि श्रुतियों द्वारा श्रीहरि को सत्य और उत्कृष्ट कार्य संपन्नवाला बताया गया है।

नमो भवाय भावाय धीराय परमेष्ठिने ।
वीराय वीरवपुषे ऋषये परमात्मने ।। 24

जो अपने भक्तों के लिये आवास योग्य मुक्ति-स्थान प्रदान करनेवाले हैं, सब की उत्पत्ति का कारण हैं, भक्तों के ज्ञान से संतुष्ट होने से धीर हैं, परम उत्कृष्ट स्थान में स्थित होने के कारण परमेष्ठी हैं, प्राणियों को शक्ति देनेवाले हैं तथा व्यास-कपिलादि ऋषिरूप हैं, ऐसे सर्वोत्तम एवं परब्रह्मस्वरूप भगवान श्रीवेङ्कटेश को नमस्कार है ।

विशेषार्थ —

1. भव:=संसार, अभव:=मोक्ष, अपने भक्तोंको मोक्ष देनेवाला है।

2. भावयतीति भाव:=विश्व की सृष्टि आदि करनेवाला अथवा भा: अवतीति भाव:=सूर्य-चन्द्रादिकों को प्रकाश देनेवाला या भानि=अवतीति=भाव:=तारों की रक्षा करनेवाला, प्रकाशित करनेवाला। अव= रक्षण–गति–कान्ति–प्रीति–तृप्ति-अवगम-प्रवेश-श्रवण-स्वामि-अर्थ–याचन–क्रिया- इच्छा- दीप्ति–अवाप्ति - आलिङ्गन–हिंसा–दान–भाग-वृद्धिषु- 'अव' धातु के इतने अर्थ होते हैं ।

3. धिया रमते इति धीर: = भक्तों के ज्ञान से प्रसन्न होनेवाला है।

4. परमे=हृदयरूपी आकाशमें, तिष्ठति=रहनेवाला परमेष्ठि है

5. 'रा-दाने' वीराय=वीर्यादि (सामर्थ्यादि) उत्पन्न करनेवाला।

नमो नारायणायाथ साधारणधराय च ।
नमः समर्हणार्हाय धरणीधररूपिणे ।। 25

प्रलयकाल में प्राणियों के आश्रय, महान् ब्रह्माण्ड को अत्यल्प पदार्थ (अणु) की भाँति अनायास ही धारण करनेवाले, ब्रह्मा-रुद्रादि देवगणों द्वारा विशेषरूप से पूजने योग्य, देवताओं के मुख्य शत्रु हिरण्याक्ष का वध करके पृथ्वी को अपने दांतों पर धारण किये हुए श्रीवराहावतारी श्रीमन्नारायण को प्रणाम है ।

अर्च्यार्च्यायाच्युतायापि वन्द्यावन्द्यपदाय च।
हिरण्यगर्भगर्भाय नमः शिवशिवाय च ॥ 26

इन्द्रादि देवता रुद्र का पूजन करते हैं। रुद्रादि देवता ब्रह्मा को पूजते हैं। ब्रह्मा लक्ष्मी की पूजा करते हैं। इन सबके पूज्य आप हैं। देश-कालादि की सीमा से परे आप रुद्र-इन्द्रादि देवताओं से स्तुत ब्रह्मादि से भी नमस्कृत चरणारविन्दवाले हैं। निखिल ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के कारणभूत चतुर्मुख ब्रह्मा को अपने गर्भ में रखते हैं। कल्याणप्रद देवगण को समस्त मंगलप्रद पदार्थ देनेवाले हे परम कल्याणमूर्ति वेङ्कटेश! आपको प्रणाम है।

स्कन्दाय शिपिविष्टाय सच्चिदानन्दरूपिणे।
कर्मज्ञाननिरूप्याय श्रुतिस्मृत्यालयाय ते ॥ 27

हे श्रीनिवास! आप मुक्तों के मोक्ष प्रदायक हैं, सूर्य की किरणों में विद्यमान होने से शिपिविष्ट हैं, सत्-चित्-आनन्द (निर्दोष-ज्ञान-सुख) स्वरूप हैं, सत्कर्म और सुज्ञान — इन दोनों साधनों का उपदेश करनेवाले हैं, (या कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड — इन दोनों शास्त्रों के प्रतिपाद्य हैं), हरि के सर्वोत्तमत्त्व को प्रभावित करनेवाली श्रुति-स्मृतियों के आश्रयस्वरूप हैं, ऐसे आपको नमस्कार है।

विशेषार्थ —

1. (क) शिपिविष्टं=शिपिषु=लकड़ी में जैसे आग अन्तर्निहित है, वैसे ही आप सर्व व्याप्त हैं। यही अभिप्राय है।
   (ख) पशवः शिपयः प्रोक्ताः तत्राविष्टोऽन्तरात्मना।
   शिपिविष्टः ततः प्रोक्तः सर्वान्तर्यामि संज्ञया ॥

इस स्मृति वचनानुसार पशुओं (समस्त प्राणियों में) अन्तर्यामी होने से 'शिपिविष्ट' कहे जाते हैं।

विशेषार्थ —

(ग) 'यज्ञो वै विष्णुः पशवः शिपिः यज्ञ एव
पशुषु प्रतितिष्ठति' — विष्णु ही यज्ञस्वरूप हैं।
इस प्रकार श्रुति भी कहती है।
शिपिः=पशु हैं। श्रीविष्णु ही पशुओं में प्रविष्टित हैं।

(घ) 'शिपयो रश्मयो मताः तेषुप्रवेशाद्विश्वेशः शिपिविष्ट इहोच्यते'—इस उक्ति से श्रीहरि सूर्य के किरणों में स्तिथ हैं।

2. 'सच्चिदानन्द आत्मेति मानुषैस्तु', 'आनन्दादयः प्रधानस्य'—इत्यादि के अनुसार श्रीहरि सच्चिदानन्दस्वरूप हैं।

3. 'श्रुतिस्मृती हरेराज्ञे' — वेद और स्मृतियाँ भगवान की आज्ञायें हैं। 'सर्ववेदाः यत्पदमामनन्ति। सर्वे वेदाः युक्तयः सुप्रमाणाः, ब्राह्मं ज्ञानं परमं त्वेकमेव प्रकाशयन्ते' — इत्यादि श्रुतियाँ भी प्रमाण हैं।

4. 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत' 'देवान्नमेत्' 'जुहुयात्' 'वेदना वर्तयीत्' – इत्यादि सत्कर्मों तथा हरि सर्वोत्तमत्वादि यथार्थ ज्ञान का आप उपदेश देनेवाले हैं।

5. श्रुति-स्मृतियों के आश्रय हैं। अर्थात् —
"एकः शास्ता न द्वितीयोऽस्ति श.स्ता"
"एको दाधार भुवनानि विश्वा"
"चतुर्भिस्साकं नवति च नामभिः"
"द्वाविमौ पुरुषौ लोके"
– इस तरह श्रुति-स्मृतियों के आश्रय श्रीहरि हैं।

6. सन्ध्यावन्दन, वेदाध्यन, देवयज्ञ, इत्यादि 'कर्म' कहे जाते हैं। जीवात्मा और परमात्मा की जिज्ञासा तथा श्रीहरि के सर्वोत्तमत्व को जानना ज्ञान है। इन दोनों में श्रीहरि ही प्रतिपाद्य हैं।

यमाय नियमायाथ दानव्रतकराय च।
तपस्विने च तप्याय तापत्रयहराय च ।। 28

हे श्रीनिवास ! आप अपने भक्तों को अहिंसा–अस्तेय–अपरिग्रह–ब्रह्मचर्य आदि सद्‌गुण देनेवाले हैं, जगत का नियमन करनेवाले हैं, सत्‌-पात्रों द्वारा किये जानेवाले विष्णु संबन्धी व्रत, दान इत्यादि से अत्यंत सुख देनेवाले हैं, बदरिकाश्रम में व्यास-कपिल-ऋषभ आदि तपस्वियों के रूप में तपस्या करनेवाले हैं, भक्तों के द्वारा तपस्या कराकर उन्हें अनुग्रहीत करनेवाले हैं तथा आध्यात्मिक–आधिभौतिक–आधिदैविक — इन तीन प्रकार के दु:ख हरनेवाले हैं। आपको नमस्कार है ।

विशेषार्थ — "नियमयतीति नियमः" "यमो-नियमनाद्धरिः" इस उक्ति के अनुसार नियामक हैं ।

यज्ञाय विश्वाय सुमङ्गलाय
सुतीर्थपादाय सुतारकाय ।
प्रपन्नलोकानुगुणाय शम्भवे
शुद्धाय शश्वद्‌गुणवर्ष्मणे नमः ।। 29

जो सत्‌-पुरुषों का उद्धार करने के निमित्त वैकुण्ठ छोड़ कर अन्य लोकों में अवतार लेनेवाले हैं, सर्वत्र व्याप्त एवं परम कल्याण स्वरूप हैं, जिनके चरणों में गंगादि सर्व तीर्थ समुपस्थित हैं (या गया, प्रयागादि तीर्थों में अपना पाद प्रतिष्ठापितवाले हैं) जो भक्तों को भव-सागर से तारनेवाले हैं, शरणागतों का शुभ फल देनेवाले हैं, प्राकृत दोषरहित और परिशुद्ध हैं तथा जिनका शरीर शाश्वत एवं ज्ञानानन्दादि सद्‌गुणों का भण्डार है, उन श्रीनिवास को नमस्कार है ।

विशेषार्थं —

"यज्ञभोक्तृत्वात्" यज्ञों द्वारा दी गयी हविरादि का सेवन करने से "यज्ञ" कहलाते हैं। अथवा "जपयज्ञश्चेज्यां तपो याज्य एव च"— गीता तात्पर्य के वाक्यानुसार याज्य होने से अर्थात् यज्ञ के भोक्ता होने से 'यज्ञ' कहलाते हैं।

2. ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरणः आत्मानं तमसः परम्॥

श्रीमद्भागवत के इस वचन के अनुसार श्रीहरि कृष्ण के रूप में (गोवर्धन बनकर) अपने-आप अपनी पूजा कर लेते हैं। अथवा राम के रूप में अहल्या को अपने पति गौतम के यहाँ पहुँचानेवाले हैं। 'यज्ञ = देवपूजा-सङ्गति करण-दानेषु' इस प्रकार धातु का प्रयोग है।

3. विश्वाय — विश=प्रवेशने 'तदेवानुप्राविशत्' इस श्रुति से विश्व में व्याप्त। 'वा=गतिगन्धनयोः' सर्वत्र प्रवेश करने से, या ज्ञान स्वरूप होने से विश्वरूप। 'टु=ओश्वि=गतिवृद्धयोः' इस तरह धातु है। विः=पक्षी=गरुड। श्वयति=गरुड पर सवारी करनेवाला। विशेषेण श्वयति=व्याप्त है। विशेषेण वर्धते=विशेषरूप से अपनी वृद्धि करता है। वायुदेव में अन्तर्यामी होकर रहनेवाला है। विश्वं वर्तयति=विश्व को अपने अधीन रखनेवाला। या जगत के कारणभूत होने से, अथवा जीवों के नियामक होने से 'विश्वरूप' है।

शरीरेषु प्रविष्टत्वात् विश्वो जीव उदीर्यते।
जीवस्य तदधीनत्वात् विष्णुः जीव इति स्मृतः॥

जीवों के शरीर में प्रवेश करने से "विश्वः"=जीव है। विष्णु के अधीन में जीव रहने से विष्णु "विश्व" कहलाता है। विशिष्ट सुख ज्ञान-बल-रूप होने से 'विश्वः' विष्णु आदि अर्थ समझने चाहिए।

4. मङ्गल = मङ्गलानां च मङ्गलम्।

5. तीर्थं = तीर्थे शास्त्रे अध्वरे क्षेत्रे – जलोपाध्यायमन्त्रिषु' — इस प्रकार कोश है।

कर्मिणेऽकर्मलिप्ताय ज्ञानाय ज्ञानदायिने ।
नित्यमुक्ताय हरये नित्यमुक्तिप्रदायिने ।। 30

जो इस जगत के सृजन, पालन और संहार के कारण हैं, जिन्हें दैत्य संहारादि से दोषलेपन लवलेश भी नहीं होता, जो भक्तों को यथार्थज्ञान (अपरोक्षज्ञान) देनेवाले हैं, जो नित्य मुक्त हैं, जो प्रणतों (शरणागतों) की पाप-पीडा को दूर करने वाले एवं भक्तों को(दु:ख निवृत्तिपूर्वक स्वरूप का आनन्द देकर) शाश्वत मुक्ति प्रदान करते हैं, उन भगवान श्रीलक्ष्मीपति को नमस्कार है ।

शुद्धं वपुः परमयोगमतुल्यसौख्यं
भूमिं द्युलोकमुत तत्त्वमतिं सुभक्तिम् ।
वैराग्यमन्यसुगुणान् भजकेषु दान-
शीलं दयोदयमहं शरणं प्रपद्ये ।। 31

सत्पुरुषों को साधनानुष्ठान के अनुसार परिशुद्ध शरीर देकर, अणिमा आदि आठ सिद्धियों से युक्त परम सुख प्रदान कर, उसके बाद सार्वभौमत्व, तदनन्तर स्वर्गीय सुख-भोग, बाद में पुण्य के क्षय होते ही फिर भूलोक-प्राप्ति, उसके बाद परम-योग अर्थात् समाधि की अवस्था, तत्त्वज्ञान एवं परमभक्ति, उसके द्वारा अत्यंत वैराग्य, सत्त्वादि गुण, क्रोधादि का अभाव इत्यादि प्रदान करनेवाले अत्यंत दयामय हे वेङ्कटेश ! आपकी मैं शरण लेता हूं ।

विशेषार्थ —

1. अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाष्टसिद्धयः ।।

2. योगध्यान ही परम योग है। समाधि की परिपक्वावस्था 'योग' है।

3. बीच-बीच में खण्डितकर, गुणों के अनुसार चिन्तन करना 'ध्यान' है।

4. एकाग्रचित्त से तैलधारावत् अविच्छिन्नतापूर्वक चिन्तन करना 'समाधि' है।

5. विषयों की आसक्ति को त्यागकर मन को अन्दर की ओर कर लेना 'धारणा' है।

6. चक्षुरादि इन्द्रियों को विषयों से हटा लेना 'प्रत्याहार' है।

7. त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकं
अश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्नाः
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥ (गीता अ. 9 श्लो. 20-21)

कुछ लोग तीनों वेदों में वर्णित सकाम कर्मों में लगे सोमरस का पान करके स्वर्गप्राप्ति के लिए (यज्ञों द्वारा) मेरी आराधना करते हैं। वे अपने पुण्य-कर्म से स्वर्गलोक प्राप्त कर देवभोग भोगते हैं। उस विपुल स्वर्गीय विषय-सुख को भोगकर पुण्य के क्षीण होनेपर अन्त में वे फिर इस मृत्युलोक में गिरते हैं। इस प्रकार भोगासक्त मनुष्य अप्रधान वैदिक कर्मकाण्ड का आश्रय लेकर क्षणभंगुर सुख की प्राप्ति के लिए उच्च-निम्न लोकों में आवागमनरूपी जन्म-मृत्यु के चक्र में भ्रमण करता रहता है।

सम्बन्ध–साधना की क्या परम्परा है?– इसका विवरण देते हैं।

सुलभं दुर्लभं वन्दे भगवन्तं सनातनम् ।
सदसत्क्षेत्रगं विष्णुं मूर्तामूर्तं शुभाशुभम् ।। 32

हे श्रीनिवास ! (जिज्ञासा, निदिध्यासन, परमेश्वरानुग्रह, तद्दर्शन, परम भक्ति, परमानुग्रह तद्द्वारा मोक्ष — इन) तप स्साधना संपन्न व्यक्ति के लिये आप सुलभ साध्य हैं, परंतु साधना हीन दुष्टों के लिए आप दुर्लभ हैं, आप षडैश्वर्य संपन्न हैं (अर्थात् सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति-प्रलय, जीवों के जन्म-मरण, विद्या-अविद्या – इन सब के ज्ञाता हैं, या पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, वीर्य, यश, प्रकाश, ज्ञान, वैराग्य (विज्ञान) — इन छः मुख्य गुणों से सर्वदा सर्वत्र पूर्णरूपेण स्थित हैं), आप सनातन भगवान हैं। सबके भीतर निवास कर रहे हैं, मूर्त और अमूर्त में (पृथ्वी, जल, और तेज मूर्त हैं तथा वायु, अन्तरिक्ष और मन अमूर्त हैं) व्याप्त हैं । सबके नियामक और प्रेरक हैं, तथा भक्तों (उत्तम जीव समूह) के लिए सदा शुभप्रद हैं और दुष्ट समूह के लिए अशुभप्रद हैं, ऐसे आप प्रभु की मैं शरण ग्रहण करता हूं ।

विशेषार्थ —

श्रीहरि सर्व व्यापी हैं, तो 'सत्' और 'असत्' कैसे होते हैं ? — इसके उत्तर में 'मूर्तामूर्त' 'मूर्तं सदिति सम्प्रोक्तं अमूर्तं असदुच्यते' इस प्रकार पैंगि श्रुति है । मूर्त 'सत्' और अमूर्त 'असत्' हैं ।

गोविन्दं गोगणातीतं कल्मषघ्नमकल्मषम् ।
प्रतिकल्पेऽकल्पकल्पतरुं सर्वार्थकल्पकम् ।। 33

हे श्रीनिवास ! आप सम्पूर्ण वेदों से प्रतिपाद्य हैं, सभी वेदराशि का अतिक्रमण करनेवाले हैं (अर्थात् समस्त वेदों से भी पूर्णरूप से प्रतिपादित होने में अशक्य हैं) भक्तों के पापों

का नाश करनेवाले हैं, प्रतिकल्प-दिनकल्प, मनुकल्प तथा प्रति युग में सब अर्थों को देनेवाले कल्पवक्ष हैं, मैं ऐसे प्रभु की शरण पाता हूं ।

दुष्टभावः प्रमत्तो वा नामाद्युच्चारको हि यः ।
ब्रह्महत्यादिपापानि दहत्येव न चान्यथा ।। 34

हे श्रीनिवास ! दुष्टभावों से उन्मत्त व्यक्ति भी यदि आपके नाम-गुण-क्रियाओं का उच्चारण करता है तो आप उसके समस्त ब्रह्महत्यादि महापापों और उप-पापों को ध्वस्त कर देते हैं, (फिर भला, विमल मन से आप का नाम-स्मरण करनेवाले भक्तों के उद्धार में क्या संदेह है?) आपके नामस्मरण आदि का अनुष्ठान जो नहीं करता, उसका पाप-दोष नहीं छूटता।

विशेषार्थ —

1. पाँच महापातक – ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरु की स्त्री से व्यभिचार तथा इन पातकों के करनेवालों का संसर्ग ।
2. उप-पातक – गोवध, स्त्रीवध, बालवध, भ्रूणहत्या इत्यादि ।
3. अति-पातक – मातृ-पितृ-भ्रातृ-भर्तृ-मातुल-आचार्य आदि की निन्दा करना ।

अज्ञानादथवा दम्भात् पुण्यश्लोकस्य नाम ते ।
यो वदेत् तानि तश्यन्ति तूलराशिर्यथाऽनलात् ।। 35

अज्ञान अथवा दम्भ और परिहास से भी जो कोई व्यक्ति आपके पुण्य श्लोक के पवित्र नाम का उच्चारण करता है, उसके सब महापाप इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे कपास की पहाड-जैसी ढ़ेरी आग की एक छोटी-सी चिनगारी से दग्ध हो जाती है ।

क्षुधितो दुःखितः श्रान्तस्त्वन्नाम यदि संस्मरेत् ।
तस्य दुःखानि सर्वाणि नश्यन्ति क्षणमात्रतः ।। 36

भूखा, दुःखी या श्रम के कारण थके मनुष्य के सारे कष्ट आपका नाम स्मरण करने मात्र से क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं।

सर्वाण्यशुभजातानि दुरितौघानि यानि च ।
तानि सर्वाणि लभते मत्तस्त्वं विस्मृतो यदि ।। 37

अज्ञानवश मदमत्त होकर यदि आपका नाम लेना जब कोई भुला देता है तो वह अनेक अशुभ, क्लेश और यहाँ तक कि ब्रह्महत्या तक के महापातक का भागी बनता है ।

विशेषार्थं —

जो व्यक्ति भगवान की कृपा से सब प्रकार की साधन-सम्पत्ति (शरीर-आयु - आरोग्य - द्रव्य-गृह-पुत्र - कलत्रादि) प्राप्तकर, मदोन्मत्त भाव से आपको नमस्कार नहीं करता, ऐसे कृतघ्न का पाप कभी नाश नहीं होता ।

न तीर्थयात्रा न च दानयज्ञौ
व्रतं तपो नार्चनमन्यदैवम् ।
यत् श्रीनिवासस्य च नामकीर्तनं
तदेव सर्वार्थसुवृष्टिकारणम् ।। 38

तीर्थयात्रा, षोडश महादान, ज्योतिष्टोमाश्वमेधवाजपेयादि यज्ञ, चान्द्रायणादि व्रत, काय-क्लेशादि व्यय-प्रयास को सहनकर त्रेताग्नि के मध्य एकाग्रमन से किया गया तप तथा अन्य देवी-देवताओं का पूजन आप के नाम-संकीर्तन के सामने क्या है ? अर्थात् किसी काम का नहीं । जहाँ भगवान का नाम-संकीर्तन किया जाता है, वहाँ समस्त पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं।

विशेषार्थ —

1. ईश्वर ने पर्याप्त ऐश्वर्य दिया। उसे भगवत् प्रीत्यर्थ दान-भोग करके कृतार्थ होना ही भक्त का लक्षण है। यदि कोई भक्त भूदान, शय्यादान, गोदान, छत्र-द्रव्य-दीप-चामर-आसन-जल-पात्र-कमंडल-दर्पण आदि दान करने में असमर्थ है तो मात्र भगवन्नाम स्मरण से उक्त सभी दानों की फल-प्राप्ति कर सकता है।

2. षोडश महादान —

महादानमनुत्तमं सर्वपापक्षयकरं नृणां दुःस्वप्न नाशनम्।
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापहरं शुभम्॥
पूजितं देवताभिश्च ब्रह्म-विष्णु-शिवादिभिः।
आद्यं तु सर्वदानानां तुलापुरुषं संज्ञकम्॥
हिरण्यगर्भदानं च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम्।
कल्पपादप्रदानं च गोसहस्रं च पञ्चमम्॥
हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च।
हिरण्याश्वरथस्तद्वत् हेमहस्ति रथस्तथा॥
पञ्चलाङ्गलकं तद्वत् धरादानं तथैव च।
द्वादशं विश्वचक्रं तु ततः कल्पलताऽत्मकम्।
सप्त सागरदानं च रत्नधेनुस्तथैव च।
महाभूतघटस्तद्वत् षोडशं परिकीर्तितम्॥

(मत्स्यपुराण 273 वाँ अध्याय)

1. तुलापुरुषदान, 2. हिरण्यगर्भदान, 3. ब्रह्माण्डदान. 4. कल्प पाददान, 5. गोसहस्रदान, 6. हिरण्यकामधेनुदान, 7. हिरण्याश्वदान 8. हिरण्याश्वरथदान, 9. हेमहस्तिरथदान, 10. पञ्चलाङ्गलकान्वितभूदान 11. हेमधरादान, 12. विश्वचक्रदान, 13. महाकल्पलतादान, 14. सप्त सागरदान, 15. रत्नधेनुदान, 16. महाभूतघटदान—ये हैं षोडशमहादान।

अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार दान करने पर सम्पूर्ण पाप-तापों का प्रशमन, आयुष्याभिवृद्धि और मनोभीष्ट सिद्धि होती है। इस तरह के दान ब्रह्मादि देवगण तथा सम्राटों ने श्रद्धासे किये। ऐसे दान करनेमें असमर्थवाले को हरिनाम-कीर्तन से उन महादानों का फल प्राप्त होता है।

यात्रा यज्ञा व्रता धर्मा दानान्यन्यान्यसङ्ख्यया ।
तव नामस्मृतेर्भक्त्या कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।। 39

बदरिकाश्रम आदि अनेक तीर्थों की यात्रा, यज्ञ, व्रत; धर्म, अन्नदान-भूदान-हेमदान इत्यादि असंख्य कर्म भी भक्ति-पूर्वक आपके नाम-स्मरण के सोलहवें भाग के समान नहीं है।

अहो भाग्यमहो भाग्यं विष्णुनामानुवर्तिनाम् ।
तेषां दूरो याम्यलोकः स्वर्गो मोक्षश्च तत्फलम् ।। 40

हे स्वामी ! हरिनाम स्मरण-संकीर्तन आदि करनेवाले भक्तों का क्या बड़ा भाग्य है ! उनका भाग्य ही सौभाग्य है, क्योंकि, उन्हें नरक की पीडा और यम की यातना बाधक नहीं होती । वे तो उनसे बहुत दूर रहते हैं । इसके विपरीत स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति ही भगवन्नाम स्मरण करने का महत्फल है।

माहात्म्यं विष्णुनाम्नो हि वर्णितुं केन शक्यते ।
अजामिलो मृत्युपाशात् मुक्तो वैकुण्ठगो यतः ।। 41

विष्णु के नाम-माहात्म्य का कौन वर्णन कर सकता है? मरणासन्न नराधम अजामिल भी नारायण (अपने पुत्र) का नाम लेकर मृत्यु-पाश से मुक्त होकर वैकुण्ठ में पहुंच गया ।

अयमेव महाधर्मो नारायणं तारकः स्मृतः ।
विष्णौ सदा भक्तियोगः तन्नामग्रहणादिभिः ।। 42

ऐसे पाप-तापहारी भगवन्नाम स्मरण ही श्री हरि में भक्ति पैदा कर देता है । यही मनुष्यों का उद्धार करनेवाला अत्युत्तम महाधर्म है, इसका अनुष्ठान ही परम कर्तव्य है ।

नैकोऽजामिल एव पापजलधिं सन्तीर्णवान् नामतः
प्रह्लादोऽपि गजेन्द्रपूर्वबहवो दुःखाम्बुधेस्तारिताः ।
यन्नामस्मरणाऽमृताम्बुधि निमग्नोऽद्यापि गौरीपतिः
यद्ध्याने निरताः प्रजापतिमुखाः प्राप्ता महावैभवम् ।।43

श्रीहरि का नाम लेकर अजामिल ही पापरूप समुद्र से नहीं तर गया, अपितु, प्रह्लाद, गजेन्द्र इत्यादि अनेक भक्त हरि नाम स्मरण करके दुःख सागर से पार हो गये । गौरीपति महारुद्र भी आज तक "रामनाम" स्मरणरूपी अमृतसागर में निमग्न हैं । चतुर्मुख ब्रह्मादि देवतागण, जिन्होंने महा वैभव को प्राप्त किया, वे भी सदैव हरि के नाम-जप में लगे हुए हैं ।

विशेषार्थ —

अजामिल सदाचार संपन्न ब्राह्मण था । एक दिन वह यज्ञ केलिये कुशा-समिधा, फल-फूल आदि लाने हेतु वन गया । लौटते समय उसने मद्यपान किये किसी नीच जाति की नग्न-स्त्री को देखा और उसके मोह जाल में फँस गया । उस स्त्री को उसने अपनी पत्नी बना लिया । उसके बाद वह अपने माँ-बाप और पूज-पाठ छोड़कर उस कामिनी के साथ केलि में मस्त हो गया । वह चण्डाल की भाँति व्यवहार करता था । उसके दस पुत्र हुए । सबसे छोटे का नाम नारायण था । जब अजामिल की मृत्यु निकट आयी, तब वह अपने पुत्र नारायण को ध्यान में रखकर "नारायण-नारायण" पुकारने लगा । अन्तकाल में 'नारायण' नामोच्चारण करने से उसकी पूर्व-स्मृति जाग्रत हुई । अपने पाप-कर्म पर पछताने लगा । उसे भगवत्पद प्राप्त हुआ ।

'सर्वदाघहरं विष्णोर्नाम तद्भक्तिपूर्वकम् ।
अभक्तोदाहृतं नैव फलदाता भविष्यति ।।
अजामिलोऽपि स्मरणात् भक्त्या मृत्मोरमुच्यत ।।

— नारदीय पुराण के इस कथन के अनुसार श्रीहरि के नामोच्चरण से भक्तों के सारे दोष नष्ट हो जाते हैं। यदि अभक्त उच्चारण

करें तो दोष का प्रशमन नहीं होगा ? अजामिल ने तो भ्रष्ट और घृणित होते हुए भी मरते समय अपने पुत्र का स्मरण किया जिसका नाम नारायण था। वह मृत्यु-पाश से बच गया और वैकुण्ठधाम पहुंच गया। अतएव जब निन्दनीय पापीजन श्रीहरि के नामोंच्चारण मात्र से निष्पाप बन जाते हैं और सद्गति प्राप्त कर लेते हैं तो फिर गद्गद् वाणी से भगवान के नाम-गुण-कर्मों का गान करनेवाले भक्तजनों के लिये क्या प्राप्तव्य अवशिष्ट रह सकता है।

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ।
वैकुण्ठनाम ग्रहणमशेषाघहरं विदुः ।।
– भागवत स्कं. 6 अ. 2 श्लो. 18

अपने प्रियजनों के नाम निमित्त या परिहास या अन्य किसी तरह से जो भगवन्नाम लेता है उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् दुष्ट चित्तवाला भी यदि कभी भगवान का स्मरण करता है तो पात्रापात्र का विचार किये बिना ही भगवान उद्धार करते हैं।

2. प्रियो हि नितरां कृष्णश्रवणं कीर्तनं प्रियाः ।
वाचा गायन्ति तल्लीलां कर्णे शृण्वन्ति तद्यशः ।।
पद्भिः गच्छन्ति क्षेत्राणि करैर्मन्दिरमार्जनम् ।
पश्यन्ति रूपं चक्षुर्भ्यां गन्धं जिघ्रन्ति नासया ।।
हरेर्निर्माल्यपुष्पस्यासेवनं चैव कुर्वते ।
भक्त्या पादोदकं पीत्वा यान्ति सन्तर्पणं हृदि ।।
मानसे चरणं विष्णोः नैवेद्यमुदरे तथा ।
निर्माल्यं चन्दनं फाले मस्तके तलसीदलम् ।।
आदित्यपुराण 4, 10-13

श्रीकृष्ण की कथा का श्रवण अपनी वाणी से उनकी लीलागान, अपने कानों से भगवान के नाम-गुण-प्रभाव-तत्त्व की बातों को सुनना, अपने चरणों से भगवत्-धामों की यात्रा करना, अपने हाथों से श्रीहरि मन्दिरों को साफ़ करना, अपनी आँखों दिव्य मङ्गल विग्रह का दर्शन करना, श्रीहरि के पादोदक का पान करना, नैवेद्य स्वीकार करना, मन से श्रीहरि के चरणों का ध्यान करना – इत्यादि कार्य श्रीहरि को अत्यंत प्रिय हैं।

यन्नाम ते सर्वजगद्दुरन्त-
दुष्कर्मशैलांश्च बहून् भिनत्ति ।
स सर्वशक्ते स हि विश्वरूप
प्रसीद मामनिरुक्तात्मशक्ते ।। 44

सर्व जगत् के अपार दुष्कर्मरूपी पर्वत जिनके नामस्मरण से विच्छिन्न हो जाते हैं, उन सर्वशक्तिमान् विश्वरूप किसी से न जीते जा सकनेवाले हे प्रभो वेङ्कटेश ! आप मुझ से अपना भजन कराने का अनुग्रह कीजिए ।

अनुग्रहार्थं भजतां पदाब्जं
अनामरूपस्त्वगुणो ह्यजन्मा ।
नामानि रूपाणि गुणान् क्रियाश्च
जन्मानि गृह्णासि स मां प्रसीद ।। 45

हे स्वामिन् ! आप प्राकृत नाम-रूप-गुण-कर्म आदि से रहित हैं तथा पृथ्वी पर जन्मादि से भी अतीत हैं तथापि अपने चरण-कमलों को पूजनेवाले भक्तों के अनुग्रह-हेतु आप अपने अप्राकृत राम-कृष्णादि नामों, शुक्लादि रूपों, ज्ञान-अनन्दादि गुणों, जगत् की रचनादि के कर्मों तथा मत्स्य-कूर्मादि अवतारों को स्वीकार करते हैं। ऐसे कल्याणकारी परमात्मन्! आप मुझे भी अनुग्रहपात्र बना देने को प्रसन्न हो जाइए ।

विशेषार्थ —

1. कुछ लोगों कीं धारण है कि भगवन का कोई नाम-रूप आदि नहीं । इसके लिए नीचे कुछ दृष्टांत की सूक्तियाँ दी जाती हैं जो भगवान के नाम-रूपादि के अस्तित्व को पुष्ट करती हैं ।

'न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा'

अनामरूपात्मनि रूपनामनी ।

विधित्समानो अनुससार शास्तिकृत् ।।

'अनामा सोऽप्रसिद्धत्वात् अरूपो भूतवर्जनात्'

भगवान के जितने नाम और रूप हैं, उन्हें समग्ररूप से बतलानेवाले उतने पद इस शब्द-संसार में है ही नहीं। अतएव भगवान को "अनाम" तथा पाँच भौतिकरूप न होने से "अरूप" कहते हैं।

"योऽसावसौ निर्गुणः सगुणः" – इस प्रकार श्रुति है।
—अर्थात् वह भगवान प्राकृत गुण रहित असंख्य कल्याण गुणोंवाला है।

"स नित्यः शुद्धः केवलो निर्गुणश्च"

"स हि सर्वगुणैः पूर्णः" — अर्थात् वह सब गुणों से पूर्ण है।

"अजायमानो बहुधा विजायते" – इस श्रुति में कहे अनुसार भगवान श्रीहरि देह-योगादि रूप जन्म रहित होने पर भी अनेक रूपों से अवतार लेनेवाले हैं।

"स एतेभ्यो अभ्यचीक्ऌपत्"

"व्यमिश्राणि व्यमिश्रयत्"

"शुक्लं कृष्णं कनीनिका" – इत्यादि श्रुतियाँ कहती हैं कि भगवान् के जो अवतार हैं वे तात्त्विक एवं अलौकिक भी हैं।

जन्मादिभिर्जने मोहानुग्रहावधिकारतः ।
करोषि साम्प्रतं भूयोऽनुग्रहस्तु भवेन्मयि ।। 46

आप अपने इन अवतारों द्वारा जनसमुदाय में उनके कर्म के अनुसार कुछ लोगों को मोह (अज्ञान) और कुछ लोगों को अनुग्रह प्रदान करते हैं। हे शेषगिरि निवासी प्रभु ! मेरे प्रति आपका विशेष अनुग्रह ही होवें।

दयापाङ्गलवो भूयादिहाऽमुत्रेष्टवर्षणः ।
अन्यथा नात्र सन्देह इति चित्ते सुनिश्चितम् । 47

हे परमात्मन् ! आपकी लेशमात्र कृपा-दृष्टि होने पर प्राणी को इस लोक और परलोक सम्बन्धी अभीष्ट फल प्राप्त होते हैं । अर्थात् मोक्ष का सुख सहज ही प्राप्त हो जाता है । यदि आपकी कृपा न होती तो मेरे लाख-प्रयत्नों के बावजूद या किसी और से मेरी कामना पूर्ण नहीं हो सकती । इसमें कोई संदेह नहीं। ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय भी है, अतएव हे भगवान् ! मेरे प्रति पूर्ण अनुग्रहवान् बनें ।

ॐनमो वेङ्कटेशाय पुरुषाय महात्मने ।
महानुभावाय महामायिनेऽमेय कर्मणे ।। 48

हे वेङ्कटेश ! "जपतोनास्ति पातकम्" – इस स्मृति के अनुसार 'ॐ वेङ्कटेशाय ॐ' – इस प्रकार आपके नाम का मंत्र सदैव जप कर रहा हूं। आप अमृत-ऐश्वर्यों के स्वामी हैं, चौदहों भुवनों के भक्तों के हृदय-कमलों में बसकर, उनको मनोनिग्रह तपसादि सद्गुण प्रदानकर, उनकी सभी इच्छाओं को पूर्ण करते हैं, भक्तों के उद्धार करने में अत्यंत उत्साही हैं, पूर्णरूप से न जान सकने योग्य लोकोत्तर माहात्म्य से सम्पन्न हैं, अद्भुत माया-शक्ति से युक्त हैं तथा किसी से भी पूर्णरूप से न जान सकने योग्य दिव्य चरित्रवाले हैं, ऐसे आपको मेरा प्रणाम है।

विशेषार्थ –

1. (1) वेङ्कटेश शब्दार्थ —

देवशर्मा 'वेङ्कटेश' के नाम-मन्त्र का सदा जप किया करते हैं । जो भगवान का नाम लेता हैं उसे पाप कैसे लग सकता है ? अर्थात्

कभी नहीं लगा सकता है। "जपतो नास्ति पातकम्"—श्रीहरि के नाम स्तोत्र करनेवाले के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, ऐसा स्मृतियाँ कहती हैं। 'वेङ्कटेश' शब्द का अर्थ ही समस्त पापों का नाशक तथा अमृतत्व एवं विपुल ऐश्वर्य देनेवाला है।

(2) 'वकारोऽमृतबीजं स्यादैश्वर्यं कटमुच्यते।
अमृतैश्वर्य देवत्वात् वेङ्कटेशं हरिं विदुः ।।

— इस तरह स्मृति है। श्रीनिवास अमृतैश्वर्यों के स्वामी होने से 'व्यङ्कटेश' कहलाते हैं। अतः ऐश्वर्य, मोक्षादि समस्त पुरुषार्थोंको प्रदान करनेवाले श्रीहरि के चरणों को छोड़कर कोई भक्त कहाँ रहे ?

2. (1) पुरुष शब्दार्थ —

'पॄ =पालनपूरणयोः' सम्पूर्ण जगत् के पोषक एवं समस्त पुरुषार्थों को देनेवाले हैं। अतः 'पुः' कहलाते हैं।

'ऋ=गतौ' गत्यर्थक और ज्ञानार्थक होने से ज्ञान स्वरूप 'रुः' कहलाते हैं।

'षकारो बलं णकारः प्राण आत्मा' — इस श्रुति के अनुसार बलात्मक होने से अर्थात् भक्तों के लिए मनोनिग्रहात्मक तपस्सादि समस्त बल उत्पन्न करने के कारण 'ष' कहलाते हैं।

(2) 'तथा च पुश्चासौ रुश्चासौ षश्च पुरुषः'

(3) 'न केवलं मे भवतश्च राजन् स वै बलं बलिनां चापरेषां'

शुकदेवजी परीक्षित से कहते हैं कि भगवान श्रीहरि सिर्फ मेरे या तुम्हारे ही नहीं, बल्कि अन्य बलवानों के भी बल हैं। इस प्रकार श्रीमद्भागवत में भी है। अथवा 'पुरि शेते इति पुरुषः' = सबके हृदयों में शयन करनेवाला है।

(4) पुरुवः षाः यस्य=पूर्ण ज्ञान-बलादि षड्गुणोंवाला है।

(5) पुरूणि षट् यस्य = अत्यंत उत्कृष्ट श्वेतद्वीप, अनन्तासन वैकुण्ठ, अव्याकृताकाश, सत्यलोक एवं सर्व प्राणियों का हृत्-कमल — इन छः स्थानों में रहनेवाला है।

(6) ब्रह्माण्ड के भीतर-बाहर सर्वत्र पूर्ण होने से पुः, ऋतम्बर का अवतार होने से रुः, 'षं षड्गुणायनमः' – षड्गुणावतार होने से 'षः' – इत्यादि से 'पुरुष' शब्द वाच्य हैं।

3. महात्मा – "मह उद्धव उत्सवः" ऐसा अमर कोश में आता है, इसके अनुसार भक्तों को दर्शन कराने में भगवान् बडे उत्साही हैं। 'भक्तदर्शन मात्रेण प्रसादान् मन्दहासितं' इस स्मृति में कहा गया है कि भक्तों को मात्र देखने से उनपर अनुग्रहार्थ मन्द-मन्द मुस्काने लगते हैं।

4. महानुभावः — पूर्णरूप से न जाने जा सकने के स्वरूपवाले, महत्तर और सम्पूर्ण ज्ञानवाले।

5. महामायी — "महामायेत्य विद्येति नियतिर्मोहिनीति च" अत्यंत अद्भुत महाशक्तिवाले।

6. अमेय कर्मा — "प्रकृतिर्वासनेत्येवं तवेच्छाऽनन्त कथ्यते" – किसी से न जान सकने के चरित्रवाले।

7. (1) वेति उत्तमवाची स्यात् येति ज्ञानमुदीरितम्।
ककारः सुखवाची स्यात् येति चित्त्वमुदीरितम्॥
ईशित्वमात्नवाची स्यात् एवेदं पञ्चकन्यके।
पूर्णज्ञानं सुखं चित्त्वं आत्मत्वाद्व्यङ्कटाभिधः॥
(गारुड पु. अ. 26, श्लो. 36-37)

पूर्णज्ञान-आनन्द-चित्त-रूप सब के स्वामी होने से 'व्यङ्कटेश' कहलाते है।

(2) व्यमिन्द्रियादिकं प्रोक्तं व्यङ्गभूता हरौ यतः।
कटस्तु समुदायोक्तः व्यङ्कटश्चेन्द्रियागणाः॥

(3) स्वस्मिन् प्रेरयते यस्मात् तस्मात् व्यङ्कटनायकः।
व्य=इन्द्रियाँ, कट=समुदाय, इन्द्रिय समूहों के प्रेरक होने से "व्यङ्कटेश" कहे जाते हैं।

(4) "विषयेष्वेव वा नित्यं व्यङ्कटेति उदाहृतः"

समस्त इन्द्रियों के प्रेरक होने से "व्यङ्कटेश" कहे जाते हैं।

(5) विशिष्टज्ञानरूपत्वात् वेति मुक्ताः सदा स्मृताः।
मुक्तानां च समूहस्तु व्यङ्कटेति उदाहृतः।

(6) "सदा मुक्तसमूहानां ईशत्वात् व्यङ्कटाभिधः"

विशिष्ट ज्ञानरूप होने से व=मुक्त। मुक्तों का समूह 'व्यङ्कट' कहा जाता है। मुक्तो के समूह के नियामक हैं, इसलिए 'व्यङ्कटेश' कहे जाते हैं।

(7) लिङ्गदेहयुतो जीवो व्यङ्कटेति उदाहृतः।
लिङ्गिनां चैव स्वामित्वात् व्यङ्कटेशेति संज्ञकः।।

लिङ्ग देहयुक्त जीव "व्यङ्कट" कहे जाते हैं। उन जीवों के स्वामी होने के कारण "व्यङ्कटेश" कहलाते हैं।

(8) दैत्यानां च समूहस्तु ज्ञानादि विधुरो यतः
अतो दैत्यसमूहस्तु व्यङ्कटेति प्रकीर्तितः
तेषां संहरणेऽपीशः अतो व्यङ्कटनायकः

दैत्य-समूह ज्ञानादि से रहित होने के कारण 'व्यङ्कट' कहा जाता है। दैत्य-समूह का संहार करने में समर्थ हैं, इसलिये 'व्यङ्कटेश' कहा जाता है।

(9) आनन्दस्य विरुद्धत्वात् काम क्रोधादय गुणाः।
व्यङ्कटा इति सम्प्रोक्ताः तेषां नाशयितुं प्रभुः।।

गारुड पु. अ. 26 श्लो. 44

(10) "अतस्तु व्यङ्कटेशाख्यः" – आनन्द के विरुद्ध काम-क्रोधादि दुर्गुण "व्यङ्कट" कहे जाते हैं। उन गुणों का नाश करने में समर्थ होने से "व्यङ्कटेश" कहलाते हैं। इस प्रकार 'व्यङ्कटेश' शब्द के अर्थ होते हैं।

नाम्नैव भाव्यं खलु सर्वरक्षणं
मायाविनो विश्वकुटुम्बिनस्ते ।
स्थलेषु दुर्गेषु जलेषु खेषु
गर्भेष्वरण्येषु च कैतवेषु ।। 49

सारे जीवों के रक्षक, सब के पोषक और भगवद्-विमुख लोगों के लिये महामायावी हे जगत्-कुटुम्बी वेङ्कटेश ! सभी स्थलों, समस्त दुर्गम-प्रदेशों, नदी-नदादि के पानी, अकाश, वनों और दुर्जनों के बीच में घिरे जाने पर (किसी भी विपत्ति आने पर) आपके दिव्य नाम-स्मरण मात्र से उन भक्तों के वे सब कष्ट-क्लेश अवश्य ही छूट जाते हैं। (प्रह्लाद, गजेन्द्र, द्रौपदी आदि भक्त भगवान का नाम-स्मरण करके सारे संकटों से मुक्त हो गये।)

विशेषार्थ —

1. जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिः
स्थले च मायावटु वामनोऽव्यात् ।
त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः
दुर्गेष्वटव्याजिमखादिषु प्रभुः ।।
पायन्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ।

भगवान के इस वचन के अनुसार जल में मत्स्यमूर्ति, पृथ्वी पर वामनभगवान, आकाश में त्रिविक्रम तथा वनों और दुर्गों में नरसिंहरूपी भगवान रक्षा करते हैं।

2: यदि योन्याः प्रमुच्येयं तत् स्मरिष्ये पदं तव।
तमुपायं करिष्यामि येन मुक्ति प्रजाम्यहम् ।।
विण्मूत्रकूपे पतितः दग्धोऽहं जठराग्निना।
इच्छन् इतो विवसितुं कदा निर्यास्यते बहिः ।।

येनेदृशं मे विज्ञानं दत्तं दीनदयालुना ।
तमेव शरणं यामि पुनर्मे मास्तु संसृतिः ।।

(गारुड पुराण)

जीव माँ के गर्भ में प्रार्थना करता है, "इस योनि से यदि मुझे मुक्ति मिल जाय तो मैं आपके चरणों का स्मरण करूँगा, हे श्रीहरि ! मुझे कोई ऐसा उपाय बतलावें, जिसका आचरण से मुक्ति मिल जय। अपवित्र मूत्रों के बीच पड़ा हुआ मैं जठराग्नि से जल रहा हूँ। यहाँ से मैं कब निकलूँगा ? जिसने मुझे यह ज्ञान दिया, उसी की मैं शरण जाता हूँ। मुझे फिर इस संसार का आवागमन नहीं चाहिए।

3. गर्भे व्याधौ श्मशाने च पुराणे या मतिर्भवेत् ।
सा यदि स्थिरतां याति को न मुच्यते बन्धनात् ।।

गर्भ में रहने पर, रोग-पीडा में, श्मशान में तथा पुराण-श्रवण के समय पर जैसी बुद्धि (विरक्ति) उत्पन्न होती है, वही यदि सदा के लिए स्थिर हो जाय तो इस संसार बन्धन से कौन विमुक्त नहीं होगा? अर्थात् अवश्य हर आदमी मुक्त हो सकता है।

महाविपत्सु त्वन्नामस्मरणे तद्विनाशनम् ।
बहुसंपत्सु ते नामविस्मृतौ तद्विनाशनम् ।। 50

जिस प्रकार महा विपत्तियों के आते समय आपका नाम स्मरण करने पर वे सब दूर हो जाती हैं, उसी प्रकार संपत्तियों के आते ही आपका नाम भूल जाने पर वे सारी संपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं।

विशेषार्थ —

"यदनुग्रहत स्सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया" – अर्थात् ये लोक तथा लोकाधिपत्य भी भगवान की इच्छा से ही स्थिर होते हैं। उनकी उपेक्षा करने पर सब कुछ छूट जाते हैं। अर्थात् विपत्ति की निवृत्ति और संपत्ति की प्राप्ति भगवान का सङ्कल्प है।

**तस्मात्त्वन्नामसक्तोऽहं सर्वदा त्वदनुग्रहात् ।
त्वत्प्रेरितस्त्वदीयत्वात् मत्पुण्यं त्वद्दयाबलात् ।। 51**

इस कारण आपसे प्रेरित होकर मैं आपके अनुग्रह से सदा-सर्वथा आपका नाम स्मरण करने में अनुरक्त हो गया हूं। आपकी भक्ति के परायण होने का यह मेरा पुण्य आपकी कृपा के बल से ही हुआ है।

**न कदाचिद्भयं मेऽस्ति दिव्यनामरतो यतः ।
तथाऽपि ते कृपाऽपाङ्गलेशलेशोऽस्तु मय्यहो ।। 52**

आपके दिव्य नाम स्मरण में सदा लगे हुये मुझे कभी किसी का भय नहीं रहता। फिर भी आपका कृपा-कटाक्ष मुझपर लवलेश रहे, यही मेरा भाग्य है।

**श्रीश ! चित्रं चरित्रं ते न जाने बहुदुष्कृतिः ।
सर्वज्ञ मे कदा किं वा वदे त्वां कृपयाऽव माम् ।। 53**

हे लक्ष्मीनाथ! अनेक कुकर्म किये हुए मैं आपके चित्र-विचित्र चरित्र को नहीं जान सकता। हे सर्वज्ञ ! आपसे अपने दोष कहाँ तक कहूँ ? बस, आप ही कृपापूर्वक मेरी रक्षा करें।

**नाम्ना महाघौघहानि स्तेन देहहृदोः शुचिः ।
तं दृष्ट्वा प्रीयसे विष्णो ततः सत्कर्मसङ्ग्रहः ।। 54**

हे श्रीहरि ! आपके नाम स्मरण करने से महा पापराशि नष्ट हो जाती है, जिससे शरीर और मन शुद्ध हो जाते हैं। विश्वव्यापी हे देवेश्वर! ऐसे विशुद्ध व्यक्ति को देखकर आप प्रसन्न होते हैं और उसपर अनुग्रह करते हैं। तदनन्तर उससे सत्कर्म कराने लगते हैं।

कर्मणा ज्ञानसिद्धिश्च तेन प्रीतिस्तवाद्भुता ।
अपरोक्षमगर्भश्च मुक्तिरानन्दवर्धनम् ।। 55

सत्कर्मानुष्ठान से तत्त्व-ज्ञान (हरि सर्वोत्तमत्वज्ञान) प्राप्त होता है। उस ज्ञान के द्वारा आपके प्रति परम प्रीति उत्पन्न होती है। तब अपरोक्षानुभूति (भगवत्साक्षात्कार) सिद्ध होती है, जिससे गर्भवासादि कष्ट छूट जाते हैं और मुक्ति मिल जाती है अर्थात् मोक्षदशा में भी सिद्ध-जीव में दिन-प्रतिदिन आनन्द बढ़ती जाती है।

विशेषार्थ —

मनुष्य पहले नाम-स्मरण से भगवत्सेवा प्रारम्भ करके तत्पश्चात् कई अवस्थाओं से आगे बढ़ता हुआ अन्त में संसार से मुक्त होकर आनन्द भवन की ओर अग्रसर हो जाता है। ईश्वर की कृपा ही उसका एकमात्र भाग्य है। ऐसा अनुग्रह प्राप्त भक्त ही बड़ा भाग्यशाली है।

गोदान कन्यादानादि पृथिवीरेणुसङ्ख्यया ।
दुर्भिक्षे जाह्नवीतीरे प्रत्यहं कोटिभोजनम् ।। 56

त्वन्नामस्मरणे तुल्यं नाममाहात्म्यमीदृशम् ।
तस्मान्नामस्मृतिः शुद्धा सुलभा पुरुषार्थदा ।। 57

धूल कणों की संख्या के बराबर गोदान, कन्यादान, सुवर्णदान, अश्वमेधादि यज्ञ, अकाल के दिनों में गंगा नदी के तट पर प्रति-दिन करोड़ों ब्राह्मणों को भोजन देना — ये सब मिलकर भी आपके नाम-स्मरण के समान नहीं है। यह ज्ञात होता है कि आपके नाम का माहात्म्य शुद्ध निःश्रेय प्राप्ति का विधान है। भक्तों के लिये तो यह अत्यंत सुलभ तथा पुरुषार्थ प्राप्त करने का परम साधन है।

लोकोत्तरस्त्वयं मार्गः प्रजानामकुतोभयः ।
यत्र भक्तिवशाद्विष्णोर्नामस्मृतिपरायणाः ।। 58

भक्ताधीन भगवान विष्णु के नाम-स्मरण में लगे हुये भक्तजनों के लिये आपका यह नामोच्चारणरूप जो सर्वोत्तम मार्ग है, वह पाप विनाशक, पुण्यवर्धक, लोकोत्तर, श्रेयस्कर, और नरकादि के भय से रहित है तथा स्वर्गादि पुण्य लोकों को भी पीछे छोड़कर सर्वोच्च वैकुण्ठ को प्राप्त करा देनेवाला है। (अर्थात् जितना हो सके, उतना हरि नाम संकीर्तन करके मनुष्य परम गति को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार मैं अपने मन में मानकर भगवान का नाम-स्मरण करता हूं।)

येनैकदा विष्णुपदाब्जयुग्मे
समर्पितं चित्तमनन्यबुद्धया ।
यमोऽपि तद्दूतगणास्सपाशाः
पश्यन्त्यघौघाश्रयमप्यहो न हि ।। 59

हे श्रीनिवास! जो व्यक्ति संसार तारकरूप आपके युगल चरण-कमलों में चित्त, मन और बुद्धि सहित अपनेको अनन्य भक्ति से अर्पण कर देता है, वह चाहे महापापी एवं पाखंडी भी क्यों न हो, उसकी ओर यमराज या पाश (बाँधने की रस्सी या जाल) सहित उनके दूत भी नज़र नहीं डालते, न डालेंगे भी। यह कितना आश्चर्य है। आपका नाम संकीर्नंन करनेवाले भक्तों को नरक का लेशमात्र भय नहीं होता, यह बात तो सर्व विदित है।

विशेषार्थ —

जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ।
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदाऽपि
तानानयध्वमसतोऽकृत विष्णुकृत्यान् ।।

– भागवत में यमराज ने अपने दूतों को आदेश दिया, "हे दूतों! जो पुरुष अपनी जिह्वा से न हरि नाम कीर्तन करता है, न मन से हरि चरणों का स्मरण करता है, न सिर से नमन करता है, उसी को मेरे सामने उपस्थित करो।" अतएव इसमें कोई संदेह नहीं कि भगवद्-भक्तों को कभी भी न तो यमदूतों का भय है, न ही नरक की बाधा।

इति श्रीमदादित्यपुराणे श्रीवेङ्कटेशमाहात्म्ये
भगवद्गुणमहिमानुवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ।

श्रीमदादित्य पुराण में श्रीवेङ्कटेश माहात्म्य का
चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ।

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

पञ्चम अध्याय

।। अथ देवशर्माणं प्रति स्तुतिप्रसन्न श्रीनिवासकृत वरप्रसादादि वर्णनम् ।।

सम्बन्ध — ब्रह्मादि देवताओं की रक्षा करने में अत्यन्त समर्थ, सर्व दोष से रहित, सर्व सद्‌गुण परिपूर्ण, समस्त लोक जननी, करुणामयी माँ लक्ष्मीजी सदैव भगवान की स्तुति करती हैं, तो मुझ जैसे साधारण आपके स्तवन करने में क्या महत्त्व है ? – ऐसे भाव से देवशर्मा लक्ष्मी के माहात्म्य का वर्णन इस प्रकार करते हैं।

देवशर्मा वाच —

सर्वलोक जननी कमला या
देशकालवितता रमणी ते ।
सातिमृद्वतसिकाकुसुमाभो-
त्सङ्गगाऽपि तव हृत्कमलस्था ।। 1

हे श्रीनिवास ! सर्वलोक माता, सब काल-देश में आपकी रमणी होकर आपके समान सर्वत्र व्याप्त लक्ष्मी सदा आपके हृदय-कमल में निवास करनेवाली होकर भी, अतसी पुष्प की भाँति प्रकाशित आपकी कोमल गोद में सदा बैठ कर आपका ध्यान करती हैं।

(अर्थात् आपके हृदयस्थ लक्ष्मीजी ही आपकी गोद में विराजती हैं। एक ओर गोद में भी बैठी हैं दूसरी ओर हृदय में विद्यमान रहती हैं। इस प्रकार दोनों तरह आप से अनन्य संबन्ध बनाये हुए हैं।

ब्रह्मशङ्करपदार्पणदक्षा सर्वलोकशुभदा द्रवचित्ता ।
यत्कटाक्षलवमात्रपदस्थाः प्रार्थयन्त्यजशिवेन्द्रमुखा हि ।।

ब्रह्मा, शिव, इन्द्रादि देवताओं को सत्यलोकादि ऊँचे पद का आधिपत्य देने में समर्थ, सब लोकों को शुभ देनेवाली, दयार्द्र हृदयवाली श्रीलक्ष्मी की दया के कारण ही ये ब्रह्मादि देवेश्वर अपने-अपने पद पर असीन होकर भी पुनः पुनः उनके लेशमात्र कृपा-कटाक्ष की प्रार्थना करते हैं ।

भारतीप्रमुखसुन्दरयोषिद्-
गणमतीतबहुसुन्दररूपाम् ।
आलिलिङ्गसि चतुष्करपद्मैः
मन्दहासवदनां सरसार्थम् ।। 3

हे श्रीहरि ! आप पूर्णकाम हैं, फिर भी पार्वती, भारती, सरस्वती आदि दिव्य सुन्दरी स्त्रियों से बढ़कर अत्यंत सुन्दर रूपवाली और मन्दहासयुक्त मुखारविन्दवाली लक्ष्मी को अपने कमल-सरीखे चारों हाथों से विनोद और विलास-हेतु तथा उनकी प्रसन्नता के लिये आलिंगन करते हैं ।

नित्यमुक्ता दोषदूरा त्वदूनाधिकसद्गुणा ।
त्वत्पादपूजने नित्यं बद्धकङ्कणभूषिता ।। 4

हे श्रीहरि ! नित्य मुक्त, समस्त दोष रहित और आपसे कुछ कम, लेकिन ब्रह्मादि देवताओं से अधिक सद्गुण सम्पन्न लक्ष्मीजी आपके चरणारविन्दों की पूजा करने में सदा कङ्कण बांधे सुशोभित हैं । अर्थात् सजी-सँवरी रहती हैं ।

अभीष्टदाने भक्तानां कल्पवृक्षायिता रमा ।
चिन्तामणिकामधेनुकरुणासागरायिता ।। 5

श्रीलक्ष्मी अपने भक्तों को मनोभीष्ट फल प्रदान करने में कल्पवृक्ष, चिन्तामणि और दया के समुद्र-जैसी हैं।

विशेषार्थ —

'सहाऽऽयाति पुरो याति स्थित्वा पूरयते हरिः'
— श्रीहरि को यदि किसी के ऊपर कृपा करने कीं इच्छा होती है तो लक्ष्मी भी उनके साथ आगे-आगे उस भक्त के यहाँ चल पड़ती हैं और श्रीहरि के साथ रहकर उस भक्त की सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करने में सदा तत्पर होती हैं। — इस वाक्य से यह सिद्ध होता है कि लक्ष्मी नारायण के साथ ही रहकर भक्तों पर अनुग्रह करती हैं, अकेली नहीं।

लक्ष्मीः पुरस्तात् पश्चाच्च दक्षिणोत्तरतश्च या ।
ऊर्ध्वाधरादिभागस्था जगत्सृजति पाति हि ।। 6

श्रुति और स्मृति की प्रतिपाद्य श्रीलक्ष्मी आपके अनुग्रह को प्राप्त कर आपके आगे-पीछे, दाहिने-बायें, ऊपर-नीचे, सदा-सर्वत्र आपके साथ रहकर जगत की सृष्टि रचना और पालन-पोषण करती हैं।

विशेषार्थ —

'हि' शब्द से —

'सविता पश्चात्तात् सविता पुरस्तात् सवितोत्त
रात्तात् सविताऽधरात्तात् सविता न स्सुवतु
सर्वतार्ति सविता नो रासतां दीर्घमायुः'

श्रीलक्ष्मी सभी दिशाओं में रहकर सारे जगत की सृष्टि करती हैं और हम सब को दीर्घायु प्रदान करती हैं।

सम्वन्ध — रमादेवी गायत्री मन्त्र की प्रतिपाद्या हैं। – इसका निरूपन करते हैं। (उनसे पहले श्रीहरि ही एकमात्र गायत्री मन्त्र के प्रतिपाद्य हैं।)

गुणैस्तता प्रसवितृवरणीयगुणोर्जिता ।
प्रकाशमतिमूर्तिश्च ध्येया बुद्धिप्रचोदिका ।। 7

लक्ष्मी गायत्री मन्त्र के प्रतिपादित ज्ञानानन्दादि गुणों से व्याप्त हैं, समस्त संसार की उत्पत्ति करनेवाली हैं, विश्व की रक्षा आदि उत्तम गुणों से सम्पन्न हैं तथा ज्ञान और प्रकाश की मूर्ति हैं, अतएव वे सभी भक्तों से ध्यान करने योग्य और सब की बुद्धि को प्रेरणा देनेवाली हैं।

विशेषार्थ —

'जो सब की बुद्धि के प्रेरक हैं, जगत की सृष्टि करती हैं, क्रीडादि गुण सम्मन्न हैं, उन रमादेवी के कान्तिपूर्ण ज्ञानात्मक दिव्य स्वरून का मैं ध्यान करता हूं।' — इस प्रकार गायत्री मन्त्र का भी अर्थ है।

सम्बन्ध — अब 'गायत्री' शब्द का अर्थ बताते हैं।

दुरन्नाद् दुर्ग्रहत्वाच्च पातकादुपपातकात् ।
स्वगायकत्राणदक्षा गायत्रीत्युदिता रमा ।। 8

श्रीहरि की महिमाओं को अपने (लक्ष्मी के) माहात्म्य ज्ञान के माध्यम स्तुति करनेवाले भक्तों को दुष्टान्न और दुर्दान स्वीकार करने से जो पातक तथा उपपातक लगते हैं, उन दोषों से उन्हें मुक्त कर रक्षा करती हैं, अतएव वे (रमा) 'गायत्री' कहलाती हैं। गायत्री मन्त्र के द्वारा लक्ष्मीनारायण का ध्यान करने से सभी दोष निवृत्त हो जाते हैं। यही भाव है।

विशेषार्थ —

1. श्रीलक्ष्मी अपनी महिमाओं को तथा 'स्व' शब्द वाच्य विष्णु की महिमाओं को भजनेवाले भक्तों की रक्षा करने में समर्थ होने से ('गायन्तं त्राति' इस व्युत्पत्ति से) 'गायत्री' कही जाती है। अर्थात् रमादेवी अपने और अपने स्वामी का ध्यान करनेवालों को समस्त दोषों से छुटकारा दिलाती हैं।

2. (1) म्लेच्छ, हूण आदि का अन्न अपवित्र है, क्योंकि 'अमन्त्रान्नं यत्किञ्चित हूयते च हुताशने' – इस कथन के अनुसार वह अन्न दूषित माना जाता है, जो भगवदर्पण न किया हो। तथा 'अहुत-मवैश्वदेवमविधिना कृतं आसप्तमान् तस्य लोकान् हिनस्ति' इस प्रमाण के अनुसार वैश्वदेवादि क्रियाओं से न संस्कारित अन्न अशुद्ध है।

(2) "पापेभ्यश्च प्रतिग्रहात्" – पापीजनों से दान लेना तथा तिलदान ग्रहण करना भी दुर्दान कहा जाता है। इसलिये वे त्याज्य हैं।

(3) ब्राह्मण की हत्या करना, मदिरा पीना, स्वर्ण की चोरी गुरुपत्नी के साथ व्यभिचार तथा इन पापाचारियों का साथ होना — ये पांच महापातक हैं।

(4) स्त्री-हत्या, गो-हत्या, शिशु-हत्या, भ्रूण-हत्या आदि — उपपातक हैं।

(5) मातृ–पितृ–भर्तृ–मातुल–आचार्य आदि की निन्दा करना अतिपातक हैं।

सम्बन्ध – आगे 'सावित्री' शब्द का अर्थ बताते हैं।

सवितुर्द्योतकत्वाच्च भक्तेष्टप्रसवे रता।
चराचरप्रसविता सावित्री कमला स्मृता।। 9

सूर्य को प्रकाशित करने, भक्तों की मनोवांच्छित वस्तुएँ प्रदान करने और इस चराचर की सृष्टि करने के कारण लक्ष्मी 'सावित्री' कही जाती हैं।

वागीशत्वात् वचोदानात् कीर्तिता च सरस्वती ।
कान्तिरत्यादिदानात् सा भारतीत्यादिनामिका ।। 10

वाणी की अधिष्ठात्री होने और अपने भक्तोंको वेदज्ञान (वाणी का) दान करने के कारण लक्ष्मी 'सरस्वती' नाम से तथा अपने भक्तों को कान्ति, विशेष सुख-संतोष, वैदिक कर्म में अनुरक्त करने एवं सब प्रकार के पुरुषार्थ फल प्रदान करने से 'भारती' नाम से जानी जाती हैं ।

विशेषार्थ —

'भा – दीप्तौ'– भा = कान्ति, रति = रमण करना (सुख विशेष) अथवा वैदिक कर्मों में अधिक आसक्ति। अर्थात् ज्ञान, सुख-भोग, प्रकाश और पुरुषार्थ-सिद्धि प्रदान करने के कारण लक्ष्मी 'भारती' आदि शब्दों से अभिहित हैं।

गुणपूर्णत्वयोगेन ब्रह्म ब्रह्मवशे स्थिता ।
ब्रह्माण्डान्तर्बहिर्व्याप्ता स्थूला सूक्ष्मा च मध्यमा । 11

हे श्रीपति ! सृष्टि के संचालन कार्य में आपकी सहायिका होने से लक्ष्मी गुण-परिपूर्णा हैं, आप परब्रह्म के अधीन में रहने के कारण या चतुर्मुख ब्रह्मा को अपने वश में रखने के कारण वे 'ब्रह्मा' शब्द की वाच्या हैं । अपने विश्वरूप में ब्रह्माण्ड के भीतर-बाहर व्याप्त हैं, इससे 'स्थूला' कही जाती हैं । सब में सर्वान्तर्यामी के रूप में निवेशित होने से 'सूक्ष्मा' हैं। सीता, रुक्मिणी, सत्यभामा इत्यादि रूपों में सब को दृष्टिगोचर होने के कारण 'मध्यमा' नाम से वे मंगलदेवी प्रसिद्ध हैं।

विशेषार्थ — 'यदधीना यस्य सत्ता तत्तदित्येव भण्यते' – इस प्रमाण से लक्ष्मी 'ब्रह्मा' कहलाती हैं ।

कर्मणां गुणरूपाणां सर्वेषां च नियामिका ।
यद्दयापाङ्गलेशेन त्वैहिकीः सर्वसम्पदः ।। 12

ब्रह्मादि पर्यन्त सब प्राणियों के कर्म, गुण और रूपों की संचालिका लक्ष्मी का लेशमात्र कृपा-कटाक्ष होने से इहलोक में सब प्रकार की सम्पत्तियाँ सुलभ हो जाती हैं।

स्वर्विरक्तीश सद्भक्तिज्ञप्ति मुक्तीर्व्रजन्ति हि ।
लोकातीता लोकपूज्या तवात्यन्तप्रिया मता ।। 13

हे श्रीहरि ! स्वर्गादि भोग-सुख में वैराग्य, आपके प्रति परम भक्ति, तत्त्वज्ञान जनित अपरोक्षज्ञान और मुक्ति श्रीदेवी की कृपा के प्रभाव से ही ब्रह्मादि देवगण भी प्राप्त कर सकते हैं। यह तो श्रुति और स्मृति से प्रसिद्ध हैं । चराचरात्मक इस संसार से भिन्न दिव्य-देहवाली और समस्त ज्ञानियों (सम्पूर्ण लोकों के जनों) की पूजनीया लक्ष्मी आपकी अत्यन्त प्रिया हैं।

सर्वशक्ता सर्वसुखा सर्वलक्षणसंयुता ।
अनेकगुणसम्पूर्णा पूर्णकामा च सर्वदा ।। 14

लक्ष्मी सृष्टि आदि समस्त कार्य सम्पादन में पूर्ण शक्ति युक्त, सांसारिक वैभव-भोग सम्पन्न, सभी शुभ लक्षणोंवाली (द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता), असीम असंख्य कल्याण-गुणों से परिपूर्ण, पूर्णकाम और सदा सर्वाभीष्ट प्रदायिनी हैं।

अप्रमेय प्रमेयापि समस्त पुरुषार्थदा ।
महदैश्वर्यसौभाग्या तथाऽपि त्वाऽनुवर्तिनी ।। 15

उनमें जो अपरिमित ज्ञान, शक्ति, महिमा, करुणा आदि

श्रेष्ठ गुण संन्निहित हैं, उन्हें कोई नहीं जान सकता है। हाँ, उनके भक्त ही अपनी-अपनी योग्यतानुसार जान पाते हैं। दुष्ट चित्तवाला व्यक्ति उन्हें कभी नहीं समझ सकता। वे भक्तों को समस्त पुरुषार्थ-सिद्धि देनेवाली हैं और ब्रह्मादि देवेश्वरों को भी उत्तम ऐश्वर्य-सौभाग्य फल प्रदान करनेवाली होने पर भी हे श्रीनिवास! वे सदा-सर्वदा आपके वशीभूत होकर आप का अनुसरण करती हैं।

सम्बन्ध — उनका अनुसरण क्या हैं ? - इसे बताते हैं।

स्मरति ध्यायति स्तौति नमत्यर्चति पश्यति ।
तपति त्वां जपति च सेवते त्वां प्रतीक्षते ।। 16

वे सदैव आपका स्मरण, ध्यान, स्तुति, वन्दन, पूजन, प्रत्यक्ष-दर्शन, आपकी तपस्या, आपका नाम-जप आपकी सेवा और प्रतीक्षा करती हैं। (अर्थात् आपकी कृपा की प्रतीक्षा करती हैं तथा परोक्ष-अपरोक्ष में आप को देखकर आनन्दित होती हैं)

विशेषार्थ —

1: श्रुत्यादि के अनुभवों द्वारा उत्पन्न अर्थ सन्निकर्ष रूप और संस्कार से सहकृत मनरूपी इन्द्रियों से आविर्भूत वह प्रेम "स्मरण" है।

2: सच्छास्त्र-श्रवण-मनन-दर्शन आदि से मन में भगवान के रूप, लीला आदि का सतत चिन्तन करना "ध्यान" है।

3. शास्त्रादि में प्रतिपादित श्रीहरि के सर्वोतमत्वादि गुणों का कीर्तन करना "स्तुति" है।

4: 'मत्तस्त्वमुत्कृष्टः' – 'त्वत्तोऽहमपकृष्टः' अर्थात् 'आप मुझसे श्रेष्ठ हैं और मैं आप से हीन हूँ।' — इस प्रकार ज्ञानपूर्वक किये जाने वाले नमस्कार के तीन प्रकार हैं — कायिक, वाचिक और मानसिक।

(1) कायिक —

उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा।
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः॥

भगवान के चरणों में साष्टांग प्रणाम करना है। अर्थात् हृदय, मस्तक, नेत्रों, मन, वाणी, पैरों, हाथों और घुटनों को धरती पर लिटाकर प्रणाम करना कायिक है॥

(2) वाचिक — "हरयेनमः" इस प्रकार उच्चस्वर में भगवान का नाम उच्चारण करना वाचिक है॥

(3) मानसिक — मन में ही भगवान का प्रणाम करना मानसिक है॥

5. भगवान श्रीहरि तो सदा प्रसन्न हैं। उनको कभी किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं होती। फिर भी हम भक्तलोग उनका अनुग्रह प्राप्त करने की इच्छा से भक्तिपूर्वक प्रतिदिन भोज्य पदार्थों को अर्पितकर पूजा करते हैं, यह "अर्चना" है॥

6. "ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती" इस प्रकार भगवान को सूर्यमण्डल में स्थित होने को अपरोक्ष दर्शन कहते हैं॥

7. "सदा अखण्डितं ध्यानं तप इत्युच्यते" सदा अन्तर में तैल-धारवत् अविच्छिन्न रूप से भगवान का ध्यान करना "तप" है। तथा भगवत्प्रीत्यर्थं कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतों का अनुष्ठान करना या भगवत्-माहात्म्य विषयक वेद शास्त्रादि का मनन करना या स्वाध्याय प्रवचन आदि भी "तप" है॥

8. किसीको न सुनाये हुए मन्त्र की मनमें ही आवृत्ति करना या मन्त्र द्वारा भगवान को मन में बारम्बार ध्यान करना "जप" है।

9. (1) श्रवणं मननं चैव निधिध्यासनमेव च।
परे गुरौ च या भक्तिः परिचर्यादिकं हरेः॥
एषा सेवेति सम्प्रोक्ता यया सद्दर्शनं भवेत्—

–अर्थात् भगवान के गुण माहात्म्य का श्रवण करना, मन में बारम्बार चिन्तन करना, मन में धारण करना, भगवान और गुरु की श्रद्धापूर्वक परिचर्या करना इत्यादि कर्मों को 'सेवा' कहते हैं, जिससे ईश्वर का साक्षात्कार होता है।

(2) श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।।

– इस नौ प्रकार की भक्ति-सेवा का उल्लेख श्रीमद्भागवत में मिलता है।

(3) 'यावत्सेवा परे तत्त्वे तावत्सुखविशेषता'–
परमात्मा की जितनी अधिक सेवा की जाती है, उतना ही मोक्ष-सुख भी अधिक प्राप्त होता है।

10. सदैव भगवान को देखने की उत्कट इच्छा ही 'प्रतीक्षा' कही जाती।

नित्याऽवियोगिनी नम्रा सम्प्रार्थयति सर्वदा ।
किमुताऽन्येऽल्पजीवाश्च मादृशा वृत्तिवर्जिताः ।। 17

कभी भी आपसे वियोग न होनेवाली रमा अत्यंत नम्रता से सदा आपकी प्रार्थना करती हैं। फिर अन्य, अल्प, सद्-वृत्ति से हीन मुझ-जैसे जीव की प्रार्थना में क्या गति ? कुछ नहीं।

दरिद्रा बन्धुरहिता अनाथा जीवनार्थिनः ।
तेषां त्वत्प्रार्थनाकाङ्क्षा नाश्चर्यं भुवनत्रये ।। 18

अत्यन्त दरिद्र, बन्धु से रहित, अनाथ, जीवन की इच्छा वाला पुरुष आपकी प्रार्थना करने में अभिलषित होना तीनों लोकों में कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

श्रीवेङ्कटेश ! मत्स्वामिन् ! ज्ञानानन्द दयानिधे ।
शरणागतसन्त्राण वरणाभीष्टवर्षण ।। 19

हे मेरे प्रभो ! ज्ञान, आनन्द और दया के निधान ! शरणागत रक्षक ! मनचाही वस्तुओं की वर्षा करनेवाले हे वेङ्कटेश ! मुझ पर अनुग्रह कीजिये ।

श्रीश ते रूपकर्माणि ब्रह्मरुद्राहिपादिभिः ।
अगण्यानि ह्यवेद्यानि ह्यचिन्त्यात्यद्भुतानि च ।। 20

श्रीपति हे श्रीनिवास ! आपके अद्भुत अवतारों के रूप और कर्म ब्रह्मा-रुद्रादि देवेश्वरों से भी न गिने जा सकते, न जाने जा सकते और न ही सोचे जा सकते हैं ।

एवं पूर्णे त्वन्महिम्नि नाऽहं शक्तोऽस्मि वर्णने ।
कश्चाहं का च मे शक्तिः किमिति स्तौमि मन्दधीः ।। 21

इस प्रकार आपकी महिमाएँ सम्पूर्ण हैं, अगाध हैं और अद्भुत हैं । उनका वर्णन कौन कर सकता है ? "भला, मैं कौन हूं ?, — मेरी क्या शक्ति है ? अर्थात् मन्दबुद्धिवाला मैं आपकी क्या (कैसे) स्तुति करूँ ?

अलसोऽहमहङ्कारी चाज्ञो मूर्खः शठः खलः ।
ज्ञानभक्त्यादिहीनश्च कामक्रोधादिपूरितः ।। 22

मैं आलसी, अहंकारी, अज्ञ, मूर्ख, विधि-निषेध (उपयुक्त और अनुपयुक्त) न जाननेवाला, दुष्ट, वंचक, आपके ज्ञान और भक्ति मे हीन तथा काम क्रोध आदि से पूर्ण हूं ।

मनोजयादिहीनश्च सदा विषयलम्पटः ॥
पांसूनां वृष्टिबिन्दूनां मद्दोषाणां मितिर्न हि ॥ 223

मैं मन को जीतने में असमर्थ एवं सदा सुगंध-ताम्बूल-कान्तादि सुख-भोग में मस्त हूं ॥ मेरे दोष तो धूल के कण एवं वर्षा के बूंद के समान असंख्य और अपरिमित हैं ॥

विशेषार्थ —

कृशं कृतघ्नं दुष्कर्मकारिणं मामभाजनम् ॥
अपराधसहस्राणामाकरं करुणाकर ॥
नृशंसः पापकृत् क्रूरः वञ्चको निष्ठुरः शठः ॥ (जितन्तेस्तोत्र)

— चतुर्मुख ब्रह्मा ने स्वयं अपने अनेक दोषों को स्वीकार किया। ये हम पर भी लागू होते हैं ॥

गुणास्त्वयि यथा पूर्णाः दोषाः पूर्णास्तथा मयि ॥
आलस्यादहङ्कारात् अज्ञानाल्लोभतो मया ॥ 224
दम्भात् प्रमादाद् दाक्षिण्यात् स्वभावात् सङ्गतः कृतान् ॥
अपारानपराधान् मे ह्यगणेयान् क्षमस्व माम् ॥ 225

हे शेषगिरिवास! जिस प्रकार आपमें अनन्त कल्याण गुण पूर्णरूप से सन्निहित हैं ॥ ठीक विपरीत, उसी प्रकार मुझ में समस्त अवगुण पूर्णतः भरे हुए हैं ॥ आलस्य, मैंपन से अहंकार, अज्ञान, लोभ, दम्भ, प्रमाद (अजाग्रत), दाक्षिण्य (दूसरोंके दबाव) जन्मस्वरूप का स्वभाव तथा कुसंगति इत्यादि से मैंने जितने अपराध किये हैं, उन मेरे असंख्य अपराधों की गणना न करके (उन पर ध्यान न देकर) आप मुझे क्षमा कीजिये। हे नाथ! अपराध-सहस्रों के भण्डार रूप मुझको अपनी कृपा का पात्र बनाकर अनुगृहीत कीजिये ॥

पिता माता गुरुर्भ्राता सखा बन्धुस्त्वमेव मे ।
विद्या सत्कर्म वित्तं च पुरः पृष्ठे च पार्श्वयोः ।। 26

मूर्ध्नि हृत्कमले मेऽन्तर्बहिर्जन्मनि जन्मनि ।
कुलस्वामीष्टदेवो नो वृतः पितृपितामहैः ।। 27

हे स्वामिन्! आप ही मेरे (तत्त्व-शिक्षक) पिता हैं, पालन-पोषण करनेवाली माता हैं, हितोपदेश करनेवाले गुरु हैं, प्रेम करनेवाले भाई हैं, उपकारी मित्र हैं, सत्कर्म के कारण हैं, ऐश्वर्यप्रद हैं और आगे-पीछे दोनों तरफ मेरे रक्षक हैं।

सिर के ऊपर, हृदय में, बाहर-भीतर सर्वत्र रहकर आप मेरी रक्षा करते हैं। प्रत्येक जन्म में मेरे पिता–पितामह–प्रपितामहों आदि के कुलदेव एवं इष्टदेव आप ही हैं।

विशेषार्थ — (जितन्ते स्तोत्र)

पिता माता सुहृत् बन्धुः भ्राता पुत्रस्त्वमेव हि ।
विद्या धनं च कामश्च नान्यत् किञ्चित् त्वया विना ।।

सर्वं त्वमेव लक्ष्मीश न जाने त्वां विना परम् ।
दुःस्मृतिं हर दूरान्मे विस्मृतिं ते विलोपय ।। 28

हे लक्ष्मीनाथ! सर्वेसर्वा आप ही हैं। आपको छोड़कर मैं और किसी अनायाम को 'सर्वोत्तम' नहीं जानता या मानता। मेरे कुविचारों को (दुष्टों का स्मरण, दूषित वस्तुओं का स्मरण, कलुषित लौकिक व्यवहार का स्मरण इत्यादि को) ध्वस्त कीजिये। साथ ही, आपको विस्मृत (भूल) हो जाने की प्रवृत्ति को दूर कर दीजिये। अपने स्मरण के प्रति किसी प्रकार भूल-चूक न होने दीजिये। अर्थात् "आपका स्मरण सदा बना रहे" ऐसी कृपा कीजिये।

त्वत्स्मृतिं सम्प्रदेह्यद्य त्वत्समो नास्ति मे प्रियः ।
त्वन्मना स्त्वद्गत प्राणः त्वत्पादाम्बुजसंश्रितः ।। 29

हे विभो ! सदैव अपना नाम स्मरण करने की शक्ति दीजिये । आप-जैसा प्रिय मेरा कोई नहीं है । मैं आपको अपना मन एवं प्राण अर्पितकर आपके चरणकमलों का आश्रय लेता हूं।

तव भक्तोऽस्मि दासोऽस्मि शिष्यः पुत्रोऽस्मि केवलम् ।
भर्ता त्वमेव विश्वस्य स्मरामि त्वामहर्निशम् ।। 30

मैं आपका भक्त, सेवक, शिष्य और पुत्र हूं । आप इस संसार का भरण-पोषण करनेवाले हैं। हे नाथ ! दिन-रात मैं आपका स्मरण करता (रहूं) हूं ।

सम्बन्ध – श्रीहरि के बिम्बरूप में स्मरण करने का विधान बताते हैं।

श्रीहरिर्मम हृत्पद्मकर्णिकास्थोऽति सुन्दरः ।
पद्मासनसमासीन इन्द्रनीलसमद्युतिः ।। 31

मेरे उद्धार करनेवाले श्रीहरि ! मेरे हृदय कमलरूपी पीठ (आसन) पर विराजमान आप अत्यन्त सुन्दर हैं। पद्मासन पर बैठ हुए आप इन्द्रनीलमणि के समान कान्ति युक्त हैं ।

कञ्जकोमलपादाब्जः कुङ्कुमाधिकवर्णवान् ।
वज्राङ्कुशध्वजाब्जाङ्कपादाब्ज नखरक्तवान् ।। 32

कमलदल के समान कोमल आपके चरण कुंकमवर्ण से भी अधिक लाल रंग के तथा वज्र, अंकुश, ध्वज एवं कमल के चिह्नयुक्त हैं। आपके चरणारविन्दों के नख लाल रंग से शोभायमान हैं ।

क्वणन्नूपुरसन्नादवलयाढचपदाम्बुजः ।
अतसीपुष्पसङ्काशतेजःपुञ्जोरुरञ्जितः ।। 33

नूपुर की ध्वनि के वलय से शोभित आपके चरण कमल तीसी पुष्प के समान तेज:पुञ्ज से प्रकाशित हैं ।

नितम्बे पीतवसन स्वर्णकाञ्च्यञ्चितोऽच्युतः ।
विरिञ्चाधारसौवर्ण गम्भीराब्जाभनाभिकः ।। 34

अविनाशी हे प्रभो ! आपकी भव्य कटि पीत-वस्त्र और सुवर्ण की कांची (करधनी) से शोभा पा रही है तथा आप का नाभि-भाग चतुर्मुख ब्रह्मा के आधारभूत सुवर्ण कमल की भाँति गम्भीरता से शोभित है ।

ब्रह्माण्डगूहकमृदुश्लक्ष्णरेखात्रयोदरः ।
धर्मस्तनोऽधर्मपृष्ठः श्लक्ष्णसूक्ष्मतनूरुहः ।। 35

हे वेङ्कटेश ! ब्रह्माण्ड को ढके हुए आपका कोमल उदर-भाग सूक्ष्म तीन रेखाओं से युक्त है। आप धर्म के उत्पादकरूप वक्षःस्थलवाले, अधर्म के उत्पादकरूप पीठवाले तथा चिकने और छोटे अतिसूक्ष्म सुन्दर रोम समूहवाले हैं ।

श्रीवत्साङ्कः कौस्तुभादिवैजयन्तीहृदम्बुजः ।
उन्नतांसो जानुलम्बि बाह्वभीतिवरप्रद्रः ।। 36

आप श्रीवत्स चिह्न और कौस्तुभादि से रचित वैजयन्ती माला से अलंकृत शोभायमान हृदय-कमलवाले हैं, ऊँचे कंधे, जानु तक लंबी एवं अभय का वर देनेवाली भुजाओं से युक्त हैं।

कुङ्कुमाङ्के करतले शङ्ख-चक्र-सुलक्षणः ।
किङ्किणीकङ्कणलसद्वलयाङ्गद भूषितः ।। 37

हे प्रभो ! आप कुंकुमवर्ण की भाँति कान्ति से उद्भासित हाथों में शुभलक्षणों से युक्त शंख और चक्र धारण किये हुए हैं तथा शब्दित किंकिणी (करधनी), कंकण (कडा) तथा अंगदादि से शोभित कर-कमलवाले हैं ।

कम्बुग्रीवः सुबिम्बोष्ठः कुन्दकुड्मलदन्तवान् ।
आदर्शवद् दृश्यसूक्ष्म गण्डयुग्मसुमण्डितः । 38

हे वेङ्कटेश ! आप शंख-सदृश कंठ, बिम्ब-समान सुन्दर अधर, कुन्दकली-जैसे दांत तथा दर्पण की भाँति चमकनेवाले दोनों युगल कपोलों (गालों) से प्रकाशित हैं ।

सुनासोऽनिमिषः सुभ्रूः करुणापूर्णलोचनः ।
शत्पूर्णेन्दुवदनो नतनीलसुकुन्तलः ।। 39

हे श्रीनिवास ! आप सुन्दर नासिका, पलकों पर न गिरने वाली इन्द्रधनुष के समान मनोहर भौहों, अत्यन्त करुणापूर्ण नयनों, शरतकालीन पूर्ण-चन्द्रमा के समान आह्लादक मुख तथा अनन्त घुँघराली नीली अलकों (केशों) से सुशोभित हैं ।

अतुल्यतिलकोपेतो रत्नकुण्डलमण्डितः ।
स्फुरद्रत्नकिरीटी च सर्वलक्षणसंयुतः ।। 40

विभो ! आप अनुपम तिलक, रत्नमण्डित कुण्डलों और चमचमाते रत्नमुकुट से युक्त सभी शुभलक्षण सम्पन्न हैं ।

जगद्विलक्षणः श्रीमान् मद्बिम्बो नित्यचित्सुखः ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशः चन्द्रकोटिसुशीतलः ।। 41

बिम्बरूप हे श्रीहरि ! आप निखिल विश्व (चर और अचर) से विलक्षण हैं, श्रीमान् हैं, सर्व ऐश्वर्य से समृद्ध हैं, नित्य चिदानन्द स्वरूप हैं, करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशवान् और करोड़ों चन्द्रमा के समान शीतल हैं।

अनन्तवेदैर्ब्रह्माद्यैः अवेद्योऽप्राकृतो हरिः ।
श्रीधराभ्यां समाश्लिष्टो ब्रह्मरुद्रेन्द्रसेवितः ।। 42

हे श्रीपति ! आप अनन्त वेदों और ब्रह्मादि देवेश्वरों के लिये भी अगोचर, प्राकृत (सत्त्व-रज-तम) गुणों से अतीत, श्रीदेवी और भूदेवी से आलिंगित तथा ब्रह्मा-रुद्र-इन्द्र आदि देवताओं से सुसेवित हैं।

पूर्णानन्दज्ञानदयामूर्तिः परममङ्गलः ।
मङ्गलाङ्गो मङ्गलाङ्को भक्तमङ्गलदायकः ।। 43

हे श्रीनिवास ! आप पूर्ण आनन्द, ज्ञान और दया की मूर्ति, परम मंगल के स्वरूप, मंगलमय चिह्नों से युक्त अंगवाले तथा भक्तों को समस्त मंगल प्रदान करनेवाले हैं।

करुणामृतपूर्णाभ्यां लोचनाभ्यां समीक्षते ।
का चिन्ता म इहामुत्र सर्वारिष्टं हरत्यसौ ।। 44

हे रमाकान्त ! करुणामृतपूर्ण नयनों से सदा आप मुझे निरखते हैं। अतः इहलोक या परलोक की चिन्ता मुझे क्यों होगी ? आप मेरे सभी अनिष्टों का ध्वंस तो कर ही देते हैं। (इसलिये मुझे कोई चिन्ता नहीं)।

त्वत्पादाम्बुजविश्वासं सर्वाभीष्टं ददाति हि ।
इति स्मरन्नहोरात्रं त्वामहं शरणं गतः ।। 45

हे श्रीहरि ! आपके चरण कमलों पर मेरा अत्यन्त विश्वास है कि आप मुझे सर्वाभीष्ट प्रदान करते हैं । ऐसे महिमान्वित आपका अहर्निश स्मरण करता हुआ मैं आपकी शरण में हूं ।

भो स्वामिन् पूर्णकामस्त्वं सम्पूर्णैश्वर्यवानपि ।
स्वप्रयोजनहीनोऽपि मायया बहुरूपवान् । 46

हे स्वामी ! आप पूर्णकाम हैं, सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से सम्पन्न हैं, स्वप्रयोजन रहित हैं, पर भक्तों पर अनुग्रह करने हेतु इच्छामात्र (माया) से अनेक रूप धारण करते है ।

लोकोपकरणायैव त्वितराऽसाध्यकृत्यवान् ।
बह्वद्रिधारणं सेतोरनयासेन कल्पनम् ।। 47

अपने प्रणतों को तराने के लिये आपने जिन कार्यों को संपन्न किया (जैसे गोवर्धन एवं मंदरादि पर्वतों को धारण करना तथा अनायास सेतु वन्धनादि) वे औरों के लिये दुस्साध्य हैं ।

ब्रह्माण्डमद्भुतं स्थूलं क्षणेनोत्पादितं त्वया ।
वहसि त्वमुपायेन बहुसूक्ष्ममृदूदरे ।। 48

अपनी लीलामात्र से क्षण भर में उत्पन्न किये गये अत्यंत अद्भुत इस स्थूल ब्रह्माण्ड को आप बड़े उपाय से अपने कोमल एवं सूक्ष्म उदर में बाधा रहित धारण करते हैं ।

एवं महाभारवहस्य विश्व-
कुटुम्बिनः करुणापूर्ण सिन्धोः ।
मम त्वदीयस्य सुसूक्ष्मलेश-
लवात्मकस्योद्धरणं कियत् वे ।। 49

इस प्रकार महान् भार को वहन करनेवाले, विश्वकुटुम्ब वाले, करुणा के पूर्ण सागर हे वेङ्कटेश ! आपकी इस सृष्टि में मुझ-जैसे अत्यन्त छोटे भक्त का उद्धार करना आपके लिये कौन भारी काम है ? अर्थात् आपके जगत की रक्षा के महान् कार्यों में से यह मेरी रक्षा अथवा संसार से तराना कोई बड़ा काम नहीं है।

श्रीवेङ्कटेश ! मत्स्वामिन् ज्ञानानन्ददयानिधे ।
दुःखसागरमग्नं मां स्वीयं नोद्धारसे कुतः ।। 50

ज्ञान, आनन्द और दया के आश्रय ! हे मेरे स्वामी ! वेङ्कटाचलाधीश ! श्रीनिवास ! दुःख के समुद्र में डूबे हुए अपने भक्त का (मेरा) उद्धार अब तक आपने क्यों नहीं किया ।

विशेषार्थ — भगवन ! आप सर्वज्ञ हैं, मेरे सारे वृत्तान्त से आप परिचित हैं। अतः यह कहना भी ठीक नहीं कि आपकी दया मुझ पर नहीं है। क्योंकि आप तो दया की निधि हैं ।

श्रीनिवास कृपापूर्ण भक्तपोषणदीक्षित ।
संसारारण्यपतितं दयया नेक्षसे कुतः ।। 51

हे कृपापूर्ण ! भक्तों का पालन करनेवाले ! हे श्रीनिवास! इस संसाररूपी माहावन में पड़े हुए मुझपर आप दया की दृष्टि क्यों नहीं डालते ?

भक्तबन्धो! दयासिन्धो! त्वत्पादाब्जे नमाम्यहम् ।
सूक्तासूक्तमिदं सर्वमपराधं क्षमस्व मे ।। 52

भक्तबन्धु, दयासिन्धु, हे श्रीवेङ्कटेश ! मैं आपके चरण कमलों में प्रणाम करता हूं । मेरे इन शुभ या अशुभ वचनों से यदि कोई अपराध हुआ तो क्षमा कीजिये ।

वरं वरद मे देहि भक्तिं त्वत्पादयोः स्मृतिम् ।
सदा नामार्थं विज्ञानं देहीहाऽमुत्र सौख्यदम् ।। 53

भक्तों को वर देनेवाले श्रीहरि ! मुझे अपने चरणों की 'भक्ति' एवं 'स्मरण' रूप श्रेष्ठ वर प्रदान कीजिये । हे दयालु ! सदा-सर्वदा समस्त ग्रन्थों के अर्थरूप 'सुज्ञान' तथा लोक और परलोक में सुख देने की कृपा कीजिये ।

श्रीस्वामितीर्थदुग्धाब्धौ श्वेतद्वीपे सुमण्डपे ।
श्रीभूम्यां विहरन् विष्णो मुक्ति भक्ताय: देहि मे ।। 54

क्षीरसागर-जैसे श्रीस्वामीपुष्करिणि तीर्थ में श्रीश्वेतद्वीप रूप अति रमणीय मण्डप में श्रीदेवी और भूदेवी के साथ विहार करनेवाले, सर्वव्यापी, मोक्षप्रद, वासुदेव, चिद्घनमूर्ति हे श्रीनिवास! आप अपने भक्त (मुझ) को 'मुक्ति' प्रदान कीजिये ।

विशेषार्थ —

1. 'मुक्ति प्रदो वासुदेवस्त्वमेव' – इसे सूचित करने के लिये 'विष्णो' कहा गया है ।
2. वासनाद्वासुदेवोऽसि वासितं ते जगत्त्रयम् ।
   सर्वभूतनिवासोऽसि वासुदेव नमोऽस्तु ते ।।
   — इस प्रार्थना श्लोक के अनुसार सर्वत्र निवास करनेवाले भगवान 'वासदेव' के प्रति सार्थक एवं मुक्ति देने में समर्थ हैं ।

श्रीसूत उवाच —

इत्थं स्तुत्वा वेङ्कटेशं रमेशं
तूष्णीं भूतो देवशर्मा सुभक्तः ।
भक्तेभ्योऽभीष्टार्थवर्षप्रबुद्धं
साष्टाङ्गं तं प्राणमत्स्वेष्टदेवम् ।। 55

सूतजी बोले — परम भक्त देवशर्मा इस प्रकार लक्ष्मीपति श्रीवेङ्कटेश की अनन्य भक्ति से स्तुति करके चुप खडे हो गये। अनन्तर भक्तों को इच्छित पदार्थों की वर्षा करने में अति सजग अपने इष्टदेव श्रीवेङ्कटेश को उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया।

अथ स्तोत्रेण सन्तुष्टः श्रीनिवासः सतां गतिः ।
मेघगम्भीरया वाचा वरदानमथाब्रवोत् ।। 56

तब भक्तों को मुक्ति देनेवाले भगवान श्रीनिवास स्तुति से प्रसन्न होकर मेघगर्जन के समान गम्भीर वाणी में देवशर्मा से वरदान के वचन बोले।

श्रीभगवानुवाच —

"प्रीतोऽहं ते द्विजश्रेष्ठ! मदुपासनकर्मणा।
महदैश्वर्यसंसिद्धिकारणं स्तोत्रमुत्तमम् ।। 57

कृतवानसि तस्मात् त्वं माभैष्टात्र परत्र हि।
मत्प्रियप्राणशिष्यस्य गुरुपादावलम्बिनः ।। 58

विपन्नाशः सम्पदाप्तिः भूयात् ते मदनुग्रहात् ।
मम भक्तस्य ते गेहे स्वर्णवृष्टि र्दिने दिने ।। 59

अयुतायुश्च ते दत्तं पुत्रपौत्रास्त्वदायुषः ।
शतपूरुषपर्यन्तं भुक्त्वा भोगाननेकशः ।। 60

ततो मत्पदमाप्नोषी" त्युक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ।। 61

भगवान श्रीनिवास बोले — हे प्रिय विप्रश्रेष्ठ ! तुम्हरी उपासनादि कर्म से (तपस्यादि से) मैं अत्यन्त संतुष्ट हूं । तुमने महा ऐश्वर्य की प्राप्ति-हेतु अत्युत्तम कल्याणकारी स्तुति की। इसलिये तुम्हें इसलोक और परलोक में तथा नरकादि से भी भय न हो। मेरे अत्यन्त प्रिय भक्त प्राण (वायुदेव) के शिष्य होकर तुमने उनके चरणों का आश्रय लिया । अतः मेरे अनुग्रह से तुम्हारी समस्त विपत्तियों का नाश और सम्पत्तियों की प्राप्ति हो। मेरे भक्त के (तुम्हारे) घर में प्रतिदिन सुवर्ण की वर्षा हो। मैं तुम्हें और तुम्हारे पुत्रों एवं पौत्रों को भी तुम्हारी ही भाँति दीर्घायु प्रदान करता हूं। तुम शतपूरुष (सौ पीढ़ी) पर्यन्त अनेक प्रकार के भोग-सुख अनुभव करके अन्त में मेरे पाद-पद्मों (वैकुण्ठधाम) को प्राप्त करोगे ।" — ऐसा कहकर भगवान चुप रह गये।

श्रीसूत उवाच —

भोः शौनकाद्या मुनयो निस्सङ्गाश्च तपस्विनः ।
भक्तवश्यो वेङ्कटेशः प्रसन्नो भवति ध्रुवम् ।। 62

सूतजी बोले — हे शौनकादि मुनियो ! आप लोग अहंकार-ममकार रहित निःसंग तपस्वी हैं। भगवान श्रीवेङ्कटेश भक्त-परवश हैं । अतः वे अपने भक्तों के प्रति अवश्य प्रसन्न होंगे।

यूयं गत्वा वेङ्कटेशं रमेशं
नत्वा स्तुत्वा वेदवेद्यं सुभक्त्या ।
भक्तेभ्योऽभीष्टार्थवर्षप्रबुद्धं
संप्रीणीध्वं तेन वोऽभीष्टसिद्धिः ।। 63

शौनकादि मुनियो ! आप लोग वेङ्कटाचल की यात्रा कर संपूर्ण वेद-प्रतिपाद्य एवं सर्वदेवमय लक्ष्मीपति श्रीवेङ्कटेश की प्रसन्नता के लिये अनन्य-भाव से प्रणाम और स्तुति करें। भक्तों पर समस्त पुरुषार्थ बरसाने में प्रबुद्ध भगवान श्रीहरि आप लोगों को अभीष्ट-वस्तु अवश्य प्रदान करेंगे।

श्रीवेङ्कटेशस्य कथामृतं त्विदं
माहात्म्यसारं सुतपस्विगम्यम् ।
श्रीवेङ्कटेशस्य महाप्रियप्रियं
लोकोत्तरं देवऋषिप्रियं च ।। 64

भगवान श्रीवेङ्कटेश का यह कथारूपी अमृत भक्तों के जन्म-मृत्यु को मिटा देनेवाला है, समस्त पुराणों के भगवन्-माहात्म्यों का निचोड़ है, अत्यन्त श्रेष्ठ महिमाओं से युक्त है, यह सब लोगों को दुर्लभ तथा केवल महान् तपस्वियों के लिये सुलभ है, श्रीनिवास के अत्यन्त प्रिय शोडशोपचारों से भी बढ़कर यह उन्हें (वेङ्कट प्रभु को) अधिक प्रिय है, लोकोत्तर है, देवताओं ऋषियों एवं मनुष्य-श्रेष्ठों को भी पार करने में समर्थ होने के कारण यह अत्यन्त प्रिय एवं मोक्षप्रद है।

समस्त पापौघ विनाशकारणं
समस्त पुण्यौघ समृद्धिकारणम् ।
श्रीवेङ्कटेशस्य पदारविन्दयोः
सद्भक्तिवृद्धावसमानकारणम् ।। 65

यह कथा-अमृत समस्त पाप-समूह को नष्ट कर देता है। सभी पुण्यों को बढ़ाता है। भगवान श्रीवेङ्कटेश्वर के पाद-पद्मों में सद्भक्ति की वृद्धि का अतुलनीय महान उपाय है।

वक्तुः श्रोतुः पाठकस्य पारायणपरस्य च ।
परात्परो वेङ्कटेशः प्रसन्नो भवति क्षणात् ।। 66

इस वेङ्कटेश माहात्म्य को कहनेवाले, सुननेवाले, पाठ करनेवाले तथा इसका एकाग्र चित्त से पारायण करनेवाले के प्रति परात्पर परब्रह्म श्रीवेङ्कटेश्वर क्षणमात्र में प्रसन्न होते हैं।

स्तोत्रेणैव हि सन्तुष्टो वेङ्कटेशो रमापतिः ।
यान् यान् कामान् कामयन्ते तांस्तान् मुक्तिं ददाति च।। 67

प्रणत-भाव से किये जानेवाले इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर रमानाथ श्रीवेङ्कटेश्वर भक्तों के सभी मनोरथों को पूर्ण कर देते हैं और अन्त में मुक्ति भी प्रदान करते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं, यह सत्य है।

इति श्रीमदादित्यपुराणे श्रीवेङ्कटेशमाहात्म्ये
श्रीवेङ्कटेशस्य सकलाभीष्ट वरप्रदान
महिमानुवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।

श्रीमदादित्य पुराण में श्रीवेङ्कटेश माहात्म्य का
पांचवां अध्याय समाप्त हुआ।

।। श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

मङ्गलं भगवान् विष्णुः मङ्गलं मधुसूदनः ।
मङ्गलं देवकीपुत्रो मङ्गलं गरुडध्वजः ।।

विना वेङ्कटेशं न नाथो न नाथः
सदा वेङ्कटेशं स्मरामि स्मरामि,
हरे वेङ्कटेश प्रसीद प्रसीद
प्रियं वेङ्कटेश प्रयच्छ प्रयच्छ ॥

प्राप्ति स्थान

बी. जी. सुन्दरमूर्ति, एम.ए.